KIRORI MAL COLLEGE ANNUAL MAGAZINE
NEW OUTLOOK

2020

New Outlook

Editorial Board

College Magazine Committee 2019-20

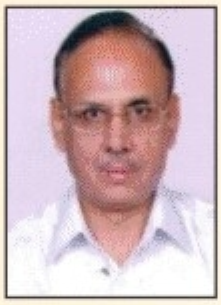
Dr Mahesh Kumar

Dr Anshu

Dr Pragya

Dr Subhash K Singh

Dr Pushpender Kumar

Dr Md. Yahya Saba

Dr Md. Mohsin

Pankaj Bharti

Pratibha Madan

Dr Palash J Das

Dr Dipak Maiti

MESSAGE FROM THE PRINCIPAL DESK

'New Outlook', the annual magazine of Kirori Mal College is being published at a time when the whole world is facing the severe threat of Covid-19. Unprecedented in its expanse and impact, the infection has derailed our routine activities and connections. It has brought in its wake not just the physical ailment but also wide-spread mental stress due to isolation necessary to guard against the disease. The members of Kirori Mal College have reached out to students and teachers in an attempt to provide different kinds of support. The publication of the 'New Outlook' at this time in 2020, I believe, is a step in that direction. It is bound to bring a great deal of pleasure and joy to its readers at a time when we need positivity of every kind.

The team working for the 'New Outlook' had begun to collect creative as well as critical written pieces much before the lock-down in Delhi was announced. Numerous discussions were held about the different ways of collecting material for the magazine, including focus areas, structure and themes for the magazine. Eventually it was decided to have no constraints of a single theme and open up the magazine for representing the full range of issues and emotions that students feel strongly about. Contributions started coming in but then, Covid-19 struck and with it came the lockdown.

The pace of collection and structuring of the material collected did become a bit slow at the beginning but it soon picked up. The contributions were edited, shared and finalized online. The photographs were selected, and pages designed. The front and the back covers bring to you photographs from our students. There were so many amazingly good photographs that it was indeed difficult and heart-rending to be able to select only two. These are of course only a small sample of the talents of our outstanding students.

I salute the team of 'New Outlook' which has been able to overcome all problems and bring out an issue that, I trust, will be read with great pleasure by all.

Best wishes

Prof. Vibha Singh Chauhan,

Principal.

From the Editors' Desk

New Outlook is the annual college magazine of Kirori Mal College, University of Delhi. It has been published annually since the year of the inception of the college. This 66th issue of the New Outlook is dedicated to preserving, promoting and presenting creative writing and research work of students and teachers of the college.

New Outlook is a multi-lingual magazine that incorporates content about a wide range of topics written in different languages by students from different disciplines. This issue of the magazine, with its special focus on creative writing, has attempted to provide a platform to students and teachers for presenting their creative pieces for reading pleasure as well as critical appreciation from different quarters. The contributors and the Editorial Team welcomes appreciation as well as critiques of the works being published. This is of utmost importance to all of us and in our search for excellence here and abroad. The Editorial Team, on its part has made every effort to maintain standards along with nurturing and polishing ideas and expression of the contributors. To achieve this, every article in New Outlook has gone through a double-blind peer-review of the contributions in every section.

The Editorial Team takes this opportunity to also appreciate and thank the faculties of all five languages, whose constant efforts have nurtured New Outlook at every stage. We believe that they are the main pillars who will enrich these languages with their intellect and proper guidance in the college, the country and the world. We also deeply appreciate and thank all the students who have enriched the magazine through their contributions and hope their golden words will lead on to creating connections among different languages and building bridges of love and peace.

A special word of thanks also needs to be expressed for the student members of the Editorial Team who, under the guidance of their teachers, worked hard for the timely completion of New Outlook 2020. Their efforts have made us proud. We wish them success in all their ventures.

Kirori Mal College as well as New Outlook has always encourage freedom of personal, responsible expression. As always, the articles published in this magazine carry purely the views of the contributors and not that of the College/Editorial Committee.

College Magazine Committee

DEPARTMENT OF HINDI

DEPARTMENT OF BENGALI

DEPARTMENT OF ENGLISH

DEPARTMENT OF URDU

DEPARTMENT OF SANSKRIT

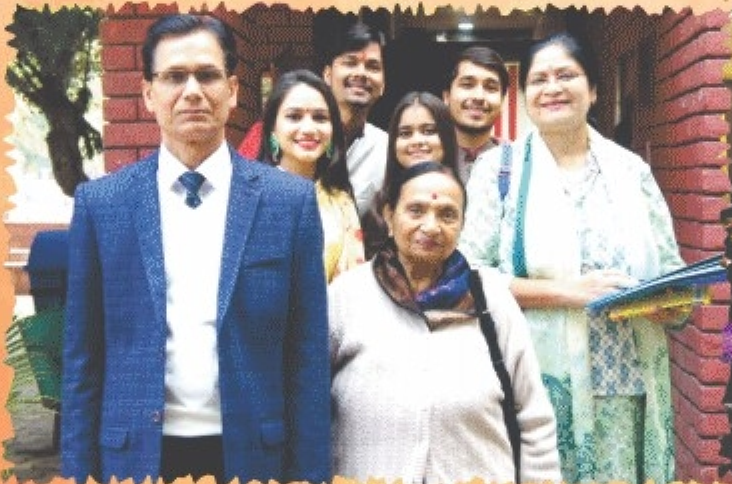

DEPARTMENT OF ECONOMICS

DEPARTMENT OF GEOGRAPHY

DEPARTMENT OF HISTORY

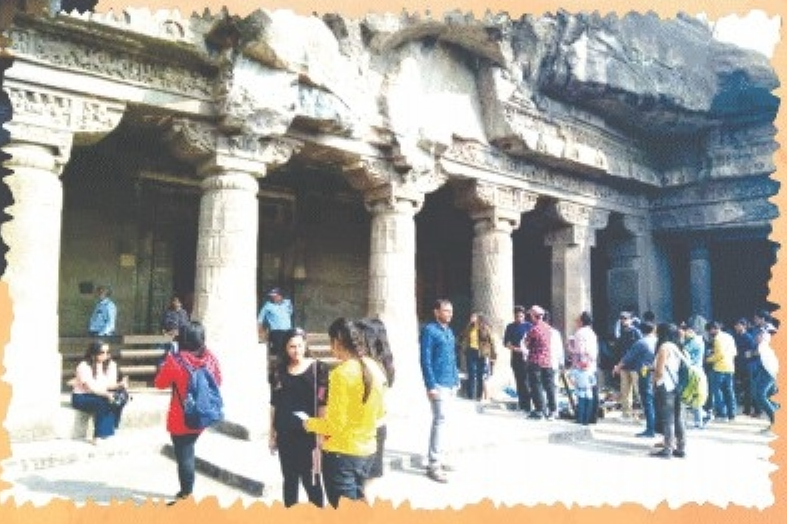

DEPARTMENT OF POLITICAL SCIENCE

विषय सूची

क्रमांक	विषय	लेखक/प्रस्तुति	पृष्ठ सं.
	संपादक की कलम से	डॉ. प्रज्ञा	3
1.	साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचंद	4
2.	आओ हम दीप जलाएँ	अमित कुमार	13
3.	बाहर आ कर	शिवांगी सिंह	14
4.	मैं और तुम	दुर्गेश भट्ट	15
5.	निर्भीक औरत	पुनीत यादव	16
6.	अरमानों का कब्रिस्तान	पुनीत यादव	16
7.	कल की परछांही इतिहास के पन्नों पर	डॉ विनीता शर्मा	17
8.	ये महज बच्चों की लिस्ट नहीं	डॉ. बली सिंह	18
9.	लोग...	डॉ. बली सिंह	18
10	चंदा कैसे बिसराउँ?	डॉ. प्रज्ञा	19
11.	रॉस आइलैंड को देखकर	डॉ. प्रज्ञा	19
12.	पहरा	डॉ. नामदेव	21
13.	जड़ें	डॉ. नामदेव	21
14.	भरोसा	डॉ. नामदेव	21
15.	पिता	डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता	22
16.	मीरा क्या है?	डॉ मंजू रानी	23
17.	मीरा बन गई हूँ मैं	डॉ मंजू रानी	23
18.	एक गर्म दिन	डॉ. रोहित कुमार	24
19.	अंधानुकरण और आस्था	जुनैद	25
20.	सैनिक	महेन्द्र सिंह	26
21.	आदमी और वृक्ष	आर्यन यादव	27
22.	प्रकृति और मनुष्य	अमन तिवारी	28
23.	कायर	अमन तिवारी	29
24.	आतंकवाद	अभिषेक कुमार	30
25.	मैं कौन हूँ	अभिषेक कुमार	30
26.	ममता की धारा	अंकुश कुमार	31

क्रमांक	विषय	लेखक/प्रस्तुति	पृष्ठ सं.
27.	स्त्री	अंकुश कुमार	31
28.	खुले आसमान के नीचे: वर्तमान भारत	प्रवेश	32
29.	हिन्दुस्तां की दास्तां	जानवी	33
30.	ऐ पंथी तू घबराता क्यों है?	प्रबल यादव	34
31.	हमारी मातृभाषा	नीरज वर्मा	34
32.	नारी प्रगति	नीरज वर्मा	34
33.	यार	अंशुमान तिवारी	35
34.	बढ़ते घाव	धनंजय कुशवाहा	35
35.	उस छात्र की कहानी	विनायक कोहली	36
36.	तेरे जैसा यार	प्रज्ञा	37
37.	एक बॉलीवुड की कहानी	राहुल डंगवाल	38
38.	संघर्ष समाधान और शांति स्थापना	केरा राम	39
39.	बेटी तू बड़ी मत होना	पूजा	40
40.	मानवता	सुधांशु शेखर	41
41.	माँ	सौफिया मलिक	43
42.	बचपन	सौफिया मलिक	43
43.	आज फिर याद तेरी आई	महीमा	44
44.	मोहलत	धीरज अग्रवाल 'संयम'	45
45.	तुम्हारे दिल की दीवारें	धीरज अग्रवाल 'संयम'	45
46.	मुझे कोख में ही मार दिया	एकता	46
47.	जब तुम होती हो सामने.........	नवनीत	47
48.	जीवन	एम एस सरस्वती दुबे	47
49.	समय बदल रहा है	अनिल यादव	48
50.	बेचारा था मैं	हिमांशु कुमार झा	49
51.	आई.ए.एस. चंदा की मनमानी है	हिमांशु कुमार झा	49
52.	इंटरनेट बैन	निखिल कुमार सोनी	50
53.	भारत की अस्वस्थ राजनीति	धर्मेंद्र कुमार जाँगिड़	51
54.	रिजल्ट	देवेन्द्र शर्मा	52
55.	माँ	देवेन्द्र शर्मा	52

संपादक की कलम से....

युवा रचनाशीलता अपने समय में हस्तक्षेप करते हुए सदा उत्साह की भावभूमि तैयार करती है। इस उत्साह को दो रूपों में समझा जा सकता है--एक यह कि नया रचनाकार कैसे अपने समय, उसकी गति को देख रहा है और उसमें किस बेहतरी की सोच के बिंदु रेखांकित कर रहा है। दूसरा, युवा रचनाकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से कैसे जुड़ा है और किन मायनों में उनसे आगे है। मेरे विचार से इस तरह परम्परा और विकास दोनों ही संदर्भों में समय भी परिभाषित होता है और रचनाशीलता भी।

'न्यू आउटलुक' पत्रिका के इस अंक को तैयार करते हुए शिक्षक सम्पादक द्वय और छात्र सम्पादकों की टीम के साझे प्रयासों से जो रचनाएं सामने आईं वह बहुत संवेदनशील दृष्टि के साथ तार्किकता के धरातल पर अपने समय को न सिर्फ देख रही थीं बल्कि वे अपने समय और समाज से रचनाकार की अपेक्षाओं को भी व्यक्त कर रही थीं। इस मायने में यह अंक एक उपलब्धि कहा जायेगा। नई रचनाशीलता बेहतर भविष्य के प्रति उम्मीद का संचार करती है, यह इस अंक की रचनाओं से ध्वनित होता है।

विविध विधाओं की रचनाएं हमें अंक के लिए प्राप्त हुई। छात्रों के साथ साथी प्राध्यापकों ने भी सहयोग दिया। इस संग्रह के लिए आर्यन यादव, जान्हवी और प्रवेश जैसे युवा सम्पादकों का सहयोग काबिल ए तारीफ कहा जायेगा। मैं अपनी और अपने साथी सम्पादक डॉ. रोहित कुमार की ओर से सभी रचनाकारों और अपनी टीम का आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होंने इस अंक को समृद्ध बनाने के लिए अपना योगदान दिया।

पूरा विश्व जहाँ आज करोना की महामारी से बाधित और आहत है। परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं ऐसे में सृजन एक ऐसा विकल्प है जो इन हालात में हमें जिलाये रखेगा। लड़ने की ताकत देगा। ऐसे विपरीत समय में कॉलेज पत्रिका की लगातार चल रही कोशिशों और सकारात्मक प्रयासों का परिणाम है 'न्यू आउटलुक' का यह अंक। मैं अपनी समूची टीम की ओर से मैगज़ीन कमेटी के प्रधान सम्पादक, कमेटी के सभी सदस्यों और विशेष रूप से कॉलेज प्रधानाचार्य का आभार व्यक्त करती हूँ। उनके सुझाव हमें समय-समय पर निर्देशित करते रहे। अंत में श्री शमाईल जी का भी आभार जिन्होंने इस अंक को तैयार करवाकर आप तक पहुंचाया।

साथियों, हिंदी अनुभाग को आप लोगों तक पहुंचाते हुए हमें बेहद खुशी है। आशा है अंक की रचनाएं आपको नई सृजनशीलता को परखने के साथ आपके मानस में नया जोड़ने की सार्थक पहल अवश्य करेंगी।

डॉ. प्रज्ञा
हिंदी विभाग

डॉ. प्रज्ञा
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

डॉ. रोहित कुमार
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

साहित्य का उद्देश्य

(1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के
प्रथम अधिवेशन लखनऊ
में प्रेमचंद द्वारा दिया गया अध्यक्षीय भाषण।)

प्रेमचंद

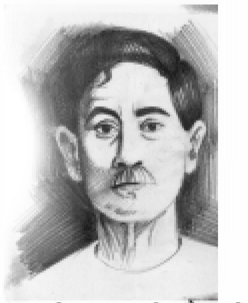

यह सम्मेलन हमारे साहित्य के इतिहास में स्मरणीय घटना है। हमारे सम्मेलनों और अंजुमनों में अब तक आम तौर पर भाषा और उसके प्रचार पर ही बहस की जाती रही है। यहाँ तक कि उर्दू और हिन्दी का जो आरम्भिक साहित्य मौजूद है, उसका उद्देश्य, विचारों और भावों पर असर डालना नहीं, किन्तु केवल भाषा का निर्माण करना था। वह भी एक बड़े महत्व का कार्य था। जब तक भाषा एक स्थायी रूप न प्राप्त कर ले, उसमें विचारों और भावों को व्यक्त करने की शक्ति ही कहाँ से आएगी? हमारी भाषा के 'पायनियरों' ने-रास्ता साफ करने वालों ने-हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण करके जाति पर जो एहसान किया है, उसके लिए हम उनके कृतज्ञ न हों तो यह हमारी ? कृतघ्नता होगी।

भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरम्भ में 'बागो-बहार' और 'बैताल-पचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य-सेवा थी, अब इस योग्य हो गई है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके और यह सम्मेलन इस सचाई की स्पष्ट स्वीकृति है।

भाषा बोलचाल की भी होती है और लिखने की भी। बोल-चाल की भाषा तो मीर अम्मन और लल्लूलाल के ज़माने में भी मौजूद थी, पर उन्होंने जिस भाषा की दाग बेल डाली, वह लिखने की भाषा थी और वही साहित्य है। बोलचाल से हम अपने करीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं-अपने हर्ष-शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है। हाँ, उसके श्रोताओं की परिधि बहुत विस्तृत होती हैं, और अगर उसके बयान में सचाई है तो शताब्दियों और युगों तक उसकी रचनाएँ हृदयों को प्रभावित करती रहती हैं।

परन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ लिख दिया जाए, वह सबका सब साहित्य है। सहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों। तिलिस्मात, कहानियों, भूत-प्रेत की कथाओं और प्रेम-वियोग के आख्यानों से किसी ज़माने में हम भले ही प्रभावित हुए हों, पर अब उनमें हमारे लिए बहुत कम दिलचस्पी है। इसमें सन्देह नहीं कि मानव-प्रकृति का मर्मज्ञ साहित्यकार राजकुमारों की प्रेम-गाथाओं और तिलिस्माती कहानियों में भी जीवन की सचाइयाँ वर्णन कर सकता है, और सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है, परन्तु इससे भी इस सत्य की पुष्टि ही होती है कि साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सचाइयों का दर्पण हो। फिर आप उसे जिस चौखटे में चाहें, लगा सकते हैं-चिड़े की कहानी और गुलो-बुलबुल की दास्तान भी उसके लिए उपयुक्त हो सकती है।

साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।

हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते थे। कहीं

फिसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख़्याल की और कहीं चंद्रकांता संतति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोंरजन था और हमारे अद्भुत रस-प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था। कहानी, कहानी है, जीवन जीवन, दानों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। कवियों पर भी व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था और सौंदर्य का आँखों को। इन्हीं श्रृंगारिक भावों को प्रकट करने में कवि-मंडली अपनी प्रतिभा और कल्पना के चमत्कार दिखाया करती थी। पद्य में कोई नई शब्द-योजना, नई कल्पना का होना दाद पाने के लिए काफी था-चाहे वह वस्तु-स्थिति से कितनी ही दूर क्यों न हो। आशियाना (घोंसला) और कफस (पींजराद्), बर्क़ (बिजली) और ख़िरमन की कल्पनाएँ विरह दशा के वर्णन में निराशा और वेदना की विविध अवस्थाएँ, इस खूबी से दिखाई जाती थीं कि सुननेवाले दिल थाम लेते थे और आज भी इस ढंग की कविता कितनी लोकप्रिय है, इसे हम और आप खूब जानते हैं।

निस्संदेह, काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है, पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरूष-प्रेम का जीवन नहीं है। क्या वह साहित्य, जिसका विषय श्रृंगारिक मनोभावों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विरह-व्यथा, निराशा आदि तक ही सीमित हो-जिसमें दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना ही जीवन की सार्थकता समझी गई हो, हमारी विचार और भाव सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है? श्रृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से सम्बन्ध रखता हो, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरूचि का ही प्रमाण हो सकता है।

क्या हिंदी और क्या उर्दू-कविता में दोनों की एक ही हालत थी। उस समय साहित्य और काव्य के विषय में जो लोक-रूचि थी, उसके प्रभाव से अलिप्त रहना सहज न था। सराहना और क़द्रदानी की हवस तो हर एक को होती है। कवियों के लिए उनकी रचना ही जीविका का साधन थी और कविता की क़द्रदानी रईसों अमीरों के सिवा और कौन कर सकता है? हमारे कवियों को साधारण जीवन का सामना करने और उसकी सचाइयों से प्रभावित होने के या तो अवसर ही न थे, या हर छोटे-बड़े पर कुठ ऐसी मानसिक गिरावट छायी हुई थी कि मानसिक और बौद्धिक जीवन रह ही न गया था।

हम इसका दोष उस समय के साहित्यकारों पर ही नहीं रख सकते। साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। ऐसे पतन के काल में लोग या तो आशिकी करते हैं या अध्यात्म और वैराग्य में मन रमाते हैं। जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हों और उसका एक-एक शब्द नैराश्य में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और श्रृंगारिक भावों का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति जड़ता और उस के पंजे में फँस चुकी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बल बाक़ी नहीं रहा। उसने ऊँचे लक्ष्यों की ओर से आँखें बन्द कर ली हैं और उसमें से दुनिया को देखने-समझने की शक्ति लुप्त हो गई है।

परंतु हमारी साहित्यिक रूचि बड़ी तेजी से बदल रही है। अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है। अब वह स्फूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढ़ता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है, जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।

नीति-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र का लक्ष्य एक ही है-केवल उपदेश की विधि में अंतर है। नीति-शास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है।

हम जीवन में जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य-सृजन की प्रेरणा करती हैं। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे की होती है। जिस साहित्य से हमारी सुरूचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत् हो,-जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।

पुराने ज़माने में समाज की लगाम मज़हब के हाथ में थी। मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था और वह भय या प्रलोभन से काम लेता था, पुण्य-पाप के मसले उसके साधन थे।

अब, साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधन-सौंदर्य-प्रेम है। वह मनुष्य में इसी सौंदर्य-प्रेम को जगाने का यत्न करता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें सौंदर्य की अनुभूति न हों। साहित्यकार में यह वृत्ति जितनी ही जागृत और सक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावमयी होती है। प्रकृति-निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौंदर्य-बोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधो होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है-चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज़ है। उसकी अदालत के सामने वह अपना इस्तग़ासा पेश करता है। और उसकी न्याय-वृत्ति तथा सौंदर्य-वृत्ति को जागृत् करके अपना यत्न सफल समझता है।

पर साधारण वकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुवक्किल की ओर से उचित-अनुचित सब तरह के दावे नहीं पेश करता, अतिरंजना से काम नहीं लेता, अपनी ओर से बातें गढ़ता नहीं। वह जानता है कि इन युक्तियों से वह समाज की अदालत पर असर नहीं डाल सकता। उस अदालत का हृदय-परिवर्तन तभी सम्भव है जब आप सत्य से तनिक भी विमुख न हों, नहीं तो अदालत की धारणा आपकी ओर से खराब हो जायेगी और वह आपके खिलाफ फैसला सुना देगी। वह कहानी लिखता है, पर वास्तविकता का ध्यान रखते हुए, मूर्ति बनाता है, पर ऐसी कि उसमें सजीवता हो और भावव्यंजकता भी वह मानव-प्रकृति का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करता है, मनोविज्ञान का अध्ययन करता है और इसका यत्न करता है कि उसके पात्र हर हालत में और हर मौके पर, इस तरह आचरण करें, जैसे रक्त-मांस का बना मनुष्य करता है, अपनी सहज सहानुभूति और सौंदर्य-प्रेम के कारण वह जीवन के उन सूक्ष्म स्थानों तक जा पहुँचता है, जहाँ मनुष्य अपनी मनुष्यता के कारण पहुँचने में असमर्थ होता है।

आधुनिक साहित्य में वस्तु-स्थिति-चित्रण की प्रवृति इतनी बढ़ रही है कि आज की कहानी यथासम्भव प्रत्यक्ष अनुभवों की सीमा से बाहर नहीं जाती। हमें केवल इतना सोचने से ही संतोष नहीं होता कि मनोविज्ञान की दृष्टि से ये सभी पात्र मनुष्यों से मिले-जुलते हैं, बल्कि हम यह इत्मीनान चाहते हैं कि वे सचमुच मनुष्य हैं और लेखक ने यथासम्भव उनका जीवन-चरित्र ही लिखा है, क्योंकि कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यो और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि लेखक ने जो सृष्टि की है, वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की गई है और अपने पात्रों की ज़बान से वह खुद बोल रहा है।

इसीलिए साहित्य को कुछ समालोचकों ने लेखक का मनोवैज्ञानिक जीवन-चरित्र कहा है।

एक ही घटना या स्थिति से सभी मनुष्य समान रूप में प्रभावित नहीं होते। हर आदमी की मनोवृत्ति और दृष्टिकोण अलग है। रचना-कौशल इसी में है कि लेखक जिस मनोवृत्ति या दृष्टिकोण से किसी बात को देखे, पाठक भी उसमें उससे सहमत हो जाये। यही उसकी सफलता है। इसके साथ ही हम साहित्यकार से यह भी आशा रखते हैं कि वह अपनी बहुज्ञता और अपने विचारों

की विस्मृति से हमें जागृत् करे, हमारी दृष्टि तथा मानसिक परिधि को विस्तृत करे-उसकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी गहरी और इतनी विस्तृत हो कि उसकी रचना से हमें आध्यात्मिक आनंद और बल मिले।

सुधार की जिस अवस्था में वह हो, उससे अच्छी अवस्था आने की प्रेरणा हर आदमी में मौजूद रहती है। हममें जो कमजोरियाँ हैं, वह मर्ज़ की तरह हमसे चिपटी हुई हैं। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य एक प्राकृतिक बात है और राग उसका उलटा, उसी तरह नैतिक और मानसिक स्वास्थ्य भी प्राकृतिक बात है और हम मानसिक तथा नैतिक गिरावट से उसी तरह संतुष्ट नहीं रहते, जैसे कोई रोगी अपने रोग से संतुष्ट नहीं रहता। जैसे वह सदा किसी चिकित्सक की तलाश में रहता है, उसी तरह हम भी इस फिक्र में रहते हैं कि किसी तरह अपनी कमजोरियों को परे फेंककर अधिक अच्छे मनुष्य बनें। इसीलिए हम साधु-फकीरों की खोज में रहते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, बड़े-बूढ़ों के पास बैठते हैं, विद्वानों के व्याख्यान सुनते हैं और साहित्य का अध्ययन करते हैं।

और हमारी सारी कमजोरियों की जिम्मेदारी हमारी कुरूचि और प्रेम-भाव से वंचित होने पर है। जहाँ सच्चा सौंदर्य-प्रेम है, जहाँ प्रेम की विस्तृति है, वहाँ कमजोरियाँ कहाँ रह सकती हैं? प्रेम ही तो आध्यात्मिक भोजन है और सारी कमजोरियाँ इसी भोजन के न मिलने अथवा दूषित भोजन के मिलने से पैदा होती हैं। कलाकार हममें सौंदर्य की अनुभूति उत्पन्न करता है और प्रेम की उष्णता। उसका एक वाक्य, एक शब्द, एक संकेत, इस तरह हमारे अन्दर जा बैठता है कि हमारा अन्तः-करण प्रकाशित हो जाता है। पर जब तक कलाकार खुद सौंदर्य-प्रेम से छककर मस्त न हो और उसकी आत्मा स्वयं इस ज्योति से प्रकाशित न हो, वह हमें यह प्रकाश क्योंकर दे सकता है?

प्रश्न यह कि सौंदर्य है क्या वस्तु? प्रकटतः यह प्रश्न निरर्थक-सा मालूम होता है, क्योंकि सौंदर्य के विषय में हमारे मन में कोई शंका-संदेह नहीं। हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, उषा और संध्या की लालिमा देखी है, सुंदर सुंगधा भरे फल देखे हैं, मीठी बोलियाँ बोलनेवाली चिड़ियाँ देखी हैं, कल-कल-निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं, यही सौंदर्य है।

इन दृश्यों को देखकर हमारा अन्तः करण क्यों खिल उठता है? इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामंजस्य है। बाजों का स्वरसाम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तत्वों के समानुपात में संयोग से हुई है, इसलिए हमारी आत्मा सदा उसी साम्य की, सामंजस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हममें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्याय प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं दृढ़ता है और जीवन है, जहाँ इनका अभाव है, वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है द्वेष, शत्रुता और मृत्यु है। यह बिलगाव और विरोध प्रकृति-विरूद्ध जीवन के लक्षण हैं, जैसे रोग प्रकृति-विरूद्ध आहार-विहार का चित्र है। जहाँ प्रकृति से अनुकूलता और साम्य है, वहाँ संकीर्णता और स्वार्थ का अस्तित्व कैसे संभव होगा? जब हमारी आत्मा प्रकृति के मुक्त वायु मंडल में पालित-पोषित होती है, तो नीचता-दुष्टता के कीड़े अपने आप हवा और रोशनी से मर जाते हैं। प्रकृति से अलग होकर अपने को सीमित कर लेने से ही यह सारी मानसिक और भावगत बीमारियाँ पैदा होती हैं। साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है, दूसरे शब्दों में उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है।

'प्रगतिशील लेखक संघ,' यह नाम ही मेरे विचार से गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती। इसलिए, वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर देना चाहता है, जिससे दुनिया जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा

स्थान हो जाये। यही वेदना और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाए रखता है। उसका दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के बन्धन में पड़कर कष्ट भोगता रहे। क्यों न ऐसे सामान इकट्ठा किए जाएँ कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पा जाये? वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में ज़ोर और सचाई पैदा होती है। अपनी अनुभूतियों को वह जिस क्रमानुपात में व्यक्त करता है, वही उसकी कला-कुशलता का रहस्य है। पर शायद विशेषता पर ज़ोर देने की जरूरत इसलिए पड़ी कि प्रगति या उन्नति से प्रत्येक लेखक या ग्रंथकार एक ही अर्थ नहीं ग्रहण करता। जिन अवस्थाओं को एक समुदाय उन्नति समझ सकता है, दूसरा समुदाय असंदिग्धा अवनति मान सकता है, इसलिए साहित्यकार अपनी कला को किसी उद्देश्य के अधीन नहीं करना चाहता। उसके विचारों में कला मनोभावों के व्यक्तिकरण का नाम है, चाहे उन भावों से व्यक्ति या समाज पर कैसा ही असर क्यों न पड़े।

उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कर्म-शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें अपनी दुःखावस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन अंतर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गए, और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।

हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनसे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाय, जिनसे हमारे मासिक पत्रों के पृष्ठ भरे रहते हैं, हमारे लिए अर्थहीन हैं अगर वे हममें हरकत और गरमी नहीं पैदा करतीं। अगर हमने दो नव-युवकों की प्रेम-कहानी कह डाली, पर उससे हमारे सौंदर्य-प्रेम पर कोई असर न पड़ा और पड़ा भी तो केवल इतना कि हम उनकी विरह-व्यथा पर रोए, तो इससे हममें कौन-सी मानसिक या रूचि-सम्बन्धाी गति पैदा हुई? इन बातों से किसी ज़माने में हमें भावावेश हो जाता रहा हो, पर आज के लिए वे बेकार हैं। इस भावोत्तेजक कला का अब जमाना नहीं रहा। अब तो हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का संदेश हो। अब तो हज़रते इक़बाल के साथ हम भी कहते हैं-

रम्ज़े हयात जोई जुज़दर तपिश नयाबी

रदकुलजुम आरमीदन नंगस्त आबे जूरा।

ब आशीयाँ न नशीनम ज़े लज्ज़ते परवाज,

गहे बशाखे गुलाम गहे बरलबे जूयम।

(अर्थात्, अगर तुझे जीवन के रहस्य की खोज है तो वह तुझे संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का-सागर में जाकर विश्राम करना नदी के लिए लज्जा की बात है। आनन्द पाने के लिए मैं घोंसले में कभी बैठता नहीं, कभी फूलों की टहनियों पर, तो कभी नदी-तट पर होता हूँ।)

अतः हमारे पंथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है, जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला हमारे लिए न व्यक्ति रूप में उपयोगी है और न समुदाय-रूप में।

मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। निस्संदेह कला का उद्देश्य सौंदर्यवृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे अध्यात्मिक आनंद की कुंजी है, पर ऐसा कोई रूचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनंद नहीं, जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो। आनंद स्वतः एक उपयोगिता-युक्त वस्तु है और उपयोगिता की दृष्टि से एक वस्तु से हमें सुख भी होता है और दुःख भी।

आसमान पर छायी लालिमा निस्संदेह बड़ा सुंदर दृश्य है, परंतु आषाढ़ में अगर आकाश पर वैसी लालिमा छा जाए, तो वह हमें प्रसन्नता देने वाली नहीं हो सकती। उस समय तो हम आसमान पर काली-काली घटाएँ देखकर ही आनंदित होते हैं। फूलों को देखकर हमें इसलिए आनंद होता है कि उनसे फलों की आशा होती है, प्रकृति से अपने जीवन का सुर मिलाकर रहने में हमें इसीलिए आध्यात्मिक सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्ट होता है। प्रकृति का विधान वृद्धि और विकास है और जिन भावों, अनुभूतियों और विचारों से हमें आनंद मिलता है, वे इसी वृद्धि और विकास के सहायक हैं। कलाकार अपनी कला से सौंदर्य की सृष्टि करके परिचिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है।

परन्तु सौंदर्य भी और पदाथो की तरह स्वरूपस्थ और

निरपेक्ष नहीं, उसकी स्थिति भी सापेक्ष है। एक रईस के लिए जो वस्तु सुख का साधन है, वही दूसरे के लिए दुख का कारण हो सकती है। एक रईस अपने सुरभित सुरम्य उद्यान में बैठकर जब चिड़ियों का कलगान सुनता है, तो उसे स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है, परन्तु एक दूसरा सज्ञान मनुष्य वैभव की इस सामग्री को घृणित समझता है।

बंधुत्व और समता, सभ्यता तथा प्रेम सामाजिक जीवन के आरम्भ से ही, आदर्शवादियों का सुनहला स्वप्न रहे हैं। धर्म प्रतर्त्तकों ने धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक बंधनों से इस स्वप्न को सचाई बनाने का सतत, किंतु निष्फल यत्न किया है। महात्मा बुद्ध हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद आदि सभी पैग़मबरों और धर्म-प्रवर्त्तकों ने नीति की नींव पर इस समता की इमारत खड़ी करनी चाही, पर किसी को सफलता न मिली और छोटे-बड़े का भेद जिस निष्ठुर रूप में प्रकट हो रहा है, शायद कभी न हुआ था।

'आजमाये को आजमाना मूर्खता है,' इस कहावत के अनुसार यदि हम अब भी धर्म और नीति का दामन पकड़कर समानता के ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचना चाहें, तो विफलता ही मिलेगी। क्या हम इस सपने को उत्तेजित मस्तिष्क की सृष्टि समझकर भूल जाएँ? तब तो मनुष्य की उन्नति और पूर्णता के लिए आदर्श ही बाकी न रह जायेगा। इससे कहीं अच्छा है कि मनुष्य का अस्तित्व ही मिट जाय। जिस आदर्श को हमने सभ्यता के आरम्भ से पाला है, जिसके लिए मनुष्य ने, ईश्वर जाने कितनी कुरबानियाँ की हैं, जिसकी परिणति के लिए धर्मो का आविर्भाव हुआ, मानव-समाज का इतिहास, जिस आदर्श की प्राप्ति का इतिहास है, उसे सर्वमान्य समझकर, एक अमिट सचाई समझकर, हमें उन्नति के मैदान में कदम रखना है। हमें एक ऐसे नए संगठन को सर्वापूर्ण बनाना है, जहाँ समानता केवल नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर ले, हमारे साहित्य को उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।

हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुख-दुख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंत:पुर और बँगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े और खँडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था तो इनका मजाक उड़ाने के लिए। ग्रामवासी की देहाती वेश-भूषा और तौर-तरीके पर हँसने के लिए, उसका शीन-काफ दुरूस्त न होना या मुहाविरों का ग़लत उपयोग उसके व्यंग्य विद्रुप की स्थायी सामग्री थी। वह भी मनुष्य है, उसके भी हृदय है और उसमें भी आकांक्षाएँ हैं,-यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी।

कला नाम था और अब भी है संकुचित रूप-पूजा का, शब्दयोजना का, भावनिबंधन का। उसके लिए कोई आदर्श नहीं है, जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नहीं है, भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म और दुनिया से किनाराकशी उसकी सबसे ऊँची कल्पनाएँ हैं। हमारे उस कलाकार के विचार से जीवन का चरम लक्ष्य यही है। उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन-संग्राम में सौंदर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित् वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौंदर्य सुंदर स्त्री में है, उस बच्चों वाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेंड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है! उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होंठों, कपोलों और भौंहों में निस्संदेह सुंदरता का वास है,-उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियाँ पड़े हुए होंठों और कुम्हलाए हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहाँ?

पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है। अगर उसकी सौंदर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रंगे होंठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाए हुए होंठों और कुम्हालाए गालों के आँसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।

हमारी कला यौवन के प्रेम में पागल है और यह नहीं जानती कि जवानी छाती पर हाथ रखकर कविता पढ़ने, नायिका की निष्ठुरता का रोना रोने या उनके रूप-गर्व

और चोंचलों पर सिर धुनने में नहीं है। जवानी नाम है आदर्शवाद का, हिम्मत का, कठिनाई से मिलने की इच्छा का, आत्मत्याग का। उसे तो इक़बाल के साथ कहना होगा-

आज दस्ते जुनूने मन जिब्रील ज़बूं सैदे,
यजदाँ बकमंद आवर ऐ हिम्मते मरदाना।

(अर्थात् मेरे उन्मत्त हाथों के जिब्रील एक घटिया शिकार है! ऐ हिम्मते मरदाना, क्यों न अपनी कमंद में तू खुदा को ही फाँस लाए?)

चूं मौज साज़ बज़ूदम ज़े सैल बेपरवास्त,
गुमाँ मबर कि दरीं बहर साहिले जोयम।

(अर्थात् तरंग की भाँति मेरे जीवन की तरी भी प्रवाह की ओर से बेपरवाह है, यह न सोचो कि इस समुद्र में मैं किनारा ढूँढ़ रहा हूँ।)

और यह अवस्था उस समय पैदा होगी, जब हमारा सौंदर्य व्यापक हो जायेगा, जब सारी सृष्टि उसकी परिधि में आ जायेगी। वह किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित न होगा, उसकी उड़ान के लिए केवल बाग की चहारदीवारी न होगी, किंतु वह वायुमंडल होगा, जो सारे भूमंडल को घेरे हुए है। तब कुरूचि हमारे लिये सह्य न होगी, तब हम उसकी जड़ खोदने के लिए कमर कसकर तैयार हो जाएँगे। हम जब ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेंगे कि हजारों आदमी कुछ अत्याचारियों की गुलामी करें, तभी हम केवल कागज के पृष्ठों पर सृष्टि करके ही संतुष्ट न हो जाएँगे, किंतु उस विधान की सृष्टि करेंगे, जो सौंदर्य, सुरूचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो।

साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है।

हमें अक्सर यह शिकायत होती है कि साहित्यकारों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं, अर्थात् भारत के साहित्यकारों के लिए। सभ्य देशों में तो साहित्यकार समाज का सम्मानित सदस्य है और बड़े-बड़े अमीर और मंत्रि-मंडल के सदस्य उससे मिलने में अपना गौरव समझते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान तो अभी मध्य-युग की अवस्था में पड़ा हुआ है। यदि साहित्यकार ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो, और उन आन्दोंलनों, हलचलों और क्रांतियों से बेखबर हो, जो समाज में हो रही हैं, अपनी ही दुनिया बनाकर उसमें रोता और हँसता हो, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है। जब साहित्यकार बनने के लिए अनुकूल रूचि के सिवा और कोई कैद नहीं रही, जैसे महात्मा बनने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं, आध्यातिक उच्चता ही काफी है, तो जैसे महात्मा लोग दर-दर फिरने लगे, उसी तरह साहित्यकार भी लाखों निकल आए।

इसमें शक नहीं है कि साहित्यकार पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, पर यदि हम शिक्षा और जिज्ञासा से प्रकृति की इस देन को बढ़ा सकें तो निश्चय ही हम साहित्य की अधिक सेवा कर सकेंगे। अरस्तू ने और दूसरे विद्वानों ने भी साहित्यकार बननेवालों के लिए कड़ी शर्तें लगायी हैं, और उनकी मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक और भावगत सभ्यता तथा शिक्षा के लिए सिद्धांत और विधियाँ निश्चित कर दी गई हैं। मगर आज तो हिंदी में साहित्यकार के लिए प्रवृत्ति मात्र अलम् समझी जाती है और किसी प्रकार की तैयारी की उसके लिए आवश्यकता नहीं। वह राजनीति, समाज-शास्त्र या मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित हो, फिर भी वह साहित्यकार है।

साहित्यकार के सामने आजकल जो आदर्श रखा गया है, उसके अनुसार ये सभी विद्याएँ उसके विशेष अंग बन गई हैं और साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है। अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता, किंतु उसे समाज के एक अंग-रूप में देखता है! इसलिए नहीं कि वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपनी स्वार्थ-साधना का औजार बनाए-मानो उसमें और समाज में सनातन शत्रुता है-बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।

हममें से जिन्हें सर्वोत्तम शिक्षा और सर्वोत्तम मानसिक

शक्तियाँ मिली हैं, उन पर समाज के प्रति उतनी ही जिम्मेदारी भी है। हम उस मानसिक पूँजीपति को पूजा के योग्य न समझेंगे, जो समाज के पैसे से ऊँचे शिक्षा प्राप्त कर उसे शुद्ध-साधन में लगाता है। समाज से निजी लाभ उठाना ऐसा काम है, जिसे कोई साहित्यकार कभी पसंद न करेगा। उस मानसिक पूँजीपति का कर्तव्य है कि वह समाज के लाभ को अपने निज के लाभ से अधिक ध्यान देने योग्य समझे-अपनी विद्या और योग्यता से समाज को अधिक लाभ पहुँचाने की कोशिश करे। वह साहित्य के किसी भी विभाग में प्रवेश क्यों न करे, उसे उस विभाग से विशेषत: और सब विभागों से सामान्यत: परिचय हो।

अगर हम अंतर्राष्ट्रीय साहित्यकार-सम्मेलनों की रिपोर्ट पढ़ें तो हम देखेंगे कि ऐसा कोई शास्त्रीय, सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्न नहीं है, जिस पर उनमें विचार-विनिमय न होता हो। इसके विरूद्ध, अपनी ज्ञान-सीमा को देखते हैं, तो अपने अज्ञान पर लज्जा आती है। हमने समझ रखा है कि साहित्य-रचना के लिए आशुबुद्ध और तेज कलम काफी है। पर यही विचार हमारी साहित्यिक अवनति का कारण है। हमें अपने साहित्य का मान-दंड ऊँचा करना होगा, जिसमें वह समाज की अधिक मूल्यवान् सेवा कर सके, जिसमें समाज में उसे वह पद मिले, जिसका वह अधिकारी है, जिसमें वह जीवन के प्रत्येक विभाग की आलोचना-विवेचना कर सके, और हम दूसरी भाषाओं तथा साहित्यों का जूठा खाकर ही संतोष न करें, किन्तु खुद भी उस पूँजी को बढ़ाएँ।

हमें अपनी रूचि और प्रवृत्ति के अनुकूल विषय चुन लेने चाहिए और विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हम जिस आर्थिक अवस्था में जिन्दगी बिता रहे हैं, उसमें यह काम कठिन अवश्य है, पर हमारा आदर्श ऊँचा रहना चाहिए। हम पहाड़ की चोटी तक न पहुँच सकेंगे, तो कमर तक तो पहुँच ही जाएँगे, जो जमीन पर पड़े रहने से कहीं अच्छा है। अगर हमारा अंतर प्रेम की ज्योति से प्रकाशित हो और सेवा का आदर्श हमारे सामने हो, तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं, जिस पर हम विजय न प्राप्त कर सकें।

जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि सभी हमारे पाँव चूमेगी। फिर मान प्रतिष्ठा की चिंता हमें क्यों सताए? और उसके न मिलने से हम निराश क्यों हों? सेवा में जो आध्यात्मिक आनंद है, वही हमारा पुरस्कार है-हमें समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रोब जमाने की हवस क्यों हो? दूसरों से ज्यादा आराम के साथ रहने की इच्छा भी हमें क्यों सताए? हम अमीरों की श्रेणी में अपनी गिनती क्यों कराएँ? हम तो समाज के झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं और सादी जिन्दगी के साथ ऊँची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है। जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता। उसे अपनी मन:तुष्टि के लिए दिखावे की अवाश्यकता नहीं, उससे तो उसे घृणा होती है। वह तो इकबाल के साथ कहता है

मर्दुम आज़ादम आगूना रायूरम कि मरा,
मीतवाँ कुश्तव येक जामे जुलाले दीगराँ।

(अर्थात् मैं आजाद हूँ और इतना हयादार हूँ कि मुझे दूसरों के निथरे हुए पानी के एक प्याले से मारा जा सकता है।)

हमारी परिषद् ने कुछ इसी प्रकार के सिद्धांतों के साथ कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया है। साहित्य का शराब-कबाब और राग-रंग का मुखापेक्षी बना रहना उसे पंसद नहीं। वह उसे उद्योग और कर्म का संदेश-वाहक बनाने का दावेदार है। उसे भाषा से बहस नहीं। आदर्श व्यापक होने से भाषा अपने आप सरल हो जाती है। भाव-सौंदर्य बनाव-सिंगार से बेपरवाही दिखा सकता हैं जो साहित्यकार अमीरों का मुँह जोहनेवाला है, वह रईसी रचना-शैली स्वीकार करता है, जो जन-साधारण का है, वह जन-साधारण की भाषा में लिखता है। हमारा उद्देश्य देश में ऐसा वायुमंडल उत्पन्न कर देना है, जिसमें अभीष्ट प्रकार का साहित्य उत्पन्न हो सके और पनप सके। हम चाहते हैं कि साहित्य केन्द्रों में हमारी परिषदें स्थापित हों और वहाँ साहित्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों पर नियमपूर्वक चर्चा हो, नियम पढ़े जाएँ, बहस हो, आलोचना-प्रत्यालोचना हो। तभी वह वायुमंडल तैयार होगा। तभी साहित्य में नए युग का आविर्भाव होगा।

हम हर एक सूबे में हर एक ज़बान में ऐसी परिषदें स्थापित कराना चाहते हैं जिसमें हर एक भाषा में अपना संदेश पहुँचा सकें। यह समझना भूल होगी कि यह हमारी कोई नई कल्पना है। नहीं, देश के साहित्य-सेवियों के ह्रदयों में सामुदायिक भावनाएँ विद्यमान हैं। भारत की हर एक भाषा में इस विचार के बीज प्रकृति और परिस्थिति ने पहले से बो रखे हैं, जगह-जगह उसके अँखुए भी निकलने लगे हैं। उसको सोचना, उसके लक्ष्य को पुष्ट

करना हमारा उद्देश्य है।

हम साहित्यकारों में कर्मशक्ति का अभाव है। यह एक कड़वी सचाई है, पर हम उसकी ओर से आँखें नहीं बन्द कर सकते। अभी तक हमने साहित्य का जो आदर्श अपने सामने रखा था, उसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी। कर्माभाव ही उसका गुण था, क्योंकि अक्सर कर्म अपने साथ पक्षपात और संकीर्णता को भी लाता है। अगर कोई आदमी धार्मिक न होकर अपनी धार्मिकता पर गर्व करे तो इससे कहीं अच्छा है कि वह धार्मिक न होकर 'खाओ-पियो मौज करो' का कायल हो। ऐसा स्वच्छंदाचारी तो ईश्वर की दया का अधिकारी हो भी सकता है, पर धार्मिकता का अभिमान रखनेवाले के लिए सम्भावना नहीं।

जो हो, जब तक साहित्य का काम केवल मन-बहलाव का सामान जुटाना, केवल लोरियाँ गा-गाकर सुलाना, केवल आँसू बहाकर जी हलका करना था, तब तक इसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी। वह एक दीवाना था, जिसका गम दूसरे खाते थे, मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वस्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।

आओ हम दीप जलाएँ

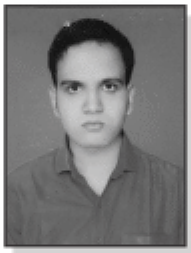

अमित कुमार
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

आओ, हम दीप जलाएँ,
चलो, जग में खुशहाली लाए,

फैले हुए अंधियारे को,
मिलकर दूर भगाए

आओ, हम दीप जलाएँ,
कहीं भी अंधकार न हो,

इस दीप की लौ बेकार न हो,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से,
किसी पर अत्याचार न हो

आओ घर-घर जाकर
हम जन जागृति फैलाएँ,

आओ, हम दीप जलाएँ
दु:ख का इतना भार न हो,

कि सुख हमें स्वीकार न हो,
आतंक, भय और लूट-पाट,
हम पर इसका प्रहार न हो,

अपने मन के अंतर
तम को मिलकर दूर भगाएँ,

आओ, हम दीप जलाएँ ...
आपस में तकरार न हो,

नफरत की दीवार न हो,
द्वेष, ईर्ष्या और छल-कपट,
जन में इसका व्यवहार न हो..

इस समाज में रहकर
हम मानवता दिखलाएँ,

आओ, हम दीप जलाएँ ...
भूखों को खिलाएँ हम,

रोतों को हँसाऐं हम,
जहाँ-जहाँ अंधियारा हो,

वहाँ उजाला लाएं हम,
आओ हम सब एक होकर ये अभियान चलायें
आओ, हम दीप जलाएँ...

बाहर आ कर

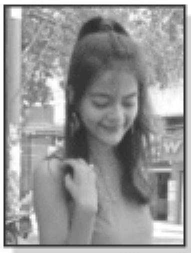

शिवांगी सिंह
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (तृतीय वर्ष)

बेधड़क-सी फिसलने दो तुम
बाँधने तो बहुत आयेंगे

कभी यूँ ही बेवजह बहकने दो तुम
मेरी नजरों को बेझिझक चमकने दो तुम

झुकने को तो सब बोलेंगे कभी यूँ ही
बेहिसाब हरकतें करने दो तुम

मेरे लफ्ज़ों को बेबाक बोलने दो तुम
चुप रहने की नसीहतें तो हैं कभी

यूँ हीं बेमतलब बड़बड़ाने दो तुम
मेरे बालों को बेढंगे बिखरे रहने दो तुम

सजने सवरने की अड़चने तो बहुत हैं
कभी यूँ ही बेफिक्री से होने दो तुम

मेरे हाथों को बेसहारा रहने दो तुम
हाथ थामने के वादे हज़ार हैं, कभी

यूँ ही बेटोक कुछ बनाने दो तुम
मेरे पैरों को बेसमझ आगे बढ़ने दो तुम

सुलझाने रास्ते तो बहुत चले कभी यूँ
बेखौफ अंजाने रास्ते पर चलने दो तुम

मेरे ख्वाबों को बेइंतहा फैलने दो तुम
सपने तो सारे मार दिए
कभी यूँ ही खिलखिलाकर हँसने दो तुम

मैं और तुम

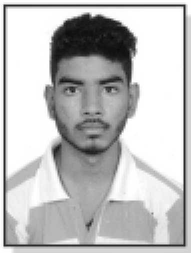

दुर्गेश भट्ट
बी.एससी. (प्रतिष्ठा)
भौतिकी (प्रथम वर्ष)

जो मुझे खुद से रूबरू करवाये, ऐसा आइना है तू
तेरी खूबीयाँ बेमिसाल हैं, एक नगीना है तू,
नींद में ख्याल में भी पाक रखा है तुझे,
मेरी नज़र से देख मक्का मदीना है तू।

एक तुझको छोड़कर बाकी सबके लिए अजीब हूँ मैं
सिर्फ एक तू ही है जिसके इतना करीब हूँ मैं
तेरे साथ बिताए पल अगर दौलत हैं तो
यकीन मान मेरा, गरीब हूँ मैं।

ज़िंदगी के दुख अकेले सह पाओगे,
बिना उसके दीदार के कब तक रह पाओगे,
चलो माना ईश्क बेपनाह करते हो तुम,
पर क्या ये बात उससे कह पाओगे।

सोचता हूँ तुझे बनाने वाले की सूरत कैसी होगी,
आँखों में तुझको भर लेने से तबियत कैसी होगी,
हम तुम्हे फकत इसलिए भी चाहते हैं कि,
जब तेरी नफरत ऐसी है, तो मोहब्बत कैसी होगी?

तीर दिल पर ऐसे न चला दिल घायल हो जाए,
हुनर ऐसा है तुझमें कि हर शख्स तेरा क़ायल हो जाए,
हैरत करती है दुनिया मेरी पसंद देखकर,
जो कभी मेरी मोहब्बत देख ले तो पागल हो जाए।

निर्भीक औरत

सच और झूठ
हिंसा और प्रेम
के बीच
होंगे बहुतेरे सवाल भी
जिन्हें वे मारते रहेंगें

एक गोली से
छलनी करेगा शरीर
होंगें और भी जो
लांछनों से
खुरचेंगें चरित्र की त्वचा

राष्ट्र, क्षेत्र, धर्म और जाति के
सारे खेल
औरत की देह और उसके विचार की
हत्या पर खेले जाएँगें

एक संस्कृति
जो डरती है सवालों से
उससे ज़्यादा डर है उसे
निर्भीक औरत के ख़्यालों से

तुम्हारे लेखों
तुम्हारे बोलों
के बारे में भी कुछ लोग कहेंगें
हो सकता है वो
कम भी होते जायँ धीरे धीरे पर

तुम बोलती रहना
गीत आज़ादी के गाती रहना

अरमानों का कब्रिस्तान

पुनीत यादव
इतिहास विभाग
किरोड़ीमल कॉलेज

ये हमने सोचा न था,
दिन ऐसे भी आएंगे
फर्क बताना मुश्किल होगा
भ्रष्टाचार के खिलाफ है सरकार
या, भ्रष्टों की है सरकार

इसपर भी होगी
लोगों की लफ़्फ़ाज़ी
पैंतरे होंगे तमाम
अच्छे दिन आएंगे
होगा यही गुणगान

धर्म, क्षेत्र और जाति
तो बीती हुई बात होगी
बांटे जाएंगे घर, निवाले और रोटी

कहकर खुद को फकीर
निकालेगा वो फरमान
बदला जाएगा यूँ हर नियम
जीवन तय करेगा हमारा संयम

ये सोचेंगे हम और वो भी
जब रोएगा हर इंसान
लेकर अपनो की ही जान
जो था घर अरमानों का
वो क्यूं बन गया कब्रिस्तान?

कल की परछांही
इतिहास के पन्नों पर

डॉ. विनीता शर्मा
अर्थशास्त्र विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

खुद को नहीं पाता हूँ
क्या बीता कल ऐसा ही था
रिक्त मुझसे
या वर्तमान की कल्पना है
एक अधूरी कहानी

ऐसा क्यों मुझको लगता है
मेरा होने से सम्राट भी है,
जो मैं न हुआ तू वो भी नहीं।
राजा हुआ यूँ राजा
कि मैं प्रजा था

मुझपर दया कर महान हुए,
मुझपर ही अत्याचार कर क्रूर।
महल दीवारें किले मकबरें
राजाओं ने जो बनवाए थे

कड़ी धूप में खड़े हो मैंने
इन हाथों से बनाए थे
विजयी हुआ जब राजा तब भी
अस्त्र शस्त्र उस विजय के

मैंने ही बनाये थे
विजय के जश्न मैं भूल गए सब
मैंने जो प्राण गवाएं थे
कभी जुलाह बन कभी दासी कभी सुनार

किया रानियों का रूप-श्रृंगार
पर सुनी जब कहानी
उसमें थी बस एक सुन्दर रानी
सम्राटों के हाथी घोड़ों के,
निर्जीव धनुष-तलवारों के भी
प्रसिद्ध नाम और वर्णन हैं

कहाँ हूँ मैं जुओं कभी था नहीं
खुद को जब मैं कहीं नहीं पाता हूँ
अपने इस उद्देश्यों से अस्तित्व से
बहुत विचिलित हो जाता हूँ

पर नहीं
वर्तमान ने देखा नहीं
न राजा को न रानी को
मेरा अस्तित्व यहाँ अंकित है

और क्या है किसी उल्लेख से कम है
इतिहास से अगर कुछ है जीवित
तो केवल मेरी शर्म है

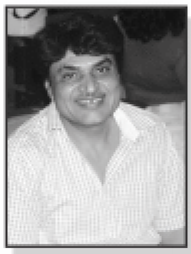

डॉ. बली सिंह
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

ये महज बच्चों की लिस्ट नहीं

ये कोई स्कूली बच्चों की लिस्ट नहीं
कि कितने स्कूल आए
कि कितनों को मिला 'मिड्डे मील'
कि कितनों के पास हैं किताबें
कि कितनों को मिली वर्दी
और कितने गए पिकनिक पर।
ये लिस्ट तो
उन बच्चों की है
जो घर से तो निकले
पर लौटे ही नहीं घर।
ये महज बच्चों की लिस्ट नहीं।
आशंकाओ की लिस्ट है।

लोग...

लोग उस पर जीते जी तो काबिज रहे,
मरने के बाद भी, उसका पीछा नहीं छोड़ते,
उस पर कब्जा जमाये बैठे हैं।
कभी किसी नाम पर
और कभी किसी नाम पर...!
मरा हुआ आदमी, बिगाड़ ही क्या सकता है!
वो खुद ही कमजोर है
या कहें कि,
वह कमजोर है, तभी तो मरा हुआ है।

चंदा कैसे बिसराऊँ?

डॉ. प्रज्ञा
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

बित्ते भर की छोरी
आग लगे तेरी जबान में
न हैसियत देखती है न सच
बस तुझे चाहिए चंदा
कोई खिलौना है क्या?
ताड़ सी लम्बी हो गयी
पर जिद्द तो देखो तुझसे भी दो हाथ आगे
एक ही जिद चंदा की रट
खिड़की से देख ले न जी भर
बाज़ार में दाम चढ़ा है तेरे चंदा का।
रो न बिटिया चली जा
अपने घर
भूल जा चंदा को
मै भी भूल गयी थी देहरी लांघकर
जानती है न
रात के चंदा को सुबह का सूरज निगल जाता है।

अम्मां
मन में बसा आँख में चमकता
जुबान से फिसलता हथेली पे रचा
सपनो में हुलसता
चंदा कैसे बिसराउँ ?
मेरी आखिरी सांस की आस है चंदा
है किसी देबता में हिम्मत
जो निगल जाए इसे मेरे संग पूरा।

रॉस आइलैंड को देखकर

तुम घर बसाने नहीं आये थे
घर सपना होते हैं।
अपना घर छोड़ हुकूमत को तुमने पैर पसारे
हमारी खूबसूरत ज़मीनों को आँखों में भरा
धरती की गंधा को अपने नथुनों में
लहरों के परों पर सवार
झट इसे हथिया लिया।
ईंट, गारा, पत्थर उठाने ,
इमारत बनाने को मज़दूर मुफ्त मिले
जेल याफ़्ता कैदी तुम्हारे हुकुम बजाते
तुम्हारी बगिया सींचते
तुम्हारे हर जुल्म के बदले फूल खिलाते।
उनके दिमाग में चल रही क्रान्ति की उधेड़बुन से
तुम्हारा क्या वास्ता?
तुम्हें मतलब उनके हाथ और पाँव से
उनके खून और पसीने से
तुम उनके दिमाग के दुश्मन थे
दिमाग, जो मुक्ति की राह बुनते।
उधेड़ने-बुनने वाली सलाइयां तुमने मिटा डालीं
या भौंक दीं सपने देखने वाली आँखों में।
ज़िन्दगी का बहुत छोटा-सा सच तुम नहीं जान पाए
आँखें खत्म होने पर भी सपने कहाँ मरते हैं?
तुम बनाते गये इमारत दर इमारत।
द्वीपों की कायनात में अपनी बस्तियां बसा लीं
धरती की सुकून भरी सुंदर गोद में

तुम महफिलें सजाते
तुम जीत का जश्न मनाते
ताल, लय और मुद्राओं से भरकर
तुम बनाते हर ते की रंगारंग सूचियाँ
उनके मुताबिक खान-पान
ऐशो आराम।
बिजली, पानी के संयंत्र से सुसज्जित
बन गया ये द्वीप
एशिया का पेरिस।
तुम्हारी गिरफ्त में हमारी धरती की देन
उसका अमर कोष
और अभूतपूर्व सौंदर्य के बीच तुम राजा
हम चाकर
हम दास।
हर जुल्म के बाद भी बने रहे तुम धार्मिक
बड़े आस्थावान
गिरजे में प्रार्थना के पाबन्द।
आज इतने सालों बाद यहाँ कोई नहीं
मीलों उजाड़ पसरा है।
समय मिटा देता है ऐशो आराम के सब निशाँ
क्रूरताओं की मिसालें।
तुम नहीं, कोई महफ़िल नहीं
तुम्हारा कोई नाम भी नहीं
सिवाय उन कब्रों के
जिनमें तुम्हारे नन्हें बच्चे, नौजवान और औरतें
जाने कबसे सो रहे हैं
हमने कभी नहीं जगाया उन्हें।
पृथ्वी के नियम इंसान तय नहीं करता
तुम्हारी हर इमारत हमारी प्रकृति की गिरफ्त में है
नंगी इमारतों में छत के बिना
आसमान घुसा चला आया है
दरों-दीवार पेड़ों ने कब्जा लिये हैं
मिट रहीं इमारतों में दिखती हैं पेड़ों की जड़ें
जड़ों में और -और फूट आई जड़ें
अनगिनित, अंतहीन
धरती जैसे अन्यायी को सजा देने निकली।
धरती का सब क्रोध, पीड़ा के उफान को लिए
जड़ें चढ़ती चली आ रही हैं
फैल गई हैं रास्तों में,
खा गई तुम्हारी महफिलों के हर नक्श
जमीन फोड़कर चिल्लाती बढ़ी चली आ रही हैं
जाने कब से।
शायद ये प्रतिशोध है
तुम्हारी बर्बर क्रूरताओं से भी सघन
तुम्हारे अट्टहास के मुकाबिले शांत
भीतर की घुटन और गुबार को पटकता
बरसों जो दफन रहा धरती के दिल में
तमाम क्रंदन फैल गया चहुँ ओर।
हाय! तुम अपनी सम्पूर्ण यशगाथाओं के संग
अमर नहीं हुए...
धरती, फोड़ दी गयी आँखों का सपना लेकर
दोबारा जन्मी है।
मुझे लगता है
धरती भी जैसे समय है
वो हर ताकत को
जो दम्भ में फूली इतराती है
उसकी माकूल जगह दिखाती है।

पहरा

दंगों का वह खौफ़नाक दिन
जब-तब कौंधा जाता है उसकी आँखों में,
हुआ था कत्ल इन्सानियत का,
हुआ था तार-तार भाईचारा,
हुआ था खण्ड-खण्ड विश्वास!
हर कोई हर लेना चाहता था,
कल्पित दुश्मन का जर,
जोरू, आसबाब
लूट-खसोट का तांडव होता दिन-रात
देखा था उसने
कैसे उस निर्दोष को, हत्यारिन भीड़ ने
लाठी-पत्थरों की बौछारों से
कर अधमरा कोयलों की जलती भट्टी में झोंक दिया था जिंदा,
तड़पते-मरते उस बंधु ने माँगा जब पानी
किसी आततायी ने ठूँस दिया था उसके मुँह में जलता कोयला।
देखा था उसने, मिलजुल कर रहती थी,
मोहल्ले की जो आवाम
सुख-दुख में साथ रहते थे सभी
एक दूसरे से खौफ खाने लगे थे अब वहीं
कभी साथ रहने वाले,
गली के दोनों छोरों पर,
एक दूसरे के विरुद्ध देने लगे थे पहरा
देखा था उसने,
वहशीपन के एक झोंके ने,
वर्षों के सांझे जीवन से,
एक को पल भर में कर दिया था निष्कासित।
देख रहा है तब से वह,
एक राष्ट्र में कई राष्ट्र,
एक समाज में कई समाज,
बंटे हुए लोग
आज भी
एक दूसरे के खिलाफ
दे रहे हैं,
निरंतर पहरा।

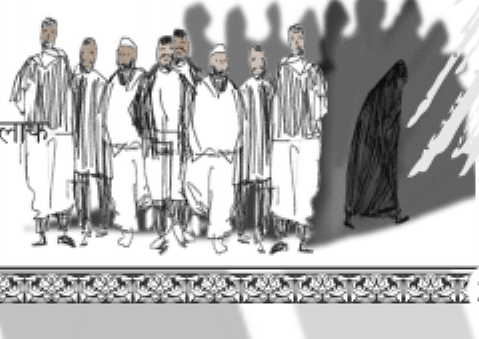

जड़ें

डॉ. नामदेव
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

है एक दक्षिणी ध्रुव
और एक उत्तरी
मनुष्य-समाज बँटे
और बँटे व्यक्तित्व इनमें
दो ध्रुवों पर हम भी
लेकिन हमारे
शब्द, अर्थ, स्वर
हैं एक,
है न यह भ्रम
न कपोल कल्पना,
है यह वह विश्वास
अंत है नहीं जिसका।
चेतना मेरी
शब्द तुम्हारे
चेतना तुम्हारी
शब्द मेरे
हैं जुड़े एक तार से
जड़ें जिसकी ज़मीन में
लेकिन देखते हम आसमां में।

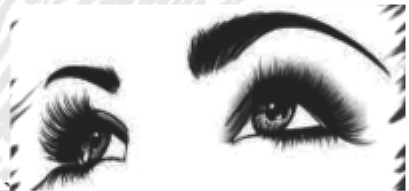

भरोसा

विश्वास
भरोसा
निष्ठा
हैं जीवन आधार
नित्य भरते जो जीवन में स्पंदन
क्रंदन जीवन भी होता हर्षित
पाया जा सकता है
इनको जीवन के सरलीकरण में
विश्वास
भरोसा
निष्ठा
शब्दों के माधुर्य में नहीं
वाक्पटुता में नहीं
स्वार्थी संबंधों में नहीं
कुटिल मुस्कान लिए चेहरों में नहीं
मिलते हैं ये
सहृदय के सरल सुबोध व्यवहार में
आस्था के समान धरातल पर।
विश्वास!
भरोसा!
निष्ठा!!!

पिता

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल महाविद्यालय

बहुत देखा है माँ को संघर्ष करते
कभी बेटियों की पढ़ाई के लिये फिक्रमंद,
कभी जीवन में सही दिशा चुनने की साथी के रूप में,

कभी हारी, कभी बीमारी,
हर जिम्मेदारी को पूरी तरह निभाते देखा माँ को,
पर जब आज आँखे खोल के पीछे देखती हूँ तो पाती हूँ
कि, इन सब के पीछे कोई और भी है जो

अपना प्यार कभी अपनी डाँट के साथ हर कदम खड़े रहे
माँ के साथ।
खाँसी या छींक भी आ जाने पर अपनी दवा की शीशी लिये
हम चारों के पीछे भागते हुए,

हर बेटी की किताबों के कवर चढ़ाने से लेकर,
स्कूल ले जानेतक,
हमारे रिजल्ट के रिपोर्ट कार्ड संभाल,
कर रखने से लेकर ,

उस हर भविष्य की योजनाओं में हमारा संबल हैं
हाँ देखा है बहुत माँ को संघर्ष करते पर
जो साथ चुपचाप इन सबके पीछे एक मज़बूत
दरवाज़े की तरह रहे वो हमारे पापा हैं।

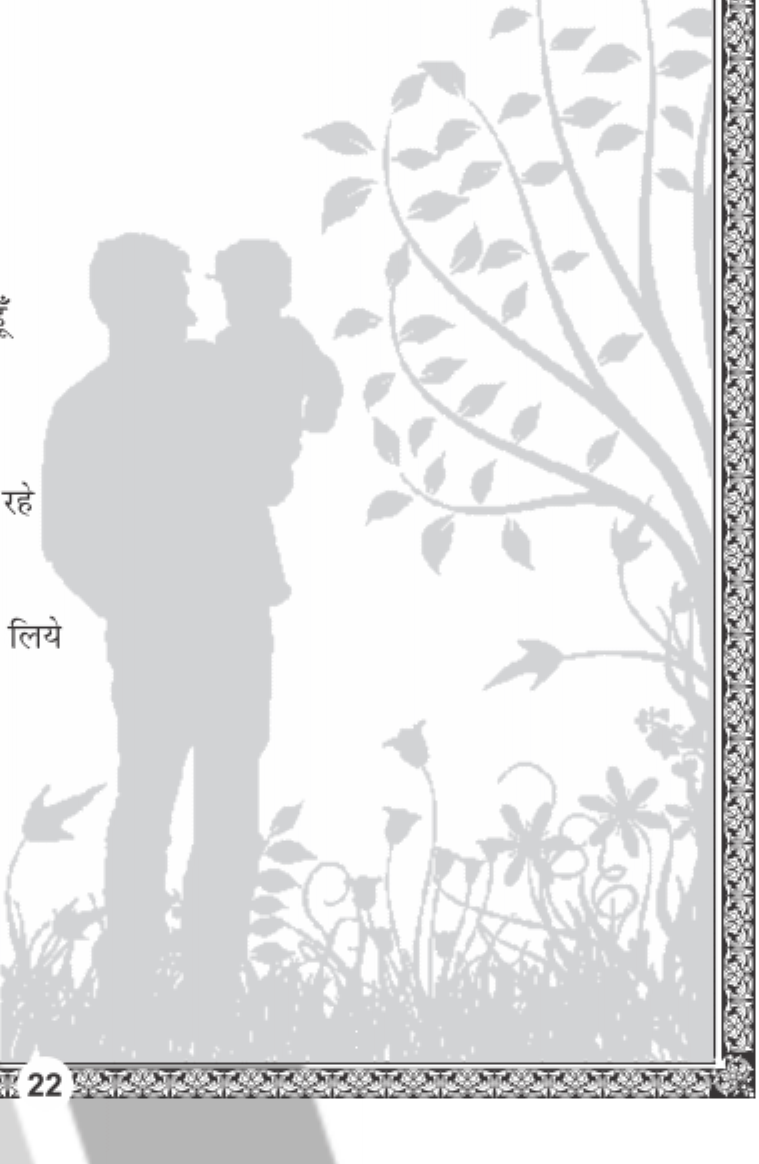

मीरा क्या है?

डॉ. मंजू रानी
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

मीरा एक फूल है,
जो काँटों के बीच भी खुशबू बिखेरती है।
मीरा एक महान संत है,
जो भक्ति को फैलाती है।
मीरा एक सोच है,
जो अटूट प्रेम निभाती है।
मीरा एक शांत झील है,
जो शांति का पाठ पढ़ाती है।
मीरा एक बदली है,
जो सूखा देख बरस जाती है।
मीरा एक साथग्क रूप है
जो शक्ति-बल, ज्ञान का इत्र
चारों दिशा में छिड़कती है।
होली के रंग
चलो खेलें आज मीरा के संग
कृष्ण-राधा तो खेले होली
मीरा रहेगी क्या बेचारी अकेली
नीला,पीला और गुलाबी
प्रेम-त्याग-सहनशीलता की मूर्ति
मीरा तो भई आज बावली
क्यों न चलो आज ऐसी खेलें होली
जिसमें नहीं कोई अभेद
मीरा नाम बस स्मरण कर लो
प्रेम पर किसी का हक नहीं होता
चाहे हो राधा या रुक्मण
सब ने किया और करती रहेगी
जग ही पुरानी यह रीति
चले हम भी लिए यह ज्योति
आओ प्रेम दीप हम जला दें
जीवन से अंधियारा हटा दें
प्रेम, प्यार और स्नेह के रंग से
आज क्यों न हम खेलें होली
इस होली का रंग न उतरे
चलो अभी भी देर नहीं हुई
लो अब मंजिल दूर नहीं है
आशाओं की किरणें खिली हैं।
नभ भी हो गया अब श्वेत
मीरा का देख प्रेम-अथाह
कृष्ण संग अब मीरा नाचेगी
अब नहीं कोई हृदय-सन्देह
धरती गगन में गूंजेगा यह गान
मीरा-कृष्ण यह अमर नाम।

मीरा बन गई हूँ मैं

मुझे लगता है, मैं मीरा बन गई हूँ
रह-रह कर पीड़ा सहने लगी हूँ
पल-पल मरके मैं जीने लगी हूँ
रात-रात भर मैं रोने लगी हूँ
चल-चल के अब रुकने लगी हूँ
कृष्ण-कृष्ण नाम माला जपने लगी हूँ
प्रेम प्रेमरूपी सागर में डूबने लगी हूँ
जन जन में अब जोगन बन घूमने लगी हूँ
झुम-झुम का नृत्य करने लगी हूँ
मन मन मंदिर में अब डूबने लगी हूँ
कर कर जोड़ बंधना करने लगी हूँ
दिन-दिन प्रतिदिन प्रियतम से मिलने लगी हूँ

एक गर्म दिन

डॉ. रोहित कुमार
हिंदी विभाग,
किरोड़ीमल कॉलेज

कुछ तेज़ जलने लगा है सूरज
भिनभिनाने लगीं हैं दुपहरें
मोड़ पर खड़ा बेबस पीपल भी अब ऊँघने लगा है।
नीचे रखे मटके भी अब सफेद पड़ चुके हैं
अब कोई नहीं आता यहाँ
प्यास की कहानी अब खत्म हो चुकी है
कुछ कंकड़ हैं बस..... भीतर और बाहर

हाँ, एक चमगादड़ है जो
टटोलता फिरता है खंडरों को और सन्नाटा भी पसरा रहता है
बस वही है जो रात को धोंकता, तारों को सुलगाए रखता है

और धीरे-से
राख हो चुके आसमान पर
चाँद......
उस ओर से चुपचाप बहता चला जाता है।

अंधानुकरण और आस्था

जुनैद
बी.ए.(प्रष्ठिा)
हिंदी प्रथम वर्ष

हम अक्सर अपने रोजमर्रा की जिंदगी में कुछ विशेष समुदाय धर्म तथा पंथ के मानने वाले लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि यह मेरी आस्था है या मेरी आस्था के विरुद्ध है तो अब सवाल यह उठता है कि यह आस्था क्या है? और यह अंधानुकरण को बढ़ावा कैसे देती है? यह मानव मन में क्यों उपजती है इसकी पृष्ठभूमि क्या है और किन परिस्थितियों में इसका आविर्भाव मानवीय मन में होता है। व्यक्ति की मानसिकता व चरित्र पर इसका क्या प्रभाव होता है? यह सारी बातें निर्भर करती है कि इसका केंद्र व स्वरूप क्या है? आस्था शब्द भावनात्मक शब्द है। यह ऐसी भावना होती है जिसमें व्यक्ति अपने अहम को त्याग कर उस भावना के प्रति स्वंय(मैं)को पूर्ण समर्पित कर देता है। इसके अधीन स्वयं को दीन-हीन समझने के बावजूद भी वह इसके साथ मजबूती से जुड़ा महसूस करता है इसके पीछे वह ऐसी अपूर्व और असीमित शक्ति व माधुर्म को महसूस करता है जो उसे अपने प्रति आकर्षित करती रहती है परंतु इसके संपर्क में आकर व्यक्ति तार्किक कम और भावुक अधिक रहता है। यही भावुकता व्यक्ति की बौद्धिकता को कमजोर कर उसे अंधानुकरण की ओर प्रवृत कर देती है। इसके प्रभाव में आकर वह ना तो जिसमें व जिसके प्रति आस्था रखता है उसे समझ पाता है और न स्वंय की क्षमता को वह इसके रंग में इस तरह रंग जाता है कि फिर व्यक्ति का अपना कोई स्वंतत्र नज़रिया नहीं होता वह उस आस्था के चश्मे को लगाकर जिससे वह प्रभावित होता है पूरे संसार को देखने लगता है इसका प्रभाव इतना गहरा होता है कि इसका हवाला देकर उस व्यक्ति को गलत एवं अमानवीय गतिविधियों तथा भारत जैसे देश में अन्य बाबाओं का अपना अपना पक्ष खड़ा कर लोगों की मानसिकता को बदलता है। यहाँ तो अंधानुकरण का इतना भयंकर प्रभाव है कि यहाँ समोसे से खाने तथा कोल्ड-ड्रिंक पीने और बाबा के खेत से ₹1000 की मिर्च खरीदने से कृपा हो जाती है। सारे दुख दूर हो जाते हैं। विश्व में माने जाने वाले सभी धर्मो का एक ही उद्देश्य है सदभाव व शांति बनाएँ रखना। मानवता को मानव को जगह रखना। प्रत्येक धर्म के पृष्ठभूमि को देखें तो पता चलेगा की प्रत्येक धर्म ऐसी परिस्थितियों में उपजा है जहाँ विभिन्न जटिल परिस्थिति आई थी। मानवता अशांति अराजकता की गर्त में डूबी हुई थी। आलोक में अब यह पक्ष उठता है कि जिन धर्मों ने जलती मानव जाति को शीतलता प्रदान की आज उन धर्मों की आड़ में मानवता को क्यों भुलाया जा रहा है। इसका मुख्य कारण आस्था के मद में धर्म का अंधानुकरण है। यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि व्यक्ति की बौद्धिकता को आस्था सीमित कर देती है। ऐसे मैं इसके प्रभाव में आने वाले लोग तार्किक क्षमता को खो बैठते हैं। सही और गलत मैं फर्क नहीं कर पाते क्योंकि उन्होने अपनी आँखो पर आस्था का चश्मा चढ़ाया होता है। वह अंधानुकरण करने पर मजबूर हो जाते हैं। उनकी आस्था उन्हें सच्चाई व तार्किकता को स्वीकार करने की इजाजत नहीं देती। भला सामोसे खाने से किस के दुख दूर हुए हैं? किस धर्म में ऐसा लिखा है कि अपने स्वयं के लिए इंसान, इंसान का खून करे। परंतु आज यह सब काम धर्म की आड़ में हो रहा है। राजनैतिक स्वार्थ, आर्थिक, स्वार्थ, सांस्कृतिक स्वार्थ व अपने सामाजिक स्वार्थ को पूरा करने के लिए कुछ लोग आम लोगों को आपस में लड़ाते रहे हैं। आखिर लोग क्यों लड़ रहे हैं? वह इसलिए लड़ते हैं कि उन्हें किसका हवाला दिया जाता है वह उनकी आस्था का प्रतीक है। अतः हमें अंधानुकरण से बचना चहिए। आस्था को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चहिए। आस्था से मानव की निर्माण की प्रवृत्ति पर तथा उसके कोमल स्वभाव पर भी असर पड़ता है जिससे वह मानव अपने पतन की और प्रवृत्त होता है। मानव को सदैव तार्किक एंव बौद्धिक, दृष्टि अपनानी चाहिए ताकि वह अंधानुकरण और अंधविश्वासो से बचकर मानव समाज में नई अलख जगा सके।

सैनिक

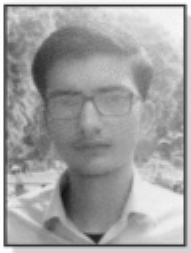

महेन्द्र सिंह
बी.ए. (प्रतिष्ठा) हिंदी
(प्रथम वर्ष)

जो वारे तन अपना
वतन के लिए
जो छोड़ दे घर अपना
वतन की रक्षा के लिए
जो सेके तन अपना धूप में
वतन के लिए
जो जीता है सिर्फ
वतन के लिए
वह है सैनिक

जो खड़ा रहता है बंदूक लिए
वतन की रक्षा के लिए
छोड़ घर बार परिवार
अपना सब
शौर्य वीरता से
अपनी झोली का भर
राष्ट्र रक्षा ही है
उसका धर्म
दुश्मन को दिखाता है
अपना दम
वह हैं सैनिक

जो खड़ा रहता है सीमा पर
चाहे दिन हो या रात,
धूप हो या बरसात
खड़ा रहता है हमेशा
शेर-सा भरे दम
रहता है उसकी जुबान पर हर दम

आदमी और वृक्ष

आर्यन यादव
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (तृतीय वर्ष)

आदमी और वृक्ष
खड़े हैं, एक-दूसरे के समकक्ष।
और चल रही थी, बहस।

आदमीः मैंने कर लिया है इतना विकास। कि डिब्बों में भर लिया मैंनें खास। अब दवा भी मैं अंग्रेज़ी खाता हूँ। अक्सर वैज्ञानिक तकनीकी अपनाता हूँ।

वृक्षः हाँ हाँ मैं सब जानता हूँ। पर शायद तुम नहीं समझते।

आदमीः हा ! हा! हा ! ये मूक, निरीह, निराधार, हमें समझाते हैं। जो खुद तो चल नहीं सकते, हमें चलना सिखाते हैं।

वृक्षः हाँ, हाँ मैं मूक हूँ, अचल हूँ, मगर देखता सब हूँ। जबसे तुमने उपयोग किए हैं, वैज्ञानिक उपादान। अभिशाप बन गए हो तुम, जो थे अब तक वरदान। आपने कहा, आप दवा अंग्रज़ी खाते हैं। जरा पता लगाओ, ये अंग्रेज़ी औषधि कैसे बनाते हैं। हम इस प्रकृति की अमूल्य निधि हैं। तुम तो क्या तुम्हारे पूर्वज भी हमारे ऋषि हैं।

अब आदमी झल्ला उठा।
मुँह लाल-पीला होने लगा।

आदमीः बोला, तुझे एक झटके में उखाड़ सकता हूँ। तेरी प्रकृति समूल सहित उजाड़ सकता हूँ।

वृक्षः तुम यही कर सकते हो। और तुमने आज तक किया ही क्या है, हमारे साथ। तुम समझते हो, तुम हमें नष्ट कर रहे हो। यह तो बस तुम्हारा भ्रम है। हमारे बाद तुम्हारे ही नष्ट होने का क्रम है।

आदमी का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। हाथ में हथियार ले वृक्ष पर टूट पड़ा। और एक झटके में वृक्ष धराशाही हो गया।

अब ये खबर जंगल में फैल रही है। अब हर पेड़ के सिर पर कयर चल रही है। देखते ही देखते सब साफ हो गया। इस धरा का आखिरी जंगल भी राख हो गया। आदमी अपने अट्टहास में मग्न था। वह नहीं देख रहा,

अपना भविष्य।
जो हो रहा नग्न था।

सहसा शहरों से हवा चली।
काले कुम्हलाए बादल की।

हर तरफ अंधेरा छा रहा।
मानो तूफान-सा आ रहा।

आदमी घबरा उठा।
और ईश वंदना करने लगा।

रेत थी मुट्ठी में, वो तो निकल गई, समय की। अब बस पछताना बाकी रह गया। आदमी के सपनों का महल देखते ही देखते ढह गया।

बिजली की कड़कड़ाहट से लगा।
बादल-सा फट गया।

अब यहाँ सब कुछ जलमय हो गया।
और सोचने को कोई भी न रह गया।

प्रकृति और मनुष्य

अमन तिवारी
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

प्रकृति पर कहर आया है,
मानव ही तो लाया है,
पेड़ों को कटवाया है,
इमारतों को बनवाया है,
मशीनों का, प्लास्टिकों का,
मिलों का, कारखानों का
आविष्कार सीमा से अधिक कराया है,
मातृ-भूमि के गौरव को इन
आविष्कारों ने बढ़ाया है,
पर प्रकृति का क्या?
उसमें प्रदूषण ही प्रदूषण
इन सबने फैलाया है,
कहीं बरसता पानी आवश्यकता से ज्यादा हैं,
कहीं पानी की एक बूँद के लिए
किसान तरस जाता है,
बहती स्वच्छ नदियों को गंदे
नालों में तबदील कराया है,
प्रकृति तो शांत थी ना?
उसके सौंदर्य पर दाग
हर एक मनुष्य ने लगाया है,
प्रकृति का रूप अनोखा
कभी सूखी धरा-धूल उड़ाती हैं,
आज उसी हवा को देखो
वह हवा भी हमें जहरीली
नजर आती है,

वो छोटी-छोटी चंचल चिड़ियाँ
जिनसे उड़ना सीखा था,
मतवाला तितली से मैंने
इठलाना सीखा था,
जिस तरह चिड़िया खत्म हुई?
क्या प्रकृति भी एक दिन
खत्म हो जाएगी?
मेरा मानना है हर कवि व
कवित्री की कविता जरूर
परिवर्तन लाएगी,

प्रकृति के कण-कण में
सुन्दर संदेश समाया था,
उसके आधार को हमने
निर आधार बनाया है,
प्रकृति पर कहर आया है
मनुष्य ही तो लाया है

कायर

अमन तिवारी
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

तू दरिंदा है,
मैं अभिमान हूँ।
तू कायर है,
मैं स्वाभिमान हूँ

कमजोर किये बिना
मेरे शरीर को हाथ
तुम ज़रा लगा देना,
मुँह तोड़ कर हाथ में दे दूंगी
ज़रा सामने आकर दिखा देना,

तू शक्तिशाली नहीं
तू हवस का शिकार है,
तू देख ज़रा उस लड़की को
उसके सामने तेरी क्या औकात है,

तू पूरी गैंग लिये करता
एक निहत्थी पर वार है,
तू अकेले सामने आ उसके
हर एक जन्म याद दिला देगी,

वो भारत की नारी है,
तुम्हारा सर शर्म से झुका देंगी,

तू देता उसको घाव हैं,
तू सब कुछ छीन लेता है उसका

हिम्मत तो देख उसकी
वो फिर भी खुद को न्याय दिलाती है
कटघरे में खड़े हो कर
फिर वहीं दास्तान दोहराती है,

पूरी दुनिया का सामना कर वो
तुम्हें फाँसी के फंदे पर पहुँचाती है,
वो नारी है,
हर मुसीबत से खुद को बचाती है।

आतंकवाद

अक्सर मेरा मन चिंता में डूब जाता है,
कुछ देर सोचकर ही दिल पसीज़ जाता है।
'आतंकवाद' हो गया है एक ऐसा मुद्दा,
लाखों प्रयत्न भी इसे बना न सकें गुमशुदा।
भारत ही नहीं पूरा विश्व है परेशान,
हर समय नया रूप धारण करता ये शैतान।
CST, होटल ताज, संसद भवन या हो वर्ल्ड ट्रेड सेंटर,
न किसी की परवाह, न ही देखता है जेंडर।
चोरी, डकैती, अपहरण, हिंसा और बम विस्फोट,
कभी घुसपैठिया बनकर तो कभी बनकर होस्ट।
दिन का उजाला हो या हो काला अंधकार,
अचानक फैला देता है धुआँ और हाहाकार।
कमी नहीं है इस दुनिया में अजूबों की,
कुबुद्धि, विचारहीन और गलत मनसूबों की।
मासूमों, बच्चों और निहत्थों का शिकार,
बन जाता है उनका पंसदीदा कारोबार।
कोई खो देता है पुत्र तो कोई पिता,
कोई अस्पताल में हर पल मरता और जीता।
कैसे हो सकता है कोई इतना निर्दयी,
शोर, अशांति और चीखें नहीं देती सुनाई।
आंतकवादी संगठनों से मिलना और जुड़ना,
प्रशिक्षण लेकर उसी दिशा में मुड़ना।
सुनिचित कर देता है उनके अंत की घड़ी,
छोटी-सी समस्या को बना देता है बड़ी।
शिक्षा, अहिंसा, अमन, शांति और प्यार,
होना चहिए उन सबका भी हथियार।
पर उन्हें ये बातें कौन समझाए,
कौन उन्हें सच से रू-ब-रू कराए।
लेना होगा स्वंय को ही संकल्प,
आप ही हो सकते है स्वयं का विकल्प।
स्वयं की शिक्षा का करो सही उपयोग,
वर्णमाला, अक्षरज्ञान, पहाड़ा और योग।
सिखाओ गरीब बच्चों और उनके परिजन को,
हो जाओ तैयार समाज और देश को सुधारने को।
शिक्षा जला सकती है उम्मीद का चिराग,
शांत करा सकती है भूख की ज्वाला और नफ़रत की आग।

अभिषेक कुमार (प्रतिष्ठा)
राजनीति विज्ञान (प्रथम वर्ष)

मैं कौन हूँ

चुनौतियों से भरा जीवन
स्वीकार करता हूँ
वक्त जहाँ भी ले जाए
वक्त से प्यार करता हूँ।

आदमी बस आदमी बना रहे
मैं कौन हूँ? इस पर विचार करता हूँ।

वक्त के थपेड़ों को बहुत झेला
झंझावातों से लड़ा हूँ
फिर भी कश्ती लेकर
तुफानों में खड़ा हूँ।

जितने भी पथचर हैं
सभी को स्वीकार करत हूँ
मैं कौन हूँ?
इस पर विचार करता हूँ।

वेदनाओं का साथ रहा बहुत
इसमें अपनों का हाथ रहा
कुछ बिछड़े, कुछ नए मिले
सद्कर्म मेरा परमार्थ रहा।

सच्चाई के पथ पर
अधिकार करता हूँ
मैं कौन हूँ

इस पर विचार करता हूँ।

ममता की धारा

घर मेरा एक बरगद है....
मेरे पापा जिसकी जड़ हैं!!
घनी छाया मेरी माँ.....
यही है मेरा आसमान ।।
पापा का है प्यार अनोखा....
जैसे शीतल का हवा का झोंका।।
माँ की ममता सबसे प्यारी......
सबसे सुन्दर सबसे न्यारी।।
हाथ पकड़कर चलना सिखलाते...
पापा हमको खूब घुमाते।।
माँ मलहम बनकर लग जाती.....
जब भी हमको चोंट सताती।।
माँ पापा बिन दुनिया सूनी.....
जैसे तपती आग की धुनी।।
माँ ममता की धारा है....
पिता जीने का सहारा है।।

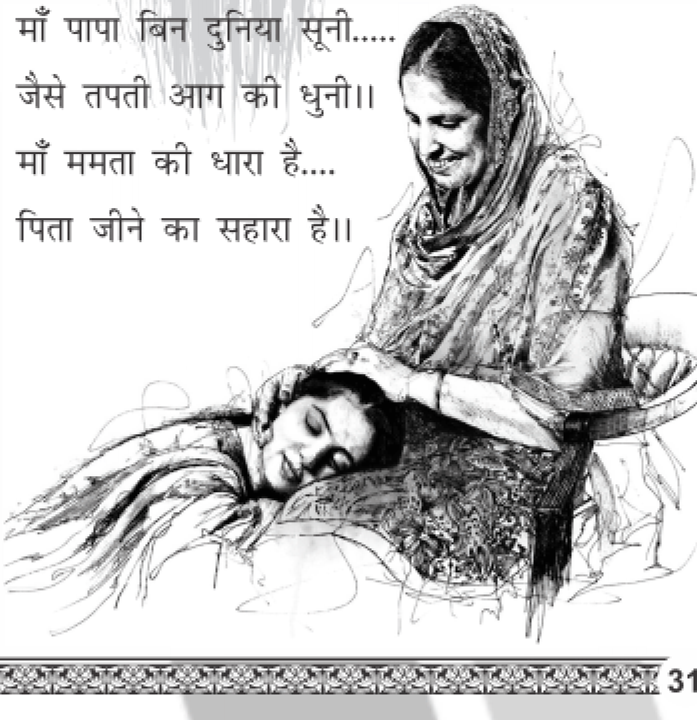

अंकुश कुमार
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
तृतीय वर्ष हिंदी

स्त्री

एक स्त्री कभी नहीं बनाती बारूद बंदूक
कभी नहीं रंगना चाहती अपनी हथेलियाँ खून से
एक स्त्री जो उपजाति है जातिवहीन
अपनी हथेली पर दहकता सूरज लिए
रोशनी से जगमगा देती है कण-कण
जिसे हर लड़ाई में
सबसे बड़ी दुश्मन बन जाती है
उसकी अपनी ही देह
एक स्त्री जो करना चाहती है प्रेम
देना चाहती है अपनापन
बोना चाहती है जीवन
भरना चाहती है सूनापन
बिछ-बिछ जाने में महसूस करती है बड़प्पन
और बदले में चाहती है थोड़ी-सी उड़ान
एक स्त्री सहती है, कहती है, लड़ती है
बस उड़ नहीं पाती
फिर भी नहीं छोड़ती पंख फड़फड़ाना
अपनी सारी शक्ति पंखो पर केन्द्रित कर
एक स्त्री तैयार हो रही है उड़ान के लिए......

खुले आसमान के नीचे: वर्तमान भारत

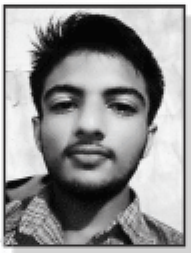

प्रवेश
बी. ए. (प्रतिष्ठा)
हिन्दी (प्रथम वर्ष)

खुले आसमान के नीचे ,
बसन्त की बहार यूं छा जाती है ,
हे मीत, मानो जमी पर स्वर्ग-सा कनक सींचे,
दिखी दिशाएँ चली हवाएँ,
फूलों की ये कलियाँ खींचें,
खुले आसमान के नीचे।।

क्षेत्र चाहे राजनीति का हो या अर्थव्यवस्था का ,
चुनाव की बहार यूं छा जाती है,
हे मीत, मानो हमदर्दी हर कली को सींचे,
खुले आसमान के नीचे ।।

इस समय की वर्षा,
जिसमें मेढ़क उछलें तगड़ी राजनीति के पीछे,
काण्ड वो निर्भया का हो या किसी मज्हूल का,
उनकी न्याय के लिए गूँजे चीखें,
लगे पड़े हैं राजनीतिक गुर्गे
गंदी निज राजनीति के पीछे,
हे मीत, मानो भावनाहीन शिकंजा उर सींचे,
खुले आसमान के नीचे।

जमाना बदला आधुनिकता सींचे,
हे मीत, मोबाइल कन्या लाल को खींचे,
माँ के आँसू ममता सींचे ,
खुले आसमान के नीचे।

मिट्टी कूटी, भावना फिर जुटी ,
शाहीनबाग, सीलमपुर आग सींचे,
हे मीत, NRC का आगमन नहीं,
खुले आसमान के नीचे।।
ट्रम्प का आगमन गुजरात सींचे,
घास को पेड़ों से दूर खींचे,
हे मीत मानो यथार्थ पर पट्टी खींचे,
खुले आसमान के नीचे।।

चन्द मज्हूल आग सींचें,
100 पे 24 भारी की बात खींचें,
हे मीत, मानो सभ्यता और संस्कृति का गला भींचे,
खुले आसमान के नीचे।

एक खर आक्रान्तता सींचे,
हे मीत, मानो काल स्व को निज तरफ खींचे,
पल-पल उल्लंघन सींचे,
खुले आसमान के नीचे।।

कोरोना का कहर देश को खींचे,
न जाने कितने टॉक्सिन भारतवासियों के पेट में
बिमारियों को सींचें,
हे मीत, मानो आर्यवर्त्त को मज्हूल की नजर खींचे,
खुले आसमान के नीचे।।

हमारे संस्कार और आर्यवर्त्त हमें खींचे,
कि सभ्यता, संस्कृति को हम सींचे,
हे मीत, खुले आसमान के नीचे।।

हिन्दुस्तां की दास्तां

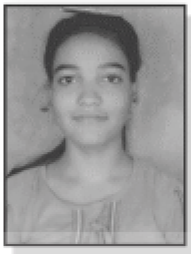

जानवी
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

ये हिन्दुस्तां की दास्तां है, जनाब
यहाँ दिन की शुरुआत मंदिरों के घंटों से होती है,

और शाम मस्जिद की नमाज़ से।
ये हिन्दुस्तां की दास्तां है, जनाब

यहाँ दिन का नाश्ता चाय की चुस्कियों से होता है,
और शाम का बनारसी कचौड़ियों के स्वाद से।

यहाँ कोयल के गीत सुनने से दिल मधुर हो जाता है,
और स्वंय के पैर ठनक उठते है मोर के नाच से।

ये हिन्दुस्तां की दास्तां है जनाब
यहाँ मौसम के बदलने से दिल खुश हो जाता है,

और मनमुग्ध हो जाता है, बिन मौसम बरसात से।
यहाँ घर आए अतिथियों से त्यौहार बन जाता है,

और वीरानापन आता है अतिथियों की विदाई से।
ये हिन्दुस्तां की दास्तां है जनाब

यहां दिल्ली दिल वालों से जान पड़ती है,
और लखनऊ नवाबों के शहर से।

यहाँ धार्मिक उत्सव को भी राष्ट्रीय पर्व मानकर मनाते हैं,
और राष्ट्रीय पर्व पर खुश होते हैं शहीदों के सम्मान से।

ये हिन्दुस्तां की दास्तां है जनाब
यहाँ दिल्ली के बाज़ार चाँदनी चौक की चाट,

सरोजनी नगर के कपड़ों से पहचाने जाते हैं,
और बाज़ारों में जान आती है, लोगों के व्यापार से।

यहाँ प्राचीन स्थल से प्राचीन काल को समझ लिया जाता है,
और आधुनिकता को जाना जाता है, सांइस सेंटर के नाम से।

ये हिन्दुस्तां है, जनाब
यहाँ दूर करते है बैर, लोगों के प्यार से।

ऐ पंथी, तू घबराता क्यों है?

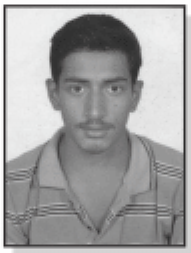

प्रबल यादव
बी.ए. (तृतीय वर्ष)
संस्कृत (प्रतिष्ठा)

ऐ पंथी, तू घबराता क्यों है?
अगर दु:ख आया है, तो सुख भी आएगा,

रात हुई है, तो फिर सुबह भी होगी
यदि सूरज डूबा है, तो फिर सूर्योदय होगा,

ऐ पंथी, तू घबराता क्यों है?

तू राह में पड़े पत्थर रूपी
बाधाओं को यूँ ही पार करता चल,

तू बस निडर तथा बेखटके होकर
राह में चलता चल,

तू बस परिश्रम करता चल,
एक दिन कामयाबी अवश्य तेरे कदम चूमेगी,

ए पंथी तू घबराता क्यों है?
क्या हुआ जो ये तेरे कुछ प्यारे मरे गए,

तू बस रणभूमि में यूँ ही डटा रह,

आज जब तू नाकामयाब है, तेरे साथ कोई नहीं
कल जब तू कामयाब होगा,

तो लोगों का हुजूम तेरे पीछे होगा,
ए पंथी, तू घबराता क्यों है?

बस बढ़ता चल, बस चलता चल।।

नारी प्रगति

नीरज वर्मा

नारी को प्रबल बनाना है,
सब को यह ज्ञान बताना है ।

नारी नहीं नर की छत्रछाया,
नारी ही इस संसार की माया है।

हर नारी में किसी की इज्जत होती है,
हमें इसे मिटने नहीं देना,
हमें जन-जन को ज्ञात कराना है
नारी को प्रबल बनाना है ।

हर नारी है दुर्गा, काली
इनको न समझो लाचारी,

नारी को आगे बढ़ाना है
नारी को तलवार बनाना है।

नारी को सम्मानित स्थान दिलाना है,
सोए से इन्हें जगाना है,

नारी को प्रबल बनाना है
नारी को प्रबल बनाना है ।

हमारी मातृभाषा

आज हिंदी हिंदुस्तान में कहाँ गुम हो रही
अंग्रेजी लोगों के दिलों को छू रही

अंग्रेजी का चारो ओर है बोलबाला
हिंदी को न कोई पूछने वाला

आओ उन्हें ये बताते हैं

हिंदी का हिंदुस्तान से बोध कराते हैं
विदेशी यहाँ हिंदी का इतिहास जानने आते हैं

फिर भी हिंदुस्तानी इसे बोलने में शर्माते हैं
रामायण,महाभारत इसकी लिपी में पाते हैं

फिर क्यूँ अंग्रेजी को सीने से लगाते हैं?
हिंदी से नहीं है वास्ता ऐसा बताते हैं

अंग्रेजी बोलकर खुद को उच्च जताते हैं
सूर, तुलसी, मीरा, कबीर का संग्रह बोया इसमें,

वह चेतना कहाँ सो गई,
आज हिंदी अपने घर में ही खो गई

बढ़ते घाव

धानंजय कुशवाहा
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
इतिहास (द्वितीय वर्ष)

झूठ नाखून से, सच नोच गया
सच खंजर लेकर, झूठ-सा रहा
गूंगा सब कुछ कड़वा बोल गया
ललकार हमारा चुप-सा रहा
कौन है दाता, किसकी दुनिया
क्यों अधीन है, सबकी खुशियाँ
किस अपंग के इस पर पहरे हैं
दूरबीन लगा कर देख ज़रा
ज़ख्म ये कितने गहरे हैं !

अखबार तुम्हें निर्वस्त्र किया तो
शिलालेख लिखवाये खुद की
जो मूल कभी दिया नहीं था
फिर भी मांग लगायी सूद की
कैसे हो दाता, किस जहान के
शमशान हुए हैं, शान यहाँ के
सब लोग ध्रुवतारे से ठहरे हैं
दूरबीन लगा कर देख ज़रा
ज़ख्म ये कितने गहरे हैं !

गर कोई परिंदा पर मारे
विरूद्ध तेरे हवा की
होगा कैद, अपाहिज़ बनकर
मान बढ़ेगा पिंजड़े की
ये जो चमकीले हैं संगमरमर
पल में तू कर दे खंडहर
उफ्फ, यह कितनी गुलाम शहर है
दूरबीन लगा कर देख ज़रा-सा
ज़ख्म ये कितने गहरे हैं !

ज़हर भर दे तू जहन में
गर कोई खुशबू बिखेरे, तेरे जग में
मेहंदी का पैगाम जो लाये
बारूद तू भर दे रग-रग में
बम फूट गया, सब लूट गया
साहस ये बोलकर रुठ गया
क्या लोग यहाँ के बहरे हैं
दूरबीन लगा कर देख ज़रा
ज़ख्म ये कितने गहरे हैं !

यार

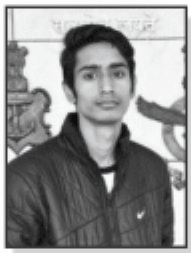

अंशुमान तिवारी
बी ए (प्रोग्राम) प्रथम वर्ष

हर एक नजर से बचता हूँ यार ।
बस तू देखे तो जँचता हूँ यार ।

अपनी मर्जी से तो होठ कभी खिले ही नहीं,
सब हँसते हैं तो मैं भी हँसता हूँ यार ।

अजीब-सी ख्वाहिशें भरी पड़ी हैं मुझमें,
स्कूल का कोई पुराना बस्ता हूँ यार ।

वो मुझे अपनी मुस्कुराहट से खरीद लेता है,
देखो ना मैं कितना सस्ता हूँ यार ।

मुझसे कोई गुजरे तो निशान छोड़ जाता है,
गाँव का कच्चा रास्ता हूँ यार ।

उस छात्र की कहानी

विनायक कोहली
'करुणा'

कहानी यह हर उस छात्र की
जो मन लगाकर पढ़ता है
साधारण से परिवार की
जो असाधारण ज्योत है
बचपन से पूर्ण होने तक
बुनता है, वो एक ही सपना
सीमित कल के जीवन में
उसे असीमित जीना है।

जानता नहीं है वह
कि कैसे में कर पाऊँगा
पर विश्वास है मन में उसके
जलकर तपकर आज मैं
जगमग भविष्य कर जाऊँगा
एक दिन बड़ा कुछ कर जाऊंगा

हाँ, पर उसका मार्ग कठिन है
थोड़ा-सा भी विश्राम नहीं है
हर तरफ घर की दीवारें गली गलियारें
उससे बार-बार कहते हैं
क्यों करता है भूल रे, बच्चे
जीवन इतना नहीं सरल है

कभी-कभी डर जाता है वो
अपने ही विचारों से
समझ नहीं पाता है मन को
क्यों भटकता है वो मार्ग में
देवता न समझना उसको
जो उत्तीर्ण हो हर काम में
साधारण-सा छात्र है वो
जो सीखता है हर पल विस्तार से

हालात भले ही साथ न हों
पर प्रयास उसका जारी है,
चमकती आँखें हैं प्रतिबिंब जिसकी
वह उमंग उसके साथ है
संकल्प धारण करके जिसने
मशाल प्रगति की जलाई हो

भारत माँ की सेवा में
जवानी जिसने तपाई हो
प्रतिज्ञा है उस छात्र की स्वयं से
कि अवश्य विजय ध्वज लेहराऊँगा
मेरी मेहनत रंग लाएगी
और एक दिन मैं बड़ा कुछ कर जाऊँगा
एक दिन बड़ा कुछ कर जाऊँगा

तेरे जैसा यार

प्रज्ञा
बी. ए.
(तृतीय वर्ष)

दिल से निकला एक रिश्ता,
दिलों की गहराई तक जाता है

लोग उसे समझे ना समझे,
दिल उसे दोस्ती बुलाता है।

दिल की भी अब क्या ही कहूँ,
वो मेरी कहाँ सुनता है

यार है वह तेरा कहकर
तुझपे ही तो मरता है।

वो दोस्ती के लिए इतनी फरियाद
रब से जाकर करता है,

कि मुझसे आकर रब भी कहे,
तेरा यार तुझ पर कितना मरता है।

माना खून का रिश्ता सिर्फ परिवार से होता है,

पर बिना इस रिश्ते के
जो दिल में उतर जाए

वही असली यार होता है।
दुनिया की इस भीड़ में रिश्ते हजार होते हैं,

पर इस भीड़ में भी जो हमेशा साथ रहे
वही अनमोल यार होते हैं।

प्यार में तकरार और तकरार में प्यार होता है,
लबों पर रब के बाद जो आये

वही तेरे जैसा यार होता है।

एक बॉलीवुड की कहानी

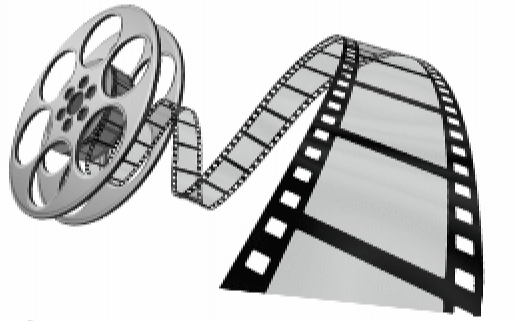

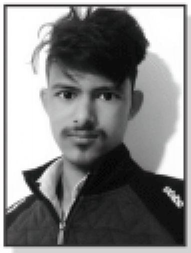

राहुल डंगवाल
भूगोल (द्वितीय वर्ष)

नेहा क्लास की टॉपर है। वह सिर्फ अंकों से नहीं बल्कि अंदाज, प्रतिभागिता, नेतृत्व क्षमता, गुरु भक्त, समय पाबंद और ना जाने कितने ही गुणों से सुसज्जित है। सभी लोगों के ख्याल से उसकी समझने की क्षमता काफी अच्छी है। तभी उसके हर एक टीचर, क्लासमेट्स, जूनियर- सीनियर के साथ अच्छे ताल्लुकात बन जाते हैं। पर मुझे यह अच्छा नहीं लगता। बार-बार शिक्षक महोदय, नेहा को ही पाठ पढ़ने को कहते हैं। जिसके कारण मेरा ध्यान पाठ में नहीं जा पाता। मैं उसकी आवाज को और उन बालों को जो खिड़की से आती हवा के कारण हल्के-हल्के उड़ते हैं देखता रहता हूँ। और कल्पनाओं की मोहक दुनिया में खोने लगता हूँ। इसी सुंदर क्षण में अध्यापक विघ्न डाल देते हैं, या तो कोई प्रश्न पूछ लेते थे जिसका जाहिर है मुझे उत्तर कभी पता नहीं होता या आगे बुला कर खड़ा कर देते जहाँ पर मुझे सभी देख सकते थे। हालांकि और किसी भी क्षण मुझे भी बेइज्जती और तनाव महसूस होता। मगर इस वक्त मैं बेझिझक जाता और आगे जाकर दीवार के सहारे खड़ा हो जाता। क्योंकि मुझे यहाँ से पहली बेंच पर पुस्तक हाथ में लिए नेहा दिखती। मेरे लिए इससे ज्यादा सौभाग्य का क्षण और क्या हो सकता था?

मेरी ही क्लास के बाकी लोगों की तरह मैं भी नेहा से बात करना चाहता था। पर मैं सिर्फ बात नहीं करना चाहता था पर मैं उसे चाहता था- बहुत। पर कभी भी मौका नहीं मिलता कि अकेले में बुलाकर कुछ कह सकूँ, कुछ बातें कर सकूँ। कभी कभार परिचितों को दोष देता हूँ। उन्होंने ही शर्मीला, शर्मीले, और शरमाता बहुत है, जैसी बातों से मेरे व्यक्तित्व में ये गुण भी ठूंस दिया। ये संभावना बनी है।

हालांकि ऐसा भी नहीं था कि मैंने कोशिश ही न करी हो। मैंने कई बार उसके रुके हुए कामों को पूरा करवाया था। उसकी स्क्राप कॉपी बॉयज हॉस्टल में ढूंढी थी और बच्चों के द्वारा उसके पास भिजवा दी थी। उन दिनों एक अजीब अनुभूति हमेशा मेरे साथ होती थी -अच्छा दिखने की, पढ़ने की, और भी बहुत कुछ। उसके लिए मैं वह सारे काम कर सकता था जिन्हें मैं जिंदगी में कभी नहीं करता। शायद इसीलिए हीरो को फिल्मों में प्यार हो जाने के बाद असीम शक्तियाँ आ जातीं हैं।

नेहा कितनी समझदार थी मैं नहीं जानता। पर वह कभी-भी मेरे प्यार को नहीं समझ पायी। ऐसा मुझे लगता है आज भी इन स्कूली दिनों के 11 साल बाद भी। पर मुझे वह बात -''एक दीदी आपको बुला रही है... वह स्कूल के गेट पर है''- किसी बच्चे ने मुझे कैंटीन के पास से गुजरते वक्त कहा था। और मैं अपने हॉस्टल चला गया। अगले दिन मुझे पता चला बीती होली की छुट्टियों में उसने अपना नाम कटवा लिया है। जब हम भांग पीकर हॉस्टल में पडे हुए थे।

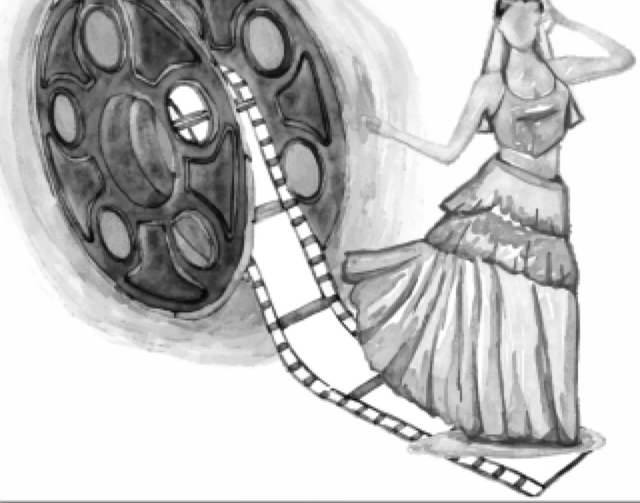

संघर्ष समाधान और शांति स्थापना

केरा राम
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
इतिहास (तृतीय वर्ष)

आज जब रात दस दिखा रही थी घड़ी
नजर यकायक समाचार पर मेरी थी पड़ी

आँखें आंसुओं से भरी थी पड़ी
सहसा शरीर सिहर उठा,

व्याकुलता जो आज विस्मय तक पहुँच पड़ी
यकायक कलम चल पड़ी

आँखों में तैर उठा सारा इतिहास दंगों का
जिनका परिणाम क्या था जानता है आज भी हिन्दुस्तां

जब बड़े पैमाने पर प्रभावित हुआ था हिन्दुस्तां
शनै शनै वहाँ से उबरा रहा था अपना हिन्दुस्तां

लेकिन वो गहरे घाव आज भी महसूस करता है अपना हिन्दुस्तां
जिनको भूलाने का प्रयास जो कर रहा था अपना हिन्दुस्तां

लंबे अरसे बाद
वह मंजर फिर पैदा हुआ था

क्योंकि आज इंसानियत धुंधला गई
क्षणिक पलों के लिए आत्मा जो मर गई
दरिद्रता और हैवानियत सर जो चढ़ गई

लेकिन वह मंजर जल्द न रूका
कई सैकड़ो घंटों तक काबू न पा सका
उसमें
घर जले थे
शव मिले थे
खोये किसी ने लाडले थे
खोये किसी ने भाई थे

कोई चुकाना चाहता होगा अहसान ए मादरें जमीं का
कोई चाहता था चुकाना फर्ज अपने अस्तित्व का लेकिन
ख्वाहिशें दब गई

तीन दिन तक गांधी का संदेशवाहक तक नहीं आया
कोई प्रेम और अमन का पैगाम नहीं लाया

सिर्फ चुनिंदा तिलस्मी इंसानियत का सहारा आया
अपनों का ही प्यार आज काम आ पाया

किसी ने रहीम का सहारा पाया
किसी के काम राम आया

लेकिन अब आगे क्या ?
भारतीयों के नाम पैगाम क्या?

वक्त की चाल बदल रही
मानवता हमें पुकार रही

बदलाव के लिए कह रही
ज़मीर जगाने को कह रही

अब न कोई माहौल सांप्रदायिक करो
न कोई अब इंसानियत का कत्ल करो
हो परिस्थिति तो भी रोका करो

क्योंकि सभी में सामंजस्य स्थापित जो करो

ना हिंदू की सिफ़ारिश करो
ना मुस्लमान की करो

इंसानियत को रोज बाहें में भरो
मजहब का नाम लेकर भारत में ना नफरत भरो

मंदिर मस्जिद को तुच्छ मुद्रा ना बनाओं
अब कोई बड़ों की आबरू के यूँ पर्दे ना उठाओ

जब कोई विपदा में हो
तब उसकी मदद को

तैयार हज़ारों हाथ हों
मदद एक ऐसी मेंहदी हो
जिससे हर चेहरें पर विशिष्ठ नूर हो
प्रण करो कि

गांधी के वंशज बनकर
शांति के लिये अग्रसर रहेंगे

सह अस्तित्व हमारा नारा होगा
प्रेम हमारा बल होगा

सब मिलकर एक बनेंगे
सामूहिकता से समस्या हल करेंगे

अगर इंसानियत पर संकट आयेगा
अपना सब न्यौछावर कर देंगे
अब हम जाग उठे हैं हम
सामंजस्य करके दिखा देंगे
मानवता रहेगी तब हम होंगे
ये विचार हर मन में होगा

सजेगा मेरे सपनों का भारत
भारत पर सबका हक़ होगा

इतिहास दुहराएगा फिर वही कहानी
शिखर छुऐगा हर हिंदुस्तानी
जन जन के मन में यही दुहराएगा
जय जय शांतिदूत हिंदुस्तानी

(कवि जब अपने भाव प्रस्तुत कर रहा है, तब मीडिया में दिल्ली दंगा बवंडर की तरह प्रस्तुत किया जा रहा था)

बेटी तू बड़ी मत होना

पूजा
बी. ए. प्रोग्राम
(तृतीय वर्ष)

बेटी तू बड़ी मत होना,
न जाने कितनी और

बेटियों की आत्माओं को
मारा जायेगा। अगर समाज

में तूने इज्जत के लिए आवाज उठायी तो इज्जत का

फंदा गले थमाया जायेगा,
बेटी तू बड़ी मत होना,
न जाने कितनी और बेटियों
की आत्माओं को मारा जायेगा।

अगर तू सफलता की ओर भागेगी
तो भी ये समाज तुझे गिरायेगा
और न जाने कितनी बेटियों की

भावनाओं के साथ यहाँ खेला जायेगा, बेटी तू बड़ी मत होना
न जाने कितनी और बेटियों की आत्माओं को मारा जायेगा।

यहाँ बेटी को बेटी नहीं समझा जायेगा ये समाज ही ऐसा खेल रचायेगा कि तुझे बेटी होने पर रोना आयेगा, बेटी तू बड़ी मत होना, न जाने कितनी और बेटियों की आत्माओं को मारा जायेगा।

जीवन में गलती से या मजबूरी में किसी का हाथ थामा भी
तो तुझे बेटी होने का एहसास दिलाया जायेगा,
बेटी तू बड़ी मत होना, न जाने कितनी और बेटियों की आत्माओं को मारा जायेगा।

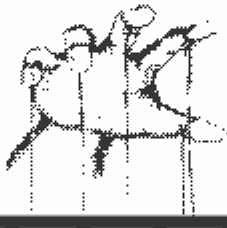

मानवता

सुधांशु शेखर

अभिनयरहित सहजता और सरलता के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने से बड़ी किसी व्यक्ति हेतु उसकी वास्तविकता क्या होगी...? बातें सत्य हैं पर स्वभाविक रूप से अस्वीकार्य भी। यथार्थ में कोई रहना ही कहाँ चाहता है .... अधिकतर जन कथ्ति तौर पर अन्याय विरोधी, भ्रष्टाचार विरोधी, हिंसा विरोधी इत्यादि हुए बैठे हैं ।

जिस प्रकार से भूख का लगना स्वभाविक क्रिया है, सोना स्वाभाविक है प्रेम, ईर्ष्या, ईमानदारी ...सब मनुष्य के गुण व मूल्य हैं इसी के समतुल्य स्वार्थ भी स्वभाविक मूल्य है ।

शुरुआत में हमारी चेतना का स्तर इतना उठा हुआ था कि हमने जिसको जिस भी रूप में देखा उसे वैसे ही स्वीकार्य किया, लेकिन समस्या तब उत्पन्न हुई जब लोगों को जो चीजें समझ में नहीं आई वहीं से उसे नैतिकता से जोड़ने लगें उदाहरण के लिए किसी भी पुरुष का महिला के प्रति या महिलाओं का पुरुषों के प्रति आकर्षण उचित अवस्था में एक स्वभाविक प्रक्रिया है लेकिन ये चीजें तब अस्वाभाविक लगने लगतीं हैं जब कोई हमें आकर कहता है ...देखो तुम्हारा उसके प्रति झुकाव ज्यादा हो रहा है जो कि गलत है, अब यहीं पर नैतिकता का दबाव शुरू हो गया यहीं से चीजें असहज लगने लगती हैं ।

यही स्वार्थ के साथ भी होता है, व्यक्ति के अन्य गुणों की भाँति ये भी स्वभाविक है किंतु इस पर विशेष बल देकर इसे अस्वभाविक बना दिया जाता है और इसे अनैतिकता की श्रेणी में स्थान दिया जाता है जिससे सब लोग स्वार्थ को प्रकट करना या स्वार्थी होने को अनुचित मानते हैं ....पर यदि भूख लगना अनुचित नहीं है तो इसकी प्राप्ति हेतु स्वार्थ का सहारा लेने में क्या बुराई है...?

स्वार्थ और परमार्थ में कोई अंतर नहीं है ... किसी पाश्चात्य विद्वान का कहना था कि नदी में डूबते व्यक्ति को जो बचाता है, उसका भी अपना स्वार्थ होता है और वह स्वार्थ उसकी संतुष्टि होती है, अगर बचाकर उसे प्रसन्नता न मिले तो वह नहीं बचायेगा।

ऐसे ही हमारे वृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद में मिलता है कि पत्नी पति को इसलिए प्रिय नहीं होती है क्योंकि उसमें पत्नी की खुशी है, बल्कि अपनी खुशी के लिए ।

ये सही है कि मानवता हेतु स्वार्थ रहित होना जरूरी है,

मानव ही मानव के काम आता है, हम जिसके प्रति सबसे अधिक लगाव रखते हैं अपनी कोई भी चीज उसे बड़े मन से भोग करने के लिए दे देतें हैं, लेकिन इसमें सोचना ये है कि वस्तुत: हम अपने उदार हृदय से उस लगाव के वजह से अपने चीजों को प्रयोग करने की अनुमति देतें हैं या इसके पीछे भी भविष्य कि कुछ अपेक्षा छिपी होती हैं? इस पर आप स्वयं विचार कीजिये....

आधुनिक समय की माँग है कि स्वाभाविक हो अभिनयकर्ता नहीं तो इस तरह हम स्वभावत: स्वार्थी क्यों न हों अत: स्वार्थी होने में भी कोई बुराई नहीं है। किसी कार्य की सिद्धि में प्रत्येक साधन की अपनी महत्ता होती है, अगर कभी वो साधन स्वार्थ भी बने तो सहर्ष स्वीकार्य करिए .... क्योंकि निजवादी होना किसी भी प्रकार से असहज नहीं है।

बचपन में हमें नैतिकता के बहुत से पाठ पढ़ाये जाते हैं जैसे- झूठ न बोलना, ईमानदार रहना, अहिंसा प्रेमी होना, लालच नहीं करना, कोई बड़ा आपके पास खड़ा है और आप बैठें हैं तो अपने जगह पर उसको प्राथमिकता देना, असहाय की सहायता करना.... इत्यादि बहुत-सी बातें हैं, पर प्रश्न यह है कि क्या हम इन मूल्यों को सीखने के बाद आजीवन इनका पालन करते हैं?...तो जवाब है नहीं क्योंकि जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं चीजों को उसके वास्तविक रूप में देखने की कोशिश करते हैं और बहुत सफल भी होते हैं और इस तरह बहुत से मूल्यों की नई छवि बनती है ...जैसे मान लीजिये हमनें सीखा था झूठ नहीं बोलना चाहिए पर यदि कहीं किसी बेरोजगार युवा को साक्षात्कार में जहाँ मात्र एक आखरी अवसर बचा है...और एक झूठ बोलने से उसका चयन हो रहा है तो यह कहीं से भी गलत नहीं है, यहाँ नीति का खंडन तो हो रहा है लेकिन वो सही है ....तो इस तरह यह समझ आता है कि समय, संदर्भ और परिस्थितियों के अनुसार इन्हें कैसे प्रयोग में लाना उत्कृष्ट होता है और इस प्रकार झूठ न बोलने के संदर्भ में एक नई छवि बनती है।

एक नई परिस्थिति और बनाते हैं मान लीजिए हमें बहुत जोर से भूख लगी और हमारे पास मात्र एक पाव रोटी है भूख को कम करने के लिए ...ऐसी ही अवस्था हमारे पास बैठे व्यक्ति की भी है और चारों तरफ भुखमरी का प्रकोप है, हर तरफ भोजन का अकाल है, तो ऐसे में जाहिर है आप पहले अपनी क्षुधा की तृप्ति करेंगे अब यहाँ आप खुद को व्यक्तिवादी कहिये या स्वार्थी दोनों ही उचित है क्योंकि यह वो पड़ाव है जहाँ व्यक्तिवाद और स्वार्थ दोनों आकर मिलते हुए नजर आते हैं । (व्यक्तिवादी और स्वार्थी में थोड़ा फर्क यह होता है कि व्यक्तिवादी पुरुष अपने कार्य की सिद्धि) हेतु वो सब कुछ करता है जो एक स्वार्थी व्यक्ति किन्तु वो अपना हित साधने हेतु किसी अन्य का अहित नहीं कर सकता जैसे आपके घर वाले आपका विवाह समझौता (अरेंज मैरिज) द्वारा किसी से करा रहे हैं और आप प्रेम विवाह के पक्ष में हैं तो आप व्यक्तिवादी हैं क्योंकि इससे किसी का अहित नहीं हो रहा है।

यह सर्वमान्य है कि व्यक्तिवादी होना स्वार्थी होने से अच्छा है पर यदि आपके पास कोई विकल्प नहीं है यथा उक्त उदाहरण, तो आप बेशक स्वार्थी बनें इसमें कोई बुराई नहीं है । **शुभ हो**

माँ

सौफिया मलिक,
बी. कॉम. (तृतीय वर्ष)

तेरा हाथ रखने से
धड़कने चल पड़ी

तेरे दुलार से ज़िन्दगी संवर गई
किसी ने साथ दिया हो या नहीं
तुम मेरे साथ हमेशा खड़ी रही

तुझे डर नहीं आंधियों का तूफान का
तुझे डर है अपनी नन्ही-सी जान का

बिछोंना बिछा है जिसपर प्यार और दुलार का

न जाने तुझे ईश्वर ने कैसे बनाया
न जाने इस दुनिया में तुझे वो कैसे लाया

क्यों तूने अपने आप को संतान को समर्पित कर दिया
क्यों तूने शिकायत का कभी मौका भी नहीं दिया

हे माँ, मुझे बता
हे माँ, मुझे बता

बचपन

ऐ जिन्दगी, मुझे फिर से बच्ची बना दे
एक नन्ही गुड़िया दिला दे

सब ले मुझे गोद में खेले मुझसे
वो पल जिन्दगी में फिर से लौटा दे

हर बात पर रोना
फिर माँ का चुप कराना

कविता सुनाकर पिता की गोद में जाना
हँसना खिल खिलाकर, शोर मचाना

यूँ करना बहाने पढ़ने के नाम पर
चिंता से मुक्त होना जो भर के खाना

कहाँ हैं वो पल कहाँ खो गए हैं।
क्यों मुझे इनके जवाब नहीं मिल रहें हैं।

आज फिर याद तेरी आई

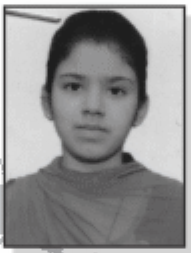

महीमा
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

आज फिर याद तेरी आई
फिर आसमाँ ने ली अंगड़ाई

फिर मेरी पलकें भीग आई
फिर वही लम्हा ले आई

आज फिर याद तेरी आई
फिर हवाओं का रूख बदला-बदला सा लगा

जैसे तू फिर मेरे साथ चलने लगा
फिर वही अहसास जगने लगा

जैसे तू फिर मुझे बाँहों में लेने लगा
आज फिर याद तेरी आई...........

फिर मौसम में खुशबू घुलने
जैसे फिर तेरे रंग में लगी रंगने

फिर चेहरा गुलाब की तरह खिलने लगा
जैसे फिर लम्हों में इत्र घुलने लगा

आज फिर याद तेरी आई
फिर मेरी रूह काँपने लगी

जैसे फिर तेरी होने लगी
फिर वही नशा चढ़ने लगा

जैसे फासले तेरे मेरे कटने लगे
आज फिर याद तेरी आई

फिर आज वैसे ही बरसात हुई
जैसे तू और मैं पहली बार मिले

फिर वैसे ही मदहोशी चलने लगी
जैसे पहली दफा तू मेरा होने लगा

आज फिर याद तेरी आई
क्या करू तू ही बता वो लम्हा

मिटाया नहीं जाता, जिसमें तू शामिल न हो
सच से वाकिफ़ हैं हम

कि तू आना नहीं चाहता
और हम झूठी उम्मीद लगाए बैठे

हैं कि तू लौट आए
आज फिर याद तेरी आने लगी

आज फिर याद तेरी आई

मोहलत

अगर किसी गली के मोड़ पर दिख जाऊँ तुम्हें,

ना पास मेरे आना तुम,
अनदेखा कर के मुझे,

आगे निकल जाना तुम,
ना सोई यादें फिर जगाना तुम,

ना अपने प्यार के दिन याद दिलाना तुम,
ना मुझे देख मुस्कुराना तुम,

ना कोई झूठी उम्मीद जगाना तुम,
झुकाकर पलकें, मुझे पीछे छोड़ जाना तुम।

मिलना हमारा ठीक नहीं,
हमें अजनबी ही रहने दो,

फिर मिलेगें बस 'फिर कभी' ही रहने दो,
आज ना रोको मुझे आज हर बात कहने दो,

मत रोको चट्टान बनकर मेरा रास्ता,
मुझे सीधी बहती धारा-सा बहने दो।

मैं तेरी किस्मत में नहीं। तू मेरी किस्मत नहीं।
किस्मत में तेरी-मेरी,

शायद ये मोहब्बत नहीं।
ये दुनिया नासमझ है,

इसको मोहब्बत की इज़्मत नहीं,
मैं समझा भी दूँ दुनिया को,

लेकिन मेरे पास इतनी मोहलत नहीं।

तुम्हारे दिल की दीवारें

धीरज अग्रवाल 'संयम'
बी.एससी
भौतिकी विज्ञान (प्रथम वर्ष)

ये आसमान सूना सूना है, इसे महताब दो ना,
इन हाथों में औजार नहीं,
इन हाथों को किताब दो ना।

यूँ तो पाई पाई का हिसाब ले लेते हो तुम इनसे,
पर तुमने जो छीन लिया इनसे,
पहले उसका भी हिसाब दो ना।

उस रोज खाना नहीं मिलता जिस रोज काम नहीं होता,
तुम्हारी शराब ज़रूरी है या इनका खाना,
इसका भी जवाब दो ना।

क्यूँ चेहरे पर लाचारी और आवाज में बेबसी है,
इन आँखों में आँसू नहीं,
नए-नए ख़्वाब दो ना।

वो नंगे पैर रहता है, बहुत काँटे चुभते हैं उसे,
तुम्हें क्या फ़र्क पड़ता है,
तुम अपनी महबूबा को गुलाब दो ना।

बहुत मटमैली है तुम्हारे दिल की दीवारें,
इन दीवारों को थोड़ा रंग दो,
थोड़ी आब दो ना।

यूँ तो बड़ा ही पाक साफ दिखाते हो तुम खुद को,
पर जिससे छुपाते हो दिल की बुराईयाँ,
हमें भी वैसा कोई हिज़ाब दो ना।

यूँ तो देख रहा है खुदा सब कुछ, फिर भी मौन है,
मौन हम भी हैं,
चेहरा छुपाने को कोई नकाब दो ना।

'संयम' की कलम करती है बस सच और झूठ का भेद,
ये भेद बन जाये एक संग्राम,
इस संग्राम में मेरा साथ दो ना।

मुझे कोख में ही मार दिया

एकता
बी. ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी द्वितीय वर्ष

मौत आई है मुझे
एक बार नहीं सौ बार,

कभी मारा मुझे समाज ने,
तो कभी उन्हीं के रिवाज़ ने,

कभी मरी हूँ दहेज के ज़हर से,
तो कभी जली उसी के कहर से,

बाप ने कभी दुनिया दिखाकर मारा,
तो मारा कभी माँ की कोख में,

आढ़ ली मौत ने कभी मर्दागनी की,
तो चुप्पी कभी एक तरफा चाहत की चादर में,

जिंदा रह कर भी मैं मरी ही यारों,
जब बनी थी शिकार किसी हवस की,

जलाया गया कभी मुझे सती बनाकर,
तो मौत आई कभी मुझे निर्भया बनाकर,

मरी उस पल भी थी जब हर लिया था चीर मेरा,
कौन कहता है कि राख सिर्फ इंसान होता है,

मैंने तो खवाबों को भी मिटते देखा है,
जिन आँखों ने ख्वाब सजाऐ थे,

उनसे आँसुओं को बहते देखी है,
सपने जाले मिट्टी बनें, वो राख हुए, वो खाक हुए,

बंद आँखों में जवाब ढूँढने लगे,
वे खमोश रह गए,

नहीं समझ आता क्या हुआ,
मौत आई मेरी पहचान को भी,

मौत आई मेरी मुस्कान को भी,
मौत आई मेरी उड़ान को भी,

मौत आती रही मैं मरती रहीं,
वो मरती रही मैं सहती रही,

पूछ लिया मैंने एक बार मौत से की,
हर बार मरती मैं ही क्यों हूँ,

वो भी कह गई मुस्करा कर,
बेटी है तू बेटी है तू बेटी है तू !!

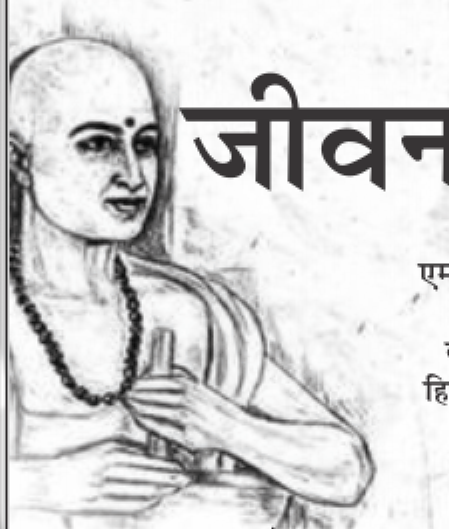

जीवन

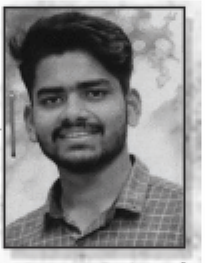

एम एस सरस्वती दुबे
'सरस'
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिन्दी (द्वितीय वर्ष)

यह संसार भरा पड़ा है मोहों से,
लालच और कुकर्मो से।

कुछ लगे अर्थ जोड़ने में
कुछ औरों का टुकड़ा छीनने में।

वह भी जान रहे, यह सब व्यर्थ परिश्रम है
फिर भी लूट-खसोट में गवाँ रहे,

अपना अनमोल जीवन रत्न हैं
वे यह सब अपनी; कौमों को सीखा रहें

अनैकिता को बढ़ा रहे।
ऐसे निवीर्य मानवों को

प्रकृति नहीं बख्शेगी।
एक दिन मिला ही में

वह सारा ऋण भर लेगी।

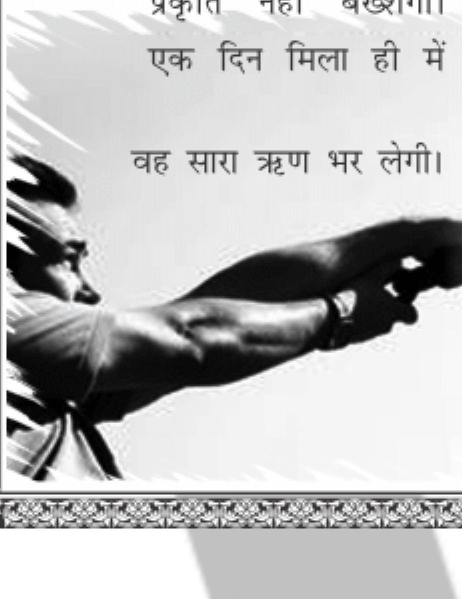

जब तुम होती हो सामने..........

नवनीत
बी.एससी (प्रतिष्ठा)
रसायन विज्ञान
तृतीय वर्ष

'निशब्द' हर रोज बैठा उसे निहारता रहता था,
चाहते हुए भी उसे कुछ बोल ना पाता था।

उसकी **'उदासीनता'** सहन नहीं होती थी मुझसे,
पर सब कुछ जान कर भी खामोश-सा रह जाता था मैं।।
जी तो चाहता है कि कब से बिखरे

इन दिल के पन्नों को समेट लूँ।
बस इस एहसास भर से गला रूँध-सा जाता है,
जब तुम होती हो सामने..........

चाहता हूँ उस चेहरे पर हँसी हो और वजह मैं बनूं।
पर ना चाहकर भी कुछ ख़ता हो जाती है,
जब तू होती है सामने........

बहुत कुछ सिखाना चाहती है वह अपनी अटकलों से।
पर मानो जंग-सी लग जाती है दिलो-दिमाग में
जब तुम होती हो सामने..........

जी तो चाहता है कि उसे अपने हाल पर छोड़ दूँ।
पर कमबख़्त यह दिल धड़कता ही तब है,
जब तुम होती हो सामने..........

आखिर पूछ ही ली मैनें उसकी **'उदासीनता'** की वजह
उसने चहरे पर प्यारी-सी हँसी लाकर

कहा बेवजह भी एक वजह बन जाती है,
जब तुम होते हो सामने..........
झकझोर-सा दिया इन शब्दों ने
''जाट'' को अंदर से,

निकाल दिया मुझे उस अनजाने से बवंडर से।
जो अब तक की ''खामोशी'' जख्म थी दिल पर
जैसे वो घाव भर गया हो पल भर में।

समय बदल रहा है

अनिल यादव
बी.ए. प्रतिष्ठ
हिंदी (द्वितीय वर्ष)

बदल गये हैं किस्से
बदल गये अफसाने

अब तो बदले-बदले से लगते हैं
हर गीत के तराने
बदल गई है ख्वाहिशें
बदल गये हैं सपने

अब तो कुछ बदले-बदले से लगते हैं
सब अपने
बदल गया है रूतबा
बदल गया है तख्त

अब तो बदलना बाकी रह गया है
बस एक शख्स
बदल गई है भाषा
बदल गई परिभाषा

अब तो धीरे-धीरे बदलती है
मेरी सारी आशा
बदल गई है माया
बदल गई है काया

बदली-बदली लगती है
अब इन पेड़ो की छाया
बदल गई है दिन
बदल गये है रात

बदले-बदले से लगते हैं
मेरे सारे जज़्बात
बदल गए हैं मंज़िल
बदल गईं हैं रास्ते
बदले-बदले से लगते हैं

वो अब किसी और के वास्ते

''आई.ए.एस. चंदा की मनमानी है''

मैं चढ़ता-ढ़लता सूरज हूँ,
मैं चंदा की मनमानी है,

ये दिल बिना सूना है,
मैं उसकी ही कहानी है,

मैं रूका झुका-सा जमीन हूँ
आइएएस आसमान की वाणी है

मैं सपनों में एक दिवाना हूँ
आईएएस उसकी प्रेम कहानी है,

मैं पन्ना किसी किताब का
आइएएस पूरी-की पूरी कहानी है,

मैं चढ़ता-ढ़लता सूरज हूँ,
आईएएस चंदा की मनमानी है,

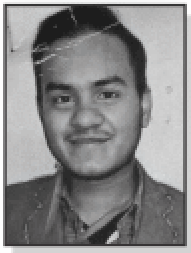

हिमांशु कुमार झा
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
प्रथम वर्ष

बेचारा था मैं

जवानी के दिन आए, बचपन जब चला गया।
कुछ समझ नहीं आया, पर कहानी अब चली गई,

सन्नाटा था आँखों के सामने यह सोचकर कि,
जीवन होते हुए भी थका हारा था मैं,

सबकी नजरों में बेचारा था मैं
पर फिर भी माँ-बाप का दुलारा था मैं।।

लोंगों के ताने जीने न देते थे,
माँ-बाप थे जो जेहर पीने न देते थे,

भगवान ने सहारा छीन लिया था मुझ से,
बिना हाथों के क्या करूँ ये बात दिन-रात रूलाती थी,

घर की घड़ी सिर्फ साथ निभाती थी
क्योंकि सबकी नजरों में बेचारा था मैं,

फिर भी माँ-बाप का दुलारा था मैं ।।

एक दिन सफलता मिली मुझे सपनों की दुनिया में,
सब भौचक्की निगाहों से घूर रहे मेरी कामयाबी को,

मैनें तुफानों को झेला था रोते-रोते हँसकर,
पर आज खुश हूँ अपनी नक्कसी देखकर,

क्या खूब तराशा मुझे इनकी ही खड़ी खोटी बातों ने,
आज याद आती हैं वो बात जो मैं कहा करता था,

कि सबकी नजरों में बेचारा था मैं
फिर भी माँ-बाप का दुलारा था मैं।।

इंटरनेट बैन

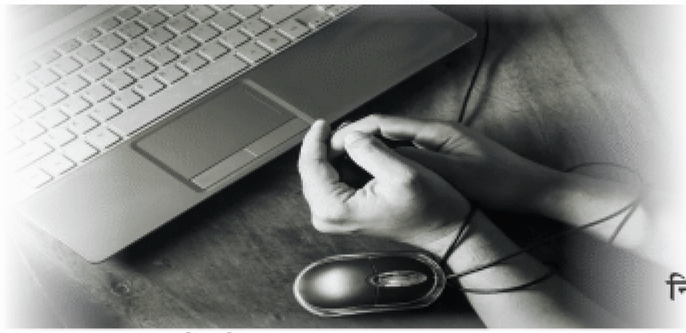

निखिल कुमार सोनी
बी.ए. (प्रतिष्ठा)
हिंदी तृतीय वर्ष

सर्द शाम, मैं मध्यम कदमों से नौं मंजिला बिल्डिगों के समूह, जिसे आधुनिक समाज में अपार्टमेंट कहते हैं, का चक्कर लगाता हुआ,यह लेख लिख रहा हूँ। 'इंटरनेट बंदी का आज आगरा में दूसरा दिन है । दिनभर में एक दशमलव चार जीबी डाटा खर्च करने के बजाय रवीश कुमार की पुस्तक 'बोलना ही है' को पढ़ा। और मैं समझता हूँ कि इसे पढ़ने का आज से अधिक उपयुक्त दिन और कोई हो ही नहीं सकता था, इसमें वर्णित एक एक शब्द आज कहीं न कहीं व्यावहारिक रूप ले रहा है।

अभी अभी रवीश जी से समझ कर आया हूँ कि वर्तमान में कैसे जनता को मुद्दे से भटकाया जा रहा है और उसके बोलने तथा सवाल पूछने की प्रवृत्ति को धीरे-धीरे खत्म कर, उसे हाशिये पर ढकेला जा रहा है। बहुत मन कर रहा है कुछ लिखने कुछ पूछनें का पर लिखू कहाँ, कहाँ सवाल करूँ सब तो बंद है! आज महसूस हो रहा है कि जब अभिव्यक्ति पर आँच आती है तो नागरिक का दम कैसे घुटने लगता है। और जब वह इसका विरोध करता है तो उस पर अक्सर कोई न कोई विशेष एन्ट्री उपसर्ग के साथ ठोंक दिया जाता है, बजाए उनके, जिनके लिए इंटरनेट मात्र फालतू टीका टिप्पणी करने और व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी पर नए-नए शोध प्रकाशित करने का माध्यम है जिन्हें न तथ्यों की जानकारी है और न उनके पास स्वयं कोई वैचारिक धरातल है ! बस रोबोजनता की तरह वही करते है जिसके लिए सत्ता के द्वारा उन्हें तैयार किया गया है।

मैं चलता जा रहा हूँ दो-चार लोग सामने से आते हुए बगल से गुजर रहे हैं, उनके हाथों में आज मोबाइल कम दिख रहा है, नोटपैड पर आधुनिक लेखिनी सरपट दौड़ रही है, डोन के बैकग्राउंड में मध्यम संगीत बज रहा है,वातावरण में धुंध है, मार्ग पर लगे प्रकाश पुंजों से आलोक राशि शंकु बनाते हुए धरा तक पहुँचने से पहले ही धुंधली पड़ती जा रही है, सड़क पर गाड़ियाँ धीरे-धीरे से कोहरे के बीच रेंग रही हैं। सड़क किनारे एक विशालकाय होर्डिंग, मोदी जी डिजिटल इंडिया के पोस्टर पर मुस्कुरा रहे हैं, चारों तरफ शांति पसरी है। कहाँ अशांति है? कहाँ लोग लोकतंत्र में असहमति दर्ज करा रहे हैं? कहाँ अधिकार के लिए नारे लग रहे हैं? कहाँ जनता सड़क पर है?

मुझे तो किंचित भी दृष्टि गोचर नहीं होता ? सब सामान्य तो है ! बिल्कुल सामान्य !! बस लोग दुनिया से कटे घरों में कैद हैं, जैसे वो समाज से कटे अपने अपार्टमेंट्स में कैद रहते हैं और शायद इस कैद की उन्हें आदत हो गयी है तभी कहीं कोई हलचल नहीं है तो बस सन्नाटा, घोर सन्नाटा है।

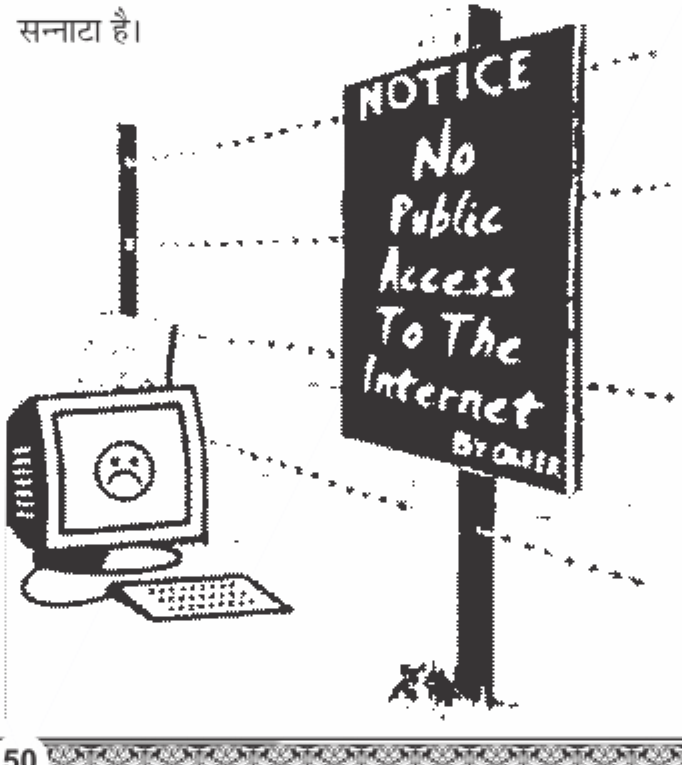

भारत की अस्वस्थ राजनीति

धर्मेंद्र कुमार जाँगिड़
बी.ए.(प्रतिष्ठा)
राजनीति विज्ञान (प्रथम वर्ष)

भारत एक 'लोकतांत्रिक गणराज्य' है जिसमें 'भारत का संविधान' एकमात्र आधार माना जा सकता है। बेशक भारत के संविधान ने समय के लम्बे इम्तिहान को पार करते हुए धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, न्याय, स्वतंत्रता एवं भाईचारे जैसे आदर्शों के साथ एक मजबूत लोकतंत्र को स्थापित किया है। परन्तु आज इसमें कोई शक नहीं कि भारत हर दिन लोकतांत्रिक आदर्शों से दूर खिसकता जा रहा है। हर दिन संवैधानिक लोकतंत्र की कोई न कोई ईंट खिसकती जा रही है।

आज लोकतंत्र की मार्यादाओं का राजनीति में खुला खण्डन किया जा रहा है। जातिवाद, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, हिंसा आदि आम बात हो गई है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों का ध्रुवीकरण करके राजनीति को पोषित किया जा रहा है। बहुसंख्यक-धर्म को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे संविधान के आदर्शरूपी शब्द जैसे-भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता आदि संविधान तक ही सीमित रह गए हैं। इन्हें व्यवहार में प्रचलित नहीं किया जा रहा हैं। वर्तमान सत्ता रूढ़ पार्टियाँ अपना दबदबा मात्र भाषणों से बना रही है, जिसमें सत्ताधारी पार्टी, पूर्व सत्ता से सवाल करती है या विकास न करने के आरोप लगाती है। परन्तु खुद कुछ नहीं करती।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि 'संसदीय लोकतंत्र अर्थहीन है जब तक सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र का निर्माण नहीं होता। आज भारत में केवल 'राजनीतिक-लोकतंत्र है, सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र नहीं।

अब बड़ा सवाल यह है कि यदि यह राजनीति इसी तरह चलती रही तो लोकतंत्र का अस्तित्व खत्म नहीं हो जाएगा? और मात्र तानाशाही नहीं रह जाएगी? अगर ऐसा हुआ तो उसका जिम्मेदार सिर्फ जनता और विपक्षी दल होंगे, क्योंकि आज जनता और विपक्ष मात्र मजमा बनकर रह गए है। विपक्ष अपनी जिम्मेदारी चुनाव लड़ने तक ही समझता है। क्या चुनाव के बाद उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं? आज पार्टियों को मात्र चुनाव जीतने से मतलब है। चुनाव हारी हुई पार्टी अपनी जिम्मेदारी नही समझ रही..... जो लोकतंत्र पर सबसे बड़ा खतरा है। अब जो सत्ता का चित्र उभरकर आ रहा है उसमें विधान सम्बन्धी नैतिकता का पूर्णतया अभाव है। सत्ता पक्ष लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ मीडिया पर जरूरत से ज्यादा हावी है। सत्ता अपनी नाकामयाबी का ढीकरा अतीत पर फोड़ देता है। समर्थ-राजनीतिक विमर्श की जगह अब जातिवाद व सामाजिक वैमनस्य ने ले लिया है जो लोकतंत्र की परिणति परिचायक है। अगर यही हाल रहा तो यह लोकतंत्र का सबसे काला दौर साबित होगा।

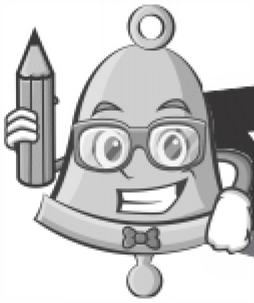

रिजल्ट

वो समय नजदीक आ रहा है
रिजल्ट अपने साथ ला रहा है

एक कागज़ का टुकड़ा;
कल बहुत बड़ा हो जाएगा ।।

उसके सामने तो ,
इंसान भी छोटा नजर आएगा ।।

नंबर जिसके होंगे जितने ,
वो बातें उतनी बनाएगा ।

कोई सबके सामने मुस्कुराएगा ,
जैसे फूलें हैं नहीं समाएगा ।।

तो कोई पीछे जा जाकर कोने में ,
अकेले में आंसू बहाएगा ।।

चलो; जैसा भी होगा वो कल ,
हमें तो जीना है - आज का ये पल ।

वर्तमान या प्रेजेंट जिसे कहते है ,खूब याद आएंगे
वो लोग - जो दिल के अंदर रहते है ।।

सबको फोन करके अपना दिल का हाल सुनाऊंगा ।
क्या कल परसों तक,
क्या मैं एक पल भी सो पाऊंगा ?

क्या खुदको अपनी भावनाएँ व्यक्त
(बयाँ) करने से रोक पाऊंगा ??

कविता लंबी हो गयी
पर मेरा मन नहीं मान रहा ।

कैसे कहूँ बात नहीं ,
मैं तो अपने आप को जान रहा ।

माँ

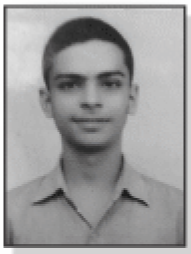

देवेन्द्र शर्मा

माँ के बारे में क्या लिखूँ यारों
माँ हर शायर की शायरी का अल्फाज़ है,
सूरज की लालिमा और प्यार के बहते झरने की
मीठी धार है.......

मेरे दिल के हर कोने में माँ राज है,
मेरी माँ मेरे सर का ताज है.......

एक रूप अनेक किरदार है.....
कभी अध्यापक, कभी डाक्टर
तो कभी एक सच्ची यार है.....

खुद कांटों पर चलकर,
मेरे रास्ते में फूल बिछा रखे हैं...
ना जाने मेरी खातिर,

उसने कितने सपने कुर्बान कर रखे हैं.....
मंदिर, मस्जिद जाना सब बेकार है.....

अरे पागल,
माँ के चरणों में ही जन्नत का द्वार है ......

ENGLISH

Contents

S. No.	Topic	Writer	Page No.
1	Read On, Hero	Khushi Arora	55
2	Mental Health—A Real 21^{st} century concern	Nandini, Bhrara	57
3	The Conjugal Rights of Women in 21st Century Society	Deep Chatterjee	59
4	Paradox	Smriti Chawla	63
5	Fiona's Bakery	Smriti Chawla	64
6	The Human Syndicate	Ashray Dhiman	66
7	The Great Divide	Shivam Gangwani	67
8	Do Whatever You Want	Neetesh Gupta	69
9	Changing Dynamics of Power- The Rise of a New World Order	Gitika Gupta	70
10	The Indian Corporate: Leadership Faulty or Faulted With?	Ashish Jain	72
11	New Paradigm To Development	Rishabh Kumar Singh	74
12	My College Squad	Sofia Malik	76
13	Come Back Tomorrow	Jyoti Negi	77
14	Nani	Anushka Pragya	78
15	Vasant Malti	Anushka Pragya	81
16	A Short, Glorious Life	Kamal Kumar Raul	83
17	The How, Not Why, of Charity	Ayushi Srivastava	84
18	Science of Photography	Hrishikesh Talukdar	86
19	My Unfulfilled Reverie	Tapasya Waldia	88`
20	Can South Asia become a hub for Technological Innovation?	Shivam Anand	89
21	'Make in India'-The OEM vs OED Conundrum	Pankaj Bharti	92
22	Shallow Gaps	Jayanti Chopra	95
23	A Velvet Hand in Iron Gloves	Disha Gupta	96
24	The Need, Scheme and Concerns about PM CARES	Prakrat Gupta	97
25	Silence	Siddhartha Lahon	100
26	Book Review- To Kill A Mockingbird	Sanjivani Nathani	101
27	A Letter to Rachel Green	Karishma Prithiani	102
28	It Ain't All About Rainbows And Unicorns	Sakshi Semwal	103
30	Silver Lining of the Coronavirus Outbreak	Krishan Talukdar	106

Read On, Hero

Khushi Arora
B A (H) English, 2nd Semester

In twenty-nineteen, for the first time ever, I felt the adrenaline rush fueled by death and amour. It was one of those awakening moments when life gives you the worst and the best at the same time. It stole a beautiful soul from my grasp and sent another one coming my way. It gave me a hard tug and whispered, "It's time you woke up, buddy." I considered all the antecedents to these rushes as extraordinary, as if I was the sole bearer of God's spotlight. But in truth my reactions were pretty normal. I felt the bad as well as the good. The world didn't stop for me to catch up and nor did it pat my back when I did. It maintained a poker face. In hindsight, it seemed like one of the pages of my life that the Universe had bookmarked. And somewhere within this page, it wrote about how I woke up one morning to find a hero staring at me from the mirror.

We think of heroes as people who fight for a moral cause, without expecting anything in return. They are the saviors, the good that protect us from the evil. They could be superheroes from stories as much as they could be someone we personally know or look up to as a role-model. But if we eliminate the word 'super' and look at the word 'hero' in isolation, we feel a sense of melancholy and sadness. Our superheroes (mostly those from our childhood) are always like sunflowers, all happy and yellow. They are someone we dream of exchanging lives with. We envy them and imagine what it would be like to save the world, without caring about homework, for once. Then all of a sudden, a bolt of lightning hits us and we realize that homework is the least of our worries. We encounter bigger problems and more complicated choices. Our psyche starts running wild with all sorts of questions regarding family, friends, career choices, etc. Our superheroes then appear as normal people caught in an existential crisis. We unconsciously cut off the super and simply call them heroes, because their choices now matter more to us than their powers. In simple terms, we empathize with them but we no longer envy them. When Harry Potter voluntarily chooses death at the hands of Voldemort to protect his friends, the counter-charm of sacrificial protection saves him on account of his selfless deeds, in the name of love. And, of course, how can one ever forget the image of Stark snapping his fingers after an intense 'I am Iron Man' and bringing Marvel's Phase 3 to an end.

Heroism is so much more than just physical strength, backed by altruism and compassion. We all aspire to be heroes and think of it as obvious that people should be good and kind in a heroic way, but at the same time heroism is somewhat incomprehensible. Take up the subliminal dilemma almost all the DC fans have been tormented with. The dilemma germinated in 2008 when Batman became The Dark Knight and sacrificed his reputation to hide the vices of a white politician called Dent, so that the latter could perpetuate in the hearts of people as a symbol of hope. He wanted the civilians to remember

Dent as a symbol of uncorrupted goodness they hoped the world still possessed. But the truth was otherwise. The lines separating good and evil are way too blurred, and are no more than just mere shadows in the dark. A hero makes many sacrifices to fight for a moral cause, but one simple trigger can flick the switch in their mind and make the cause seem worthless. The ones who are able to survive this trigger live on, while the others perish and are labeled as villains. Such a repulsive word, isn't it? But if you Google it up, you'll find it just refers to a character in a story whose evil actions or motives are important to the plot. So in this sense, heroism somehow becomes a matter of perception. One of the best ways to explore this dichotomy is diving into Hindu mythology, after casting off any sorts of prejudices you may have. Was Lord Rama the hero and Raavan the villain? What happened when Draupadi was disrobed? Was it justified? The more you read about these stories, the more confounded you become. The dichotomy between good and evil is a knot that only keeps on tightening.

Psychologist Frank Farley makes a distinction between what he calls 'Big H heroism' and 'Small H heroism.' Big H involves high risks such as getting hurt, imprisonment or even death. Small H involves day-to-day things like helping someone out, being kind and standing up for justice. Pick up a History textbook and you'll find endless examples of the Big H heroism that continue to be harked about even today. But as much as these examples inspire us, there are very few of us who really take the inspiration out of our textbooks and live off it in real life. I think it's the Small H heroism that hits us harder, which is why describing heroes as saviors of the world would be too narrow.

So instead of saviors of the world, let's just stick to saviors (of anything). Take an injured stray dog to the vet, help your elderly neighbor, and help your mom serve dinner, listen to your friend rant and well even smile at strangers! And voila! You can be a hero without lifting a building or fighting an alien.

The world is interdependent. It has a single soul and its elements are like domino tiles. Everything in the universe can affect everything. The good we do and the evil we commit, it all goes on and comes around. We don't have to be a larger-than-life hero with a cape, as long as we wake up every day with a flame in our heart and a smile on our face. I'm not saying that you always have to be happy or that you should not dream of achieving huge things and just stick to whatever you have now. You can whine but you cannot lose faith, which is where your strength lies. And that's what heroes do. They cry, but they wake up in the morning again. They get wounded and they take their time in healing too. They know that they cannot fill the cups of others, until their cup is full. This is why to be a hero doesn't always mean saving the world. It firstly means saving your own selves. All those examples don't motivate you to go out and do something for somebody. They motivate you to wake up and do everything for yourself to such an extent so that those around you are affected automatically. So yes, as clichéd as it sounds, there's a hero in all of us and we owe it all the goodness we have inside our souls.

Mental Health—
A Real 21st Century Concern

Nandini Bhrara
BA (H) English I yr

It's been almost a year since school got over. It was not long ago that I bumped into a school friend at the metro station. Though we had small talk but in those few moments I noticed some minute details. His body language suggested a closed posture and his reactions were very different from back at school. He seemed edgy, even delusional even when he was speaking. His voice lacked excitement and joy. His eyes were swollen and red as if he hadn't slept in months. His skin was dull and dry as well. Towards the end of the conversation I sensed that something was wrong. His physical state could have easily passed off as that of a student hard at work. However, his palpable nervousness betrayed that everything wasn't okay with him. I wasn't sure whether it was sheer physical exhaustion, or some emotional turmoil, or was it the euphoria of freedom in college life that was making him edgy. It could have been all three, or it could have been just one. Whichever be the one I knew that he had to be given support.

After a lot of reflection that day I realized that my friend's condition was, using a blanket term, psychological. Even the physical stress was hurting him psychologically. Further, it was not just my friend who was experiencing such a thing. In fact, psychological issues have started becoming extremely common nowadays, and they are not restricted to emotional states such as depression. The severity of it is so much that it is being discussed on a wider platforms and in public. An outcome of those discussions is that we have started addressing how to manage the triggers of our emotional responses. One trigger without any doubt is the pressure of making something out this life, some career that one can devote one's energy into. The only problem is that there are more of us thinking alike, for the limited number of opportunities available. Thus, we try to evolve, by adopting a widen horizon, and by putting in more hard work. An adverse impact is this is that it leaves students with less time to socialize and pursue their hobbies which, in turn, suppresses emotional fulfilment. Too much work causes sleep deprivation. Other major issues faced by students in their daily life are for example, difficulty in attentiveness, inadequate vitality and stamina, moodiness, etc.

We earlier used to question the need to acknowledge and discuss issues related to mental well-being. However, we have steadily seen in the last decade or so that in order to develop a happier lifestyle for ourselves and for those who surround us, we need to understand our emotional sides. We are not always reasonable, you see. Yet, we have done this at a laggard pace. We believe in the idea that reason is the only mental faculty worth pursuing to the extent that we suppress our psychological well-being. Through this article I aim to make my audience aware about the issues and important aspects of

psychological welfare.

As said by Daniel Fernandez, “When you have a mental illness, it's like you know how to swim, yet you're drowning, but you don't die.” Thus, we need to address the issue of mental health as soon as we sense that there is a need to. But before we can do that we have to start understanding mental health and how to recognize issues related to it. Mental health is about the relations between our thought (cognition) and emotional states. Our cognitive thought processes are not based solely upon reason but are also associated with a mix of eight basic emotions—joy, trust, fear, surprise, sadness, anticipation, anger, and disgust. While some of these emotions are positive, others are negative. What is true for both is that many a times (especially in today's times) they become the primary basis of our thought processes, decisions and actions. We exhibit behavioral responses based not upon reasoning but the emotions that we are experiencing. The situation that is dangerous is when negative emotions start overpowering the positive ones. Further, if this becomes a consistent phenomenon, then our entire personality changes. The unaddressed negative emotions begin to bottle up inside and corrupt positive emotions as well. Thus, it is necessary closely assess and address mental health issues because if these remain unaddressed, they result in psychological maladjustments that manifest themselves in the form of phobias, tendency to assault, indulge in domineering behavior and deaths. College students are particularly susceptible for a variety of reasons.

Later that day I called back my friend and talked to him. I told him how happy I was to meet him after a long time. Although my friend responded, the call did not go beyond 2 minutes. I kind of expected this since communicating freely is something that does not easily come to people during times of psychological turmoil. Nevertheless, I decided to talk to him after every 3-4 days. Gradually, he started opening up more and more, about how things changed so rapidly after school, what expectations we had set for ourselves, what expectations others had from us, the experiences we had at college, whether we were contented doing what we were or not, and so on. We talked about each other's daily life and many other things. Eventually, his sound regained its calm and joyous nature and I was relieved that I had found my lost friend.

At the end of it, I wondered was it really that simple? Did I need to simply talk to my friend to make such a huge difference? It seemed so! I had read somewhere that communication (both verbal as well as written) can be an emotionally relieving experience. We all feel light-hearted when we are able to communicate about things that are affecting us. It works even better when the one whom we talk to is someone who is experiencing similar emotions. It spreads confidences all around. It's just that we don't get enough opportunity or there is a lack of trust that stops us from telling what is affecting us. And it is this that I intend that to pitch to my readers out there. If you are someone who is experiencing psychological disruption, I ask you to find someone whom you really trust and talk to them. For those of you who can keep people's secrets and have a patient ear, take out some time to hear out such people. Oh, writing it out can also be an emotionally relieving experience. And it is probable that with the help of such measures you can get to the root of what is causing the pain in the first place, before it becomes entrenched and starts affecting mental health negatively. This relatively easy therapy can surely help you manage your triggers so that you can avoid them. So have hope my friends. But most importantly, have belief in this idea that taking care of one's mental health is not an ordeal.

The Conjugal Rights of Women in 21st Century Society

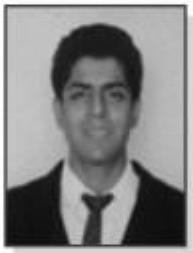

Deep Chatterjee
B.A. (H) English I Yr

While the world is battling one of the worst epidemics in the history of mankind, locked up inside stark white unresponsive walls, I have taken recourse to reading. The day India surpassed the hundredth death I was reading two short stories back to back – *The Intrusion* (1993) by Shashi Deshpande and Salman Rushdie's *The Free Radio* (1994). The stories had hardly anything in common. But an aspect which they seem to share intrigued me. Marriage in our society seldom allows the woman to exercise her consent. It was sheer chance that I read them together and noticed the subtle commonality between them.

The Intrusion is a story about a newly-wed couple who are on their honeymoon. Deshpande uses the wife as the narrator in the story. This use of first person narrator allows the reader to identify with her plight; it is free of any dilution that might come about due to the presence of a third person narrator. The wife is apprehensive and reticent about the inevitable sexual act on the first night of their honeymoon. When her husband eventually makes a move, she hesitates and expresses her insecurity and her discomfort towards consummating their marriage this early in their relationship. Her husband reluctantly accepts her wish but goes into a sulk. The night passes without any further conversation. She wakes up the next morning only to find her husband violating her.

The Free Radio is about a young teenaged rickshaw puller, Ramani, who is in love with a widow and wishes to marry her. She refuses him as she does not wish anymore children, having mothered seven of them from her previous marriage. Not to be bowed down, Ramani undergoes a sterilisation operation and soon after they get married. The text focuses chiefly upon Ramani and the narrator but Rushdie characteristically shies away from dwelling explicitly on the chief protagonist, the widow.

On the surface the two short stories seem like a set of parallel lines that do not intersect. The use of language, the central idea, the plot – there is hardly anything similar which one notices. However, on analysing the two stories in detail it becomes apparent that they intersect at one particular point—both the female protagonists seem to understand very clearly that their consent to sex once the marriage is solemnised is taken for granted. They have no choice or control over their body, the time, place or the use of contraception anymore. It is as if marriage had simply legitimized the man to take what he really wants. That is the fulcrum of my argument.

When we look at a woman's consent to sex from social, ethical and legal points of view we have to take cognizance of the path it has travelled over time, in order to understand the challenges that we face in present time. In yesteryears, it was believed that there was no such thing as a woman's consent, that

women equally desired sexual gratification though didn't know how to express it, and that they existed only to gratify the carnal desires of men. From 19th century onwards there was a consistent argument made for the socio-economic and political rights of women. The 20th century witnessed another wave of women rights movement that addressed the rights of their everyday existence, at home and elsewhere, including her right over her body. In the 21st century we are living in the times of the third phase of feminism that aims to further consolidate the advances made during the first and second wave of feminist movement. Ironically, there has been an inconsistent percolation of the benefits of these movements across societies. While societies today are becoming increasingly conscious that a woman's consent is of paramount importance, the sentiment is restricted to urban and semi-urban centres only. We might say that the whole world has slowly come to agree upon the idea that no one has the right to invade a woman's privacy without her explicit consent. Yet this is true only of the urbanised areas. In semi-urbanised and rural areas, the concept of consent is close to non-existent. While this glaring inconsistency could be due to the differences in education levels prevalent in rural and urban areas, the issue of consent of a married woman is mostly not discussed at all.

In *The Intrusion* the wife is 'shy and frightened about exposing the mysteries of [her] body' to her husband so soon while he eagerly waits for the night, for 'what is to happen between them, making them truly husband and wife.' There is a sense of resistance in her conflicting thoughts but confronting them doesn't seem like a valid option.

> "I was conscious of an unreasonable pang of irritation against him (…) I wanted to protest, to release my arm from his constricting grip (…) any excuse to loosen his grip over my arm."

Her description of her journey to the hill top, the hotel room and the helper man make the reader aware of her discomfort. Her thoughts occasionally stray from the present travelling back in time. She describes her family and the circumstances under which she got married. She recalls her doubts about getting married and she longs 'for all the things that she has left behind her forever.' Inevitably her mind comes back to the night ahead.

As the day progresses, it becomes more and more evident from his behaviour that he is looking forward to the night expectantly while her fear escalates. "Fears. Tremors. The way I averted my face from the beds." She delays the event by desperately going out to the veranda and later again expressing her wish to go down to the beach. The husband refuses saying "come on in…its getting chilly." He asks her to get changed and then calls her to the bed with the confidence of a master who owns her implying that the time has arrived. He comes closer putting his arm around her. She hesitates pulling herself back as his kiss intended for her lips lands on thin air. When he asks that why she had been avoiding him, she tells him what has been bothering her all this while. "We…we scarcely know each other."

Surprised, he asks, "What has that to do with it? Aren't we married now?" She starts crying, unable to explain herself. The eagerness on his face dies and he goes to bed. She lies down silently beside her sulking husband and wonders about her decision. She is afraid of what it may lead to.

> "I imagined myself returning to my parents' home, shamed and rejected, and the consternation and grief it would cause there, my sisters' marriages held up forever, my parents disgraced – all because of me."

The next morning, she wakes up to find herself under her husband, him 'relentlessly pounding' her. She lies there, numb and unmoving while he satisfies himself and then goes to sleep.

This ending makes a statement: a woman's consent does not matter after her marriage. Today one has to sign a legal contract conferring their right to a conjugal relationship in a marriage. So the reality is that she is giving her consent to sex after the ceremony. Or is she giving it up altogether?

In *The Free Radio*, Ramani, the teenaged rickshaw puller, is in love with a widow who has five children from her previous marriage. She is living a life where desperation has forced her to compromise. "…people saw men at night near her rutputty shack…" Ramani proposes to marry her. He can ensure 'two mouthfuls' for her and her children. He is handsome, virile and in love with her. Despite that she refuses to marry him saying "…I wish no more children…" At this juncture Ramani comes to know about a free sterilisation procedure. He undergoes the surgery and the widow agrees to marry him. Ramani defends his decision to the narrator by saying,

> "Everything is tremendously wonderful. I am in love teacher sahib, and I have made it possible for me to marry my woman…it is not so bad…the nasbandi…it does not stop love making or anything…it stops babies only and my woman did not want children anymore, so now all is hundred percent ok."

The widow's condition to not marry Ramani until he gets sterilised begs the question, why not?

Answering this will require some extrapolation. The only method of birth control known during the late '70s, the backdrop of this story, was a condom for a man and the traditional calendar method for a woman. The condition set by the widow indicates her awareness, perhaps owing to her previous marriage where she gave birth to seven children, that once she gets married she would lose her control over her consent and would not be in a position to refuse Ramani in both the instances—the calendar method as well as Ramani choice of using a condom contraceptive.

If we focus on this particular issue, both stories seem to tell us that marriage is deemed as a contract in which the woman forfeits her right to consent. This forfeiture also seems to be a blanket one—for everything and for all times. The husband seems to become her lord, she his slave, and there is no concept of consent in such relationships. Sir Matthew Hale, in his legal treatise *Historia Placitorum Coronae*, has best expressed this feudal nature of husband-wife relationship: "The husband cannot be guilty of a rape committed by himself upon his lawful wife, for by their mutual consent and contract the wife hath given up herself in this kind unto her husband, which she cannot retract." Thus, since the relationship between the man and the woman was that of husband and wife, there was no question of consent anymore. Some might even go on to say it was the woman's duty.

The second wave of feminism during the second half of 20th century made repeated attempts to undo this blanket forfeiture of a woman's consent owing to the unequal power structures that the institution of marriage perpetrated. Finally, in 1993 that the UNHRC declared marital rape as a human rights violation. Yet, and like all other attempts at reformation, it took them another two decades to say:

"Violations of women's human rights are often linked to their sexuality and reproductive role. (...) In many countries, married women may not refuse to have sexual relations with their husbands, and often have no say in whether they use contraception. (...) Ensuring that women have full autonomy over their

bodies is the first crucial step towards achieving substantive equality between women and men. Personal issues—such as when, how and with whom they choose to have sex, and when, how and with whom they choose to have children—are at the heart of living a life in dignity."

In the present times, the criminalization of marital rape has still not occurred in all the UN member States. While marital rape is considered a crime in North and South America, Australia, Europe, some North Asian countries and a few African countries, it is still not criminalised in any Islamic country, the Arabian Peninsula, a large part of Africa and most of south Asia, not even in India. Our Apex court has stated that India is still not ready for it. The Indian Penal Code does not even recognize forced sex as a crime unless the wife is below the age of 15, a minor.

The Laws of any land are promulgated based on the moral values of that particular society. Yet, it is the prevalent material conditions that often dictate the choices that people make and end up living with. The British philosopher Bertrand Russell in his book, *Marriage and Morals* (1929) wrote, "Marriage is for woman the commonest mode of livelihood, and the total amount of undesired sex endured by women is probably greater in marriage than in prostitution." George Bernard Shaw once said "Marriage is a form of licensed prostitution–. If women say 'NO' to sex, their basic needs of food, clothes and shelter will become uncertain for them." Sadly, this is true everywhere, more so in a country such as India where economic independence of women is not a prerequisite at the time of marriage. A question that we have to ask now is that should we promote the economic independence of women and see to it that they have a choice to come out of this 'trade'? The answer is a difficult one. It is 'difficult' because as a larger society we still believe in the idea of institution of marriage and push young men and women of a 'marriageable' age into tying the knot. In fact, the question of choice and consent is absent in the very manner in which children are brought up here in India. Their life, then, becomes an endless procession of limitations/restrictions being imposed upon their choices. Maybe if we address this then we would be able to take a moral stand on the issue at hand. Oh, and this does not mean that the IPC shouldn't have provisions to deal with marital rape. We still need a legal system that can provide a redressal to this wrong that is silently perpetrated.

Paradox

Smriti Chawla
BA (H) English II Yr

I am the struggling autumn leaf, not falling from the branch.
I am a shell in the ocean, clinging to the sand as the waves try to take me into themselves.
I am carved out of firewood, soft yet burns the most.
I am the ethereal glow of the sun, it can incinerate but chooses not to.
I am the dainty wind, capable of storm.
I am the brisk shower of rain, thunder trails my footsteps.
I am a blaze of the kindled fire, controlled yet uncontrollable.

But, I am not weak. I am not frail.
I am the roots that hold the sand.
I am the fire that burns.
I am the the raging earth, destruction lies at its wake.

I exist in the tranquility, and in the rage.
I can shatter and I can build.
I can mar and I can make.
I can kill and I can create.

I am a glimpse into the future, a living proof of what will be.

Fiona's Bakery

Smriti Chawla
BA (H) English II Yr

A strange man had entered my shop.

He wore dark clothes, a hood on his head and carried the brightest orange umbrella I had ever seen. He looked around the shop, and then ran towards the counter.

Hesitatingly I asked, "May I take your order Sir?"

"You may."

"Well, Sir, what would you like to eat today? We have Caramel Mousse as our special today."

"I'll take two of those then."

"Of course."

I go pick up two of the three special packets I had already kept packed. Everybody ordered the specials. It seemed easier to just keep them ready to save time. I walk over to the counter.

"That would be 2 and 75, Sir."

"Of course. I'd like to eat them here."

"Oh. Sure. Give me a moment dear."

I hastily returned those packets to the counter and picked up two Caramel Mousse cups from the shelf. I top them with a little extra caramel sauce and serve them on my bright white plates. I put them in front of him.

"I'm sorry. I thought you asked for two so you'd take them to go."

"No that's okay. Miss..."

"Fiona. It's my bakery."

"You are too young to be settled inside a shop in a cranny. Miss Fiona have you ever wondered what it's like to not be alive?"

"Well you gotta make the money somehow, honey. And yes I have. Enough times. That's what forced me to drop out of a college and open this bakery. It's what I have always wanted to do. Why do you ask?" I asked with a skeptical smile on my face.

The stranger seemed to understand my apprehensions. "I'm not about to kill myself Miss Fiona," he replied.

"Well, I must ask, for the sake of intellectual curiosity of course, why would you ask me such a question then Mister... What was it? I didn't quite catch your name."

"That would be because I didn't tell you. Call me God, Miss Fiona. And I asked this question because I know what it's like to not be alive. I know all the feelings. And that is one feeling I

particularly dislike. So I'm here to request you to never think so again."

I was baffled. "Mister... God, Sir, please don't make jokes about such things. I am not a fan of dark humour. Now I must tend to my shop." I spoke in a dismissive tone, hoping to run very far away from this perplexing man.

"Won't you have one of these Miss Fiona?" he asked, offering me one of the Mousse cups and taking a bite himself. "They taste heavenly," he laughed as if it were an inside joke.

"I don't eat in my shop Sir. And I really must go."

"I know you're scared Fiona. This job doesn't pay as much as it takes. You're lonely and unhappy. But don't quit just yet. You have survived through the worst of it. Happiness is just around the corner, don't go looking for it in places you can't navigate through. I have plans for you, my love. Don't come to me so soon." And then the man winked at me, smirked and left, leaving me dizzy.

"Ma'am. Ma'am wake up. Miss Fiona wake up please." I heard my assistant Sally call out my name. I opened my eyes and told her I was fine. "Where did that man go, the one with the bright orange umbrella?" I asked looking for the two plates at the counter.

Confused, Sally replied, "There was no man with a bright orange umbrella today ma'am. Are you sure you're okay?"

"I... Yes I am. Please take care of the shop Sally. I have to be somewhere."

I rush out of the shop and towards the corner. Panting, I rest my hand on the corner of the wall. Just in my line of vision, I spot an umbrella stand holding the bright orange umbrella. I pick it up and stare at it, dumbfounded. I look around and spot the strange man looking at me from across the road. He mouthed '*keep it*'. He winked at me and disappeared.

I went back into the shop, thoroughly confused about the encounter and its existence in the reality of time.

"Did he give you the umbrella ma'am, the man you were looking for," asked Sally.

"Yes. Yes he did. He gave me the umbrella and much more. He gave me **hope**."

A strange man had entered my shop and saved my life.

THE HUMAN SYNDICATE

Ashray Dhiman
(B.Sc. (H) Chemistry 2nd Year)

The 21st century has brought us many things – technology, medicine, space exploration, social and cultural reforms. We have even developed the so-called idea of a "Global Village". Yet we are as far as we can be from executing it. Thousands of years of cultural differences and fights over resources, and we still lack the fundamental principle of acceptance. On one hand, we proclaim to unify humanity and transform the world into a single civilisation, whereas on the other hand, we sometimes fail to accept ourselves. This failure of acceptance at such a grassroot level consequently leads to the development of a sceptical nature. Due to this, we have a judgemental and double visioned thought process which hinders our contribution towards this very idea. The hypocrisy lies in the very idea of societal cultivation. Instead of individuals shaping the beliefs of the society, it is the other way round. In most of the cases, society doesn't accept the individual contributions.

Analysing the issues us humans have faced over the years, the existence of a "Global Village" has become necessary for the survival of mankind rather than survival of the fittest. Presently, we live in a world of multiple religions, cultures, ideals and beliefs. These differences have caused great turmoil amongst us even when it was unnecessary. An urge to create differences and then to act upon those differences is also a reason for our conflicts. The idea of a single civilization which can be seen as a solution to our never ending conflicts over various disciplines has been fading faster than one can imagine and our behaviour of resisting any form of transformation in our society has prolonged the existing situation.

The United Nations, a global-level organisation which was set up with the aim of unifying nations and promoting world peace has somehow diverted from its path. It is being compelled to serve the interests of only a handful of states irrespective of what it truly desires. The creators of the organisation have a strong uphold on majority of the decisions being taken and as a result, the developing and underdeveloped countries are only being viewed as objects to serve their interests. Everyone only desires to procure the resources these countries have to offer but no one wants to deal with their problems. The organisation's motto of peace for global prosperity seems ironical due to the methods being used for promoting peace. It is certain instances like these, that make us question the authenticity of such organisations who proclaim to make the world a better place.

Even though the idea of "Global Village" hasn't progressed as we had anticipated it would, yet on several occasions, there have been events which can be appreciated for bringing us closer to our ideal world, if only by a little. Democracy, technological advancements, environment protection, liberalism etc. are some of the examples which are commonly known. Even though these ideas haven't been completely successful, they have made the situation better than before. Global economic corporations helped in the redistribution of resources which are scattered in different parts of the world, which in turn, led to the technological advancements of many underdeveloped and developing countries. The establishments of global organisations such as the IMF, WTO and World Bank helped in the economic development of these countries. The advent of communication technology helped unite people from different parts of the world; eliminating the geographical barriers. This development in human communication not only helped in economic and political dimensions but also contributed in socio-cultural exchanges. The evolution of civilization has brought with it, the refinement and enhancement of human ideology.

If these issues are addressed in a manner suitable to all, we will get even closer to the idea of a single civilization free of social, cultural and political bounds. It is, thus, our responsibility to decide whether to strive towards global incubation or global decimation. What do you think?

The Great Divide

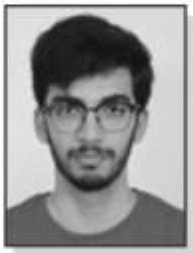

Ashray Dhiman

B.Sc. (H) Chemistry 4th Semester

The 20th century witnessed significant transformations—great advancements in technology, medicine, space exploration, social and cultural reforms. It also saw the world getting divided into nations with actively-guarded borders. For a considerable period of the 20th century, and especially during the Cold War, the movement of people across the geographical territories was restricted. However, the last decade of the 20th century steadily witnessed economic forces and technology reshape the world into what India likes to call a "Global Village", and something that I would like to call the Human Syndicate. Despite there being borders, there was a lot of movement of people everywhere. We witnessed the demise of the Soviet Union, and lessening of the Cold War. The world economies opened up to a new world order. We all started travelling a lot, working and living in multi-ethnic and multi-cultural environment, and meeting a lot of other people. Yet, it was and continues to be seen that despite this closeness we are somewhat disconnected with each other. We also have no idea how to overcome it. Much of this is because our identities are rooted in cultural differences, as well as our fight over resources. Despite becoming educated we still lack the fundamental principle of acceptance. On one hand, we proclaim the equality of all and attempt to transform the world into a single civilisation. Yet, on the other hand, we sometimes fail to accept the differences that others have with us. This failure of acceptance at the grass root level consequently has led to the development of a sceptical nature, to say the least. It hasn't done much for the idea of the Human Syndicate as well.

The analysis of social political developments over the last few centuries have made us realize that the existence of a Human Syndicate has become necessary for the survival of mankind rather than survival of the fittest. Presently, we live in a world of multiple religions, cultures, ideals and beliefs. As a matter of fact, these differences are projected as the basis of our identities and, thus, deemed essential. Ironically, apart from defining us, they have caused great turmoil amongst us, much of which was unnecessary. We made many attempts to overcome these differences, or at least set aside these differences in order to pursue shared goals. The hallmark of such efforts was the setting up of United Nations Organizations. As a global organisation it was set up with the purpose of unifying nations and promoting world peace. However, it did not play an active role in guaranteeing world peace and, in fact, was reduced to serving the interests of only a handful of countries, and which was directly in contravention of its objectives. It is a tragedy that those who created this organisation have a strong hold on majority of the decisions being taken. As a result, the developing and underdeveloped countries are only being viewed as objects to serve their interests. In fact, it was sensed many a times

that the organization was there to only facilitate the consumption of resources of less developed/developing countries and was not interested in dealing with systemic social and political problems of member countries. The organisation's motto of peace for global prosperity, thus, seemed ironical due to the methods being used for promoting peace. It is this realization that have made us question the relevance of such organisations that proclaim to unify the world and make it a better place. Today, the idea of world population as Human Syndicate, a single civilization, that can be the solution to our never ending conflicts over various issues has been fading faster than one can imagine and our behaviour of resisting any form of transformation in our society has prolonged the existing situation.

Even though the idea of "Global Village" hasn't progressed along the lines that we had anticipated it would, on several fronts there have been developments which can be appreciated for bringing us closer to our ideal world, if only by a little. Ideas about democracy and democratic rights, technological advancements, environment protection, liberalism, etc. are some widespread examples of ideas that have found support across borders, helping millions to feel alike. Even though these ideas haven't been completely successful, they have united better than ever before. Globalization of economic processes have helped in the redistribution of jobs and resources, which are earlier concentrated in a specific parts of the world. This, in turn, has led to more democratic spread of technology within many underdeveloped and developing countries. The establishments of global organisations such as the IMF, WTO and World Bank has helped usher in development of infrastructure in these countries. The advent of communication technology has helped unite people from different parts of the world, thereby eliminating the geographical borders. This development in human communication not only helped in economic and political dimensions but also contributed in socio-cultural exchanges. All these developments have brought about an evolution of human civilization, its ideas and thoughts.

If these issues are continually addressed and worked upon in a manner acceptable to all, we will get closer and closer to the idea of a single civilization that is free of social, cultural and political bounds, of a truly *human* syndicate. While we might not arrive at this stage right away, we might arrive at it a century or two down the line. But in this moment it is our responsibility as well as obligation to choose whether to strive towards global development or global decimation. What do you think? Which one will you choose?

Do Whatever You Want

Neetesh Gupta
B.Sc.(H) Mathematics 4th Semester

Do whatever you want
Never say, “I can't”
Always listen to your heart
Because, when it all ends, it would never hurt

Open your eyes to beauty of this world,
There is miracle in life,
more so where they say lies nothingness
It could be an adventure.

Don't worry where you'll head to
Let it be a mystery, even to you
In fact, why the h*#! do you care about it
They'll disapprove, since they think they can

You are one and so is this precious life!
Use it in your own way
Fill the blank pages of this book
Then, I'm sure, you would be gay

So do whatever you want,
But never say, “I can't”

Changing Dynamics of Power- The Rise of a New World Order

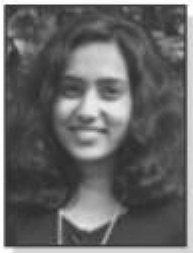

Gitika Gupta
B.A. (H) Economics 4th Semester

As the imperial powers focused on reconstruction of their destroyed homes and institutions post World War II, they encountered a wave of freedom struggles sweeping their colonies. Between 1945 and 1955, around 29 countries were able to regain political control of their territories from these colonial powers. The Bandung Conference of 1955 was the first time that countries with a history of colonial exploitation had met and this was a major step towards the decolonization of the world. Soon, similar sentiments against colonialism spread in other parts of the world and it became apparent that the days of colonial occupation of land for purely economic benefits had come to an end. Or so we had thought!

What started as the exploration and/or discovery of new lands was followed by the realization that these new lands were extremely rich in different natural resources. Capitalist enterprises back in Europe needed cheap and abundant raw material. What better way could it be to ensure that raw material could be cheap, if not free, than by depriving the natives of their rights to the resources of these lands. Thus, and while the early colonizers started as merely traders trading goods with the native communities of these new found lands, it soon transformed into a full blown enterprise of occupation of land for purely commercial exploitation. Both military as well as political machinations were used for consolidating their control over the land and undermining the claim of the natives over these lands. In this way, colonialism became entrenched and flourished for over two centuries. However, events of early 20th century resulted in shaking up of the controls that European colonial powers wielded over these lands. With the end of World War II, there was a dismantling of colonial administrations in these lands, and the natives thought that it was the end of colonialism. However, it slowly became apparent that there were other ways through which control over the resources of these former colonies could be retained. Thus, colonialism had simply reinvented itself as neo-colonialism.

Neo-colonialism is the exploitation of former colonies by their colonizers not through a colonial administration, but in collusion with the native leadership. The means employed are subtler since they do not constitute direct violence or control. Instead, they are made up of economic and monetary policies, cultural assimilation of the less-developed country, unregulated forms of foreign aid, trade and foreign direct investment from developed and powerful countries, along with international capitalist monopolies, especially seen in former African colonies. Thus, colonialism is reinvented in the name of a system of global trade of goods and services, a system that is inherently in favour of the former colonial powers.

It is, thus, not a strange thing that neo-colonialism exists as a major theme in African literature on political philosophy. It involves a critical evaluation of political and socio-economic conditions in Africa post their freedom from colonial rule and sheds light on the continued influence of their ex-colonizers on the political and economic ideologies in the continent. One of the foremost literary works on the subject is Kwame Nkrumah's *Neo-colonialism: The Last Stage of Imperialism*. Kwame Nkrumah was the president of Ghana, the first African country to attain independence from colonial

rule. His book discusses neo-colonialism as the final and the most harmful stage of imperialism, in context of African countries. It was published in 1965, in the middle of the Cold War, and prompted an immediate political reaction from the US. Within a year of the book's publication, President Nkrumah was overthrown by a military coup purportedly *supported* by the United States of America.

India, too, is no stranger to neo-colonialism and its harmful impact on culture and economy of the country. Post-independence, India was dependent on imports for a variety of resources. The British engaged in development of India only to the extent that facilitated their colonial trade. The infrastructure that remained after they left in 1947 could not fuel the growth-related concerns of a nation such as India and much of our economy was based upon rural agriculture. Hence, the country was increasingly dependent upon imports for various crucial resources. And while Indian political leadership was an active participant in founding of the General Agreement on Tariffs and Trade (GATT), it remained ambivalent towards the importance of trade. Thus, India looked inwards while trying to plan its economic growth and attempted to fulfil the needs of capital goods for such a growth through imports. Oil was imported from West Asian countries; technology was largely imported from the United States of America, Britain, France, etc.; gold from South Africa and so on. This dependence upon imports also made the country vulnerable to foreign meddling, since countries supplying crucial technology and services could hold deliveries hostage in order to exert pressure. India tried to counteract this by launching the Non Alignment Movement that steered clear of the two super-blocs. Despite that, and owing to the socialist vision of Indian political leaders, India formed close ties with the Soviet Union and was largely dependent on it for foreign trade. How did this proximity shape India and guided the internal dynamics of the country is something that can be argued either ways.

Hence, when the Soviet Union collapsed in 1991, India was hugely impacted. The crisis of balance of payments caused by the decreasing value of INR in International markets and a large foreign trade deficit led to India pledging 67 tons of Gold in return of an interim loan of USD 3.9 billion from the IMF. India was left vulnerable to the neo-colonialism when the gates of globalisation of the economy were opened. Thus, receiving foreign aid came at the cost of the possibility of influence over domestic policy, allowing former imperial powers to continue to maintain a largely hegemonic rule in the world's economy.

An important development that has to be taken of note is that countries that had been at the receiving end of neo-colonial manipulations, now have the potential to become neo-colonial entities themselves. Middle eastern countries such as Saudi Arabic and Kuwait, along with China and India have started wielding influence over former colonial powers, even possibly subjugating them in the process. Such neo-colonialist tendencies are to be found in India's posturing when we take into account certain foreign policy decisions undertaken by the Indian government in the past two decades. Notable instances of this include India's reluctance to disinvest in the oil-fields of Sudan and being silent on the human rights violations in Khartoum, claiming that India's presence as a democracy is a source of influence on the Sudanese government. Furthermore, in 2008 when the world at large was concerned with food security in the wake of the financial crisis, Ethiopia suffered through acute food shortage due to rainfall, a condition similar to the famines experienced in India during the colonial rule, while Indian industries in Ethiopia continued to cultivate fields. Many Indian Industries are setting plants in African countries like Kenya, Senegal, Ethiopia, Mozambique, and Madagascar because of the low cost and high efficiency the labour and resources of these countries can provide. Additionally, Indian government provides economic assistance to companies to see through their interests in foreign lands, such as providing subsidies to capture foreign markets and supporting governments that have interests in developing business relations with them. Though interestingly, the Indian government has not influenced the governments of these countries for beneficial policy reforms or provided political aid in pursuit of their business interests, contrary to practices of other neo-colonial powers.

The Indian Corporate: Leadership Faulty or Faulted With?

Aashish Jain
BA (H) English III Yr

The recent years have been a roller coaster ride for the Indian corporate sector. There has not been a single day when the 'Economics and Business' sections of the newspapers did not pour out new stories of corporate ruin. While in many cases, it seems that the decrepit global economic conditions have started showing their footprint in the Indian business sector, in others, it was the leadership of the companies that led to substantial ruin. From money laundering, payment defaults to a high-profile suicide, the Indian corporate world saw it all in recent years.

Upon retrospection, it is observed that 2019 brought tremors right from the beginning of the year. The year began with the Deewan Housing Finance Limited (DHFL) crisis, a crisis that saw a complete erasure of confidence in India's Non-Banking Financial Corporations (NBFCs), especially in the wake of IL&FS fiasco in 2018 in which the Board was found to be indulging in serious corporate malpractices. According to various media reports the DHFL's executives transferred the company's money to shell companies, most of which were traced back to the promoters at DHFL, the Wadhawans. This led to a complete derailment of the firm's business, to the extent that the corporation put withdrawal restrictions on its customers holding fixed deposits. Eventually, owing to its failure to provide SEBI with consolidated and separate accounting reports, the firm filed for insolvency with the RBI. As on September 30, 2019, the firm bears liabilities to the extent of INR 92,715 Crore. Good luck counting zeroes on that one!

The faulty leadership of Wadhawans was not a single episode, for CG Power became the next example of the same. Its Chairman Mr. Gautam Thapar was debarred from the Board of Directors after it was declared that the firm had been a victim to an accounting fraud. It was alleged that the Chairman engaged in wilfully understating the liabilities and advances of the firm to some entities. In plain speak, this meant that the Chairman reduced accountability for the risk that he was taking with the money of the firm and its investors.

A similar erasure of confidence in corporate leadership occurred involving Punjab and Maharashtra Co-operative Bank. The bank management created thousands of bogus accounts in order to hide the NPAs accumulated after their 'investment' in HDIL went bad. Due to the magnitude of misreporting that took place, the Reserve Bank of India took the reins of Punjab and Maharashtra Co-operative Bank (PMC) under its control, and imposed withdrawal restrictions upon the balances maintained by the customers in their accounts with the bank. The impact of this restriction was tragic since many people died as they could not cope up with the shock of loss of their life savings.

On the other hand, more than three years after the dramatic sacking of Cyrus Mistry, Chairman, Tata Sons, the NCLAT, on December 18, 2019, reinstated Mistry as the Chairman of Tata Sons, the order of

which has been stayed by the Supreme Court of India, as on January 10,2020. A major reason of Mistry's sacking was the high-handed manner in which he went about changing the corporate profile of Tata Sons from a conglomerate that took care of those working for it to one where the profitability of Tata Sons was the only bottom-line.

One of the biggest shocks for India's Corporate houses came in the form of Karvy fiasco. In early 2019, a case was filed against Karvy Private Wealth, under the pretext that Karvy Private Wealth transferred funds to builders without informing the clients or SEBI, causing losses to its clients in the process. According to SEBI, Karvy Private Wealth moved its clients' pledged shares to its own account via off-market trading, and transferred INR 1096 Crore to Karvy Realty Private Limited between April 1, 2016 and October 19, 2019. This was a serious breach of trust that investors had put into the company.

All the above-mentioned cases, and there are thousands more, depict a rather singular aspect of India's corporate crisis—that more than us going on a witch-hunt and finding faults with the corporate leadership, there is something that is intrinsically faulty in the kind of leadership that we see. It is as if the entire bunch of such leaders are self-centred and wilful participants (even initiators in some cases) of corporate malpractices, having the intention to benefit a select few at the cost of the rest. The irony, I might even say tragedy, in all these cases is that this position of leadership is understood as a position of privilege and not one of great responsibility towards both self as well as the society. The fact that such perspective about leadership has become entrenched and widespread shows that we need to do more than simply overhaul the manner in which corporate leaders are chosen and groomed. We must make larger social efforts to undo our obsession with the individualism that we seem rampant in the West, along with our fascination with their CEO-culture. Both these ideas undermine the truth that the leader is not an individual but an integral member of the society, and who derives all his/her position(s) of privilege/power from it. In fact, he/she is entrusted with the position of leadership with the expectation that he/she will suppress the pursuit of self-interest during his/her stint of leadership and, instead, pursue the larger interest of the society. Sadly, none of this has been on display for some time. Further, we don't know how to fix this malaise. Those who say that the *teaching* of social and corporate ethics and morality can help us groom better leaders, my response would be that it would be more tragic if what we teach is exactly the opposite of contemporary socio-political and socio-economic *practice*. In fact, we all see that what we teach/study is not what we practice in our daily life. Hence, I want to bring to your notice the tussle between the afore-mentioned italicized words, to think over and over, to feel the tension that exists between the two, in order to arrive at your own ways to address and help resolve the differences between the two. Finding answers to this existential dilemma, of the schism that exists between theory and practice, would be a painful experience. We might not get answers right away, or might get answers that accomplish only half the goal. However, I sincerely hope that you all would at least try. And may I request that whatever this course of action be, it should not be mere criticism.

What can be sensed from the above analysis is that India is taking a cautious route in its attempt to compete economically at the global stage. As a country that has borne the brunt of colonial rule and is familiar with the detrimental impact of undue political and economic control practiced by neo-colonial powers, India can empathise the plight of such nations. Yet, it is seen in India's posturing that it is willing to revisit its stances as its own economy grows and looks outward for fulfilling demand for resources. It can be seen that India is now more than willing to adopt a realpolitik approach to cater to its need for growth. Whatever be the outcome of walking this tight rope, the world would surely see a changed order in the remaining decades of this century.

NEW PARADIGM TO DEVELOPMENT

Rishabh Kumar Singh
BA (Hons) Economics III Yr

You never change things by fighting the existing reality. To change something, build a new model that makes the existing model obsolete.

- R. Buckminster Fuller

You must have heard (and probably become bored) of the promise of growth and development whenever elections, the festival of democracy, knocks at your door. Since the times when elections became the way to choose our leaders, election campaigns have been loaded with these twin missiles which are launched with the aim of winning the seat of power. What is so special about these magical words that votes get spellbound by it before every election is that they fuel the hopes of improvement, of deliverance, of salvation. Further, why is it that despite a very long history of promises of development, we see that the world is not really, and equally, a developed place. These hopes are so deeply embedded that top honours are reserved for those who can actually deliver upon it. Not surprisingly, this year's (2019) Nobel Prize in Economics has been awarded to 3 people working hard to translate the idea of development into a socio-economic reality. In this article, I would like to detail what is it that they did so that we can emulate the same.

Our quest to understand what these three Nobel laureates did starts with answering the question—what is development economics? In simple it is a discipline that explores and describes the structural factors that are responsible for difference in standards of living between high-income and low-income societies/countries? Finally, it tries to apply the knowledge acquired to the economic processes in low income countries.

An important aspect of contemporary Development Economics that distinguishes it from earlier versions of the last two decades is the extensive use of 'Randomised Control Trials'(RCT). In fact, it was the use of RCTs in their studies and poverty-alleviation programs that helped Abhijit Banerjee, Esther Duflo and Michael Kremer, win the 2019 Nobel prize in Economics. However, the concept of RCT is not new. Instances of the use of RCT can be traced back to as early as the 16th century. However, the statistical foundation of RCT was laid down by British Statistician Sir Ronald Fisher about 100 years ago. He was very reluctant to apply statistics to social sciences, due to their non-experimental nature and limited RCT, to the agricultural field. RCTs got popularised in the field of clinical trials since 1960s, so much so that without it, clinical trials were deemed useless.

RCTs use the following insight: you select two groups that are similar and then randomly select one to receive the treatment (a drug, or a policy) being tested and then compare the outcome of this group (called the treatment group) with that of the other group (called the control group). If the difference is statistically significant, then that is attributed to the treatment. As can be sensed, the use of this method has altered the views about what policies work and what do not.

It all started in 1980s, when Michael Kremer was visiting Kenya and took part in teaching at a local school as an initiative of an educational NGO. On the issue of deciding whether to build more classroom or giving new textbooks, he suggested that the NGO phase these interventions and then study their impact. This is when the idea of applying RCTs in development context emerged. Then he,

along with Prof. Banerjee, Prof. Duflo and other colleagues, conducted around 1000 RCTs in 83 countries such as India, Kenya and Indonesia. These were to study various dimensions of poverty, including microfinance, access to credit, behaviour, health care, immunisation programmes and gender inequality. While Prof. Banerjee thinks RCTs "are the simplest and best way of assessing the impact of a program", Prof. Duflo refers to RCTs as the "tool of choice". Anyways, the following have been the important findings about the use of RCTs.

Health: For years, economists believed that no service should be free, else people would stop valuing the service. But field experiments by the Nobel laureates found that while there should be a fee for healthcare, it should be subsidized to the largest extent possible. Subsidies helped in increasing the use of preventive health care. It was evident through these trials that poor people's investment in preventive care is very sensitive to the price of health products or services. These studies helped shift the World Health Organisation and the UN to promote subsidized health care for the poor.

Education: Field experiments showed that lack of resources is not why school-going children do not learn more. In fact, neither providing more textbooks nor free school meals improved learning outcomes. Instead, as was observed in schools in Mumbai and Vadodara, the biggest problem is that teaching was not sufficiently adapted to the pupil's needs. Hence, providing teaching assistants to the weakest students was a far more effective way of improving education in the short to medium term. Also, tackling teacher absenteeism, employing teachers on short-term contracts worked better instead of having fewer students per "permanent teacher".

Technology: In developing countries, there is often a stark difference between the technology and practices used by companies within the same economy and sector. This within sector/economy differences are less stark in developed economies. These misallocations can be traced back to various market imperfections and government failures. Hence, a core set up in understanding and ultimately alleviating poverty is to identify sources of the observed inefficiencies as well as policies that could address them.

Microfinance: Businesses need capital for their growth. Institutional financing, however, addresses the capital needs of big businesses only and capital needs of the smallest of economic functionaries are ignored. These entities (such as local, standalone shops and businesses) have to, instead, resort to borrowing from traditional money-lenders who charge exorbitant interest rates. Micro-financing is, thus, making institutional capital available to the smallest of economic functionaries and is seen as a win-win situation for all. However, growing evidence indicates that micro-finance programmes do not have the development effects that many had thought when these programmes were introduced on a large scale.

Criticism: Those who criticize the use of RCTs in economic experiments think that in order to conduct RCTs, the broader problem is being sliced into smaller ones. On the contrary, I believe that this is helpful since "One solution fits all" approach has not brought about desired outcomes.

According to Angus Deaton, randomisation doesn't equalise two groups. One group may perform differently from the other, not because of the "treatment" that it has been given, but because it has more women or more educated people in it.

Way Forward: As I conclude this article, I cannot help but admit that the above concerns cannot be dismissed. However, the RCT revolution deserves to be taken note of because of the evidence that it is important to quantify and compare the costs and benefits of alternative programmes while making policy. This is most important, especially in my country, where policy formulation and implementation is often done in a highly centralised fashion, and without looking at the evidence or trying to test the waters and generate some evidence. Since policy formulation takes a lot of time, and a lot of money is spent upon it, it has to be known before-hand that what would be the actual gains emerging out of a particular policy-decision. Only then should it implemented, and only then will it be able to deliver upon the larger social promises and goals that a State has in mind for its citizens. Unless this is done, we cannot think of making our nation the utopia that we have all dreamt of under different names.

My College Squad

Sofia Malik
B Com 6^{th} Semester

Meet my comfy and cheerful space
With lot of glittering grateful grace
Stars of their respective states
With distinguished speciality traits

One shares all the chattery jokes
To cheer the passive, pulky folks

Another comes who
Gives you a pretty woo
Reacts in ages
Thus counted among sages

Then comes this naughty sub group
From the tiny main group
They ignite the conversations
With full preparations
And, target a sweet chin
Then proceed with thick and thin

One gives the best available advice
But that actually doesn't suffice

When I go almost haywire
Stuck in the dingy and dark tiers
I call my best benevolent fits
They resolve all the gloomy spirits

One is the excellent study mate
Another is an overall opposite trait
one feels like, the second home
Another prepares you, the best for prom

You chaps have, all my heart
I am there for every momental tart
Apologies for my unintentional deeds
A friend in need is the friend indeed.

Come Back Tomorrow

Jyoti Negi
M.A. English (Previous)

He will come back again to beat you black and blue,
saying you've been a bad girl lately,
and this little play will set you right.

No. He is not that bad of a husband.
He does it to discipline my bad-self, which is you.
Moreover, he always comes to check-up on me after the play.

Check-up on you by giving you your "prescribed" pills, huh?
Making you worse day-by-day.
No wonder you don't have a mirror in this room to look into.

Oh, shush! Look you awoke the baby,
now it won't stop.
You know He hates to listen to the baby's cries.

And, you know He hardly cares.
Why don't you run away!
Aren't you sick of being stuck in this filthy room?

But it's so peaceful in here,
nobody ever really comes to disturb me.
But I must say, having no windows used to bother me at first.

You are too naive to notice.
Remember the time he brought that man to your room,
who said that you're just sick and need some sedatives.

Yeah, he was a good man.
Sometimes, he, too, calls me a good girl,
only if I do whatever he says. Isn't that easy!

This is stifling! If this goes on,
it would only take me a few days to vanish.
I...

Sh! Shh! I hear something, I hear Him.
He is coming upstairs.
You need to go now.
If he catches me talking to you again, he will start the play.
Go, go, hide somewhere.
Come back tomorrow.

Nani

Anushka Pragya
BA (H) Political Science I yr

My Nani was the greatest saviour
My family has known,
With kindness abounding
In the knots of her pallu,
And love settling softly
In the wrinkles of her skin.

The washed grapes,
Neatly cut apples
And the peeled oranges
That she ran behind me with
Tasted just as sweet
As the sound of
My name, twisted
And elongated,
From her lips.

My nani was the
Strictest vegetarian
I've ever come across.
Her unmoving faith in a God
I could never see in my dreams,
Making me doubt
If there was actually
Someone up there
Blessing the world
With a presence
As pure as hers.

If only
Even in her old age
She could scold us
In her thin voice
For touching her sacred skin
With the same hands
That held a chicken's leg.

My Nani could've passed
For an aged adolescent
With her shining teeth intact
And hair as black as tar,
And the tantrums
Only a stubborn teenager
Could be expected to throw.

Oh how everything is
So much quieter
And gloomier,
More grown up and serious
For years that I've felt
Passing. So many that
Her absence is absent now.

My Nani was the first one
To introduce me to
The magic of lemon tea
The only kind of tea
That has ever
Tasted sweet to me.
I wish she was there
To raise a tea toast
In all the family gatherings
That somehow feel incomplete.

My childhood was filled with
Her advices and scoldings
To get my head shaved
For once.
Perhaps my mother should've
Asked me instead of bhai
To shave off my hair
When Nani died.

My Nani used to pick me up
In her arms
To help me ring the
Temple bells.
She sat inside praying
While I jumped and played,
Occasionally falling,
On the temple stairs.

Her lap deserved more
Of my love
Her aging face more
Of my kisses
Her frail frame
More embraces
Than this
Careless granddaughter
Could ever give her.

My Nani walked in baby steps
Following me
To all corners of the house
And I can't fathom
How those footsteps
Aren't engraved on the floors
How we could ever
Rearrange the furniture
To fill her void in the room

How I couldn't see
Her last bowl of pomegranates coming.

Nani,
I promise I'll take a bath
After eating chicken,
Before hugging you
For a million days.
Nani,
I'll get rid of my hair
As many times as it takes
To rid myself of this guilt.
Nani,
I'll eat to your heart's content,
I'll braid your hair
Into the prettiest braids,
Do everything to give you
The happiest of smiles.

Nani,
I need to bid you a better farewell.

Vasant Maalti

Anushka Pragya
BA (H) Political Science, 1st Year

I don't know why
There isn't a breeze blowing today.

I don't know how
My mother juggles between
A whistling pressure cooker
And her online classes
Together
Better than I do
Between a few pointless shows.
How she has almost
The same workout routine
As I do.
How she handles
Two children
And a (grown up) kid
Without the slightest
Shudder in her knees.

I don't know when
I'll get to hug
My best friend
And sleep beside her
Knowing
That we'll always be alright
Or together at least.

I don't know
How many huts
Were ruined by
The last thunderstorm.

I don't know
The man making rounds
In the street.
Don't know who's
On the phone with him.
Don't know why
He looks so worried.

I don't know how
You and I
Separated by so many miles
Will outlive this pandemic.

I don't know if
You cry yourself to sleep
All these nights
With fear and sorrow
Crippling you.

I don't know who
To blame
For anything
Anymore.
Don't know who
To look to
For fixing the broken cup.

I don't know how I am,
And who.

All I know right now
Is that there's a tree
Across the street
With flowers called
Vasant Maalti.

A Short, Glorious Life

Dr Kamal Kumar Raul
Assistant Professor, Department of English

So, is life about length or quality?
Given a Choice what would one prefers
A short, glorious and successful one
Or long useless and mediocre?
That runs in the Greek Epic: *The Iliad* and *The Odyssey*
Achilles, the Greek hero, the wild and stubborn spirit
My way or No way, declares he.
Refuses to bow to the commander Agamemnon
On the claim of his columbine.
He dies in the Trojan war
When an arrow hits his heel.
The odyssey, located in the events
Of adventurous journey of hope
Makes the voyage to Hades, the land of dead.
He there encounters the ghosts of fallen warriors
Both Trojan and Greek,
He learnt from the ghost of Achilles
Who wanted short but glorious and meaningful life
Two Trojan Heroes: Achilles and Odysseus
Men of different choices
Confronted the meaning of life
That found in Hindu mythologies
Markendaya and Adishankara Purana
Does quality matters or quantity ?
Short but Meaningful on that Achilles or Lily?
Long but Meaningless that odyssey or Oak?

(N:B- The theme of the poem is based on Greek Epics: *The Iliad* and *The Odyssey* where the short and meaningful life of Achilles is noted not long and meaningless life of Ulysses and Odyssey. Both the Trojan wars (heroes) Ulysses and Achilles are men of different choice. Achilles is wild and stubborn who is on his own way of life, mentioned in the poem as other is Ulysses is farm of long life that may be meaningless. One is Lily and other one is Oak tree. But Lily is far fairer than Oak. This is the meaning of the poem.

The How, not Why, of Charity

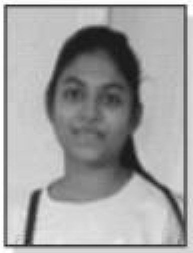

Ayushi Srivastava

B.A. (H) English 2nd Year

The idea of charity has been around since ages. It has been incorporated into the way of life in most religions. To be charitable is encouraged since it allows men and women to participate in God's Eternal Providence. What is interesting to note is that the question of why does one need to be charitable is never addressed. In fact, for a long time it was believed that recipients of charity are the less fortunate ones, and whose poverty was divinely ordained. Thus, people did charity in order to alleviate this pain. It was only in (secular) modern times that one started analyzing the prevalence of poverty. The world was not seen as simply divided into 'Haves' and 'Have-nots', with the 'Have-nots' outnumbering the 'Haves'. Analyses (Marxism and Feminism, for e.g.) showed how such inequality was created by a system of appropriation that concentrated resources into the hands of very few, and which had been given different names in different ages. Such analyses also proposed what could be done to eliminate such inequality (socialist revolution, for e.g.). However, over a period of time that dream of a socialist utopia has collapsed and today we find ourselves stuck in that same old situation. It seems that either life has come full circle, or that that is how things are supposed to be. It can't be the second situation, since humans have always shown the ability to modify the situations around them. The question, then, is that what can be done at this moment? With the monumental failure of socialism, is all hope lost? Or should we alter strategy?

It is this word “strategy” that is seen in today's times as giving us hope. While the question about charity is not about “why”, but “how”, we have to start with the “why” first. We need to be charitable since people do not have a means to earn a living. In this simple realization lies all our attempts at improvising strategy, for if people knew how to earn their living, they would not need the charity of others. This, then, brings us to the question of what is it that is needed to earn a living. Thankfully, people before us have provided us with some answers. In India, Mahatma Gandhi's idea of 'sarvodaya' (upliftment of all) inspired Vinoba Bhave to launch the “Bhoodan" movement. The movement, in theory, aimed at persuading wealthy landowners to voluntarily give a percentage of their land to the landless so that they could cultivate that piece of land and live with dignity. The abolition of the Zamindari system through the first amendment of Constitution of India, formalized this strategic charity when it gave ownership rights to tenants and share-croppers working on these lands. Giving people a piece of land to cultivate crops could indeed help these people live in some comfort. People thought that the Indian masses could now come out of penury.

Mahatma Gandhi's vision of India was that of a pastoral nation. His close ally Jawaharlal Nehru thought its exact opposite, that India needed to embrace modernity and industrialize like nations of Europe. Such an India would need engineers, managers, and bureaucrats, and which would require western education. Hence, if education was imparted to the Indian masses, it would help more and

more of them to come out of their poverty, as well as help India modernize in the process. Interestingly, such education and economic opportunities were appropriated by those who were already educated. The rest of the population still lagged behind. It was only after a decade or so that saw education gather momentum in India. Today, we are reaping the benefits of that momentum in many different ways. The literacy rate across India has shot up significantly to 74 % and steps are being made to ensure that it reaches 100 per cent.

Through this analysis we can see that India has done what it ought to have in order to remove poverty. Yet, how is it that around 26 per cent of the population continues to live below the poverty line? Despite education, and even land, becoming accessible to more and more people of India, why is it that poverty? Though we should be charitable with the excess wealth/resources that we have, we see that the need for charity assumes a different dimension, that it is end-driven. In fact, we ought to start asking this question that despite being charitable, and despite making efforts to address systemic problems such as land ownership rights, why is it that chill penury prevalent? And if we continue to be charitable out of the goodness inside us, can we/should we alter strategy so that our charity aims to eliminate the need for charity, not reinforce it. It is this realization, of making charity strategic, that can give us some hope. The conventional practice of charity has been unable to trounce poverty since its goal is to be charitable, not eradicate poverty. Nonsystematic or shambolic ways of doing a good act can, on the contrary, spoil its outcome. Absence of 'strategy' on how to achieve the intended goal is a flaw that should be addressed. While charity happens in numerous ways how effectively does it realize the intended goal should be more thoroughly analyzed. One way out could be that different kinds of philanthropic activities can be done by measuring their pros and cons.

In present times it's all the more true that charity in kind is way better than charity in cash. Yet, we need to realize that it does not entail giving away things such as food, clothes, blankets, etc. In fact, we have to do charity in such a way that it empowers the beneficiary rather than make him/her a beggar. One way to be strategic in our 'charity' is by imparting skills, or things that help in imparting skills. For example, to help a child get education might be a charitable thing to do. We see CRY and NSS doing that all the time, involving members of civil society in order to participate in the upliftment of children. However, 'teaching' marketable skills could be more a strategic charity than imparting simple education, since that would ensure that there is no further need for charity in the case of that individual. The Jewish philosopher Maimonides had righty said, “Give a man a fish and you feed him for a day; teach a man to fish and you feed him for a lifetime.” It would be even better if someone gave that man a fishing rod or similar tools after his teaching is over. Thus, a way of doing 'strategic' charity could be that we help people acquire skills so that he/she could work on his own and eventually become self-dependent rather than relying on further acts of charity. In fact, in this way we can kill two birds with one stone—through strategic charity not only 'how' but the 'why' can also be dealt with. Who knows, there might even come a day when there would be no one who will need charity.

The Science of Photography

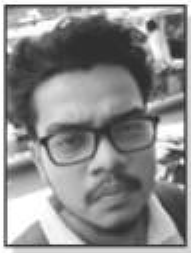

Hrishikesh Talukdar
B.Sc.(Hons) Physics, 3rd year

"Creativity is intelligence having fun"
-Albert Einstein

A scientist and a photographer approach their subject matter in almost the same way. For start, this is because the amount of effort spent by a scientist to discover or invent something is similar to the kind of effort undertaken by a photographer for getting a visually pleasing, aesthetically enthralling and geometrically perfect photograph. So, having put the foot into science and the artistic photography, I will explain how both of them are similar, if not inter-connected, and will easily bridge the gap that most people tend to create between the same.

Sincere effort, critical analysis and the ability to delve deep into a problem until the solution comes into our hand are some of the most important as well as most necessary qualities that one should possess in order to attempt scientific research. Now, one may think what does it has to do with photography? I say, it surely does and here it is how. A photograph is not just capturing one random moment from the continuous movement taking place around us. A good picture is nothing less than a magnificent art. In fact, most people might think that taking a picture is like those 'point and shoot' cameras, that all one has to do is to point the camera at the thing/person to be captured and simply press the button. No! Taking a good picture is much more than this. What it requires is creative thinking, rigorous imagination and ability to find mathematical symmetry between the object and its nearby surroundings in order to find the perfect punch in the desired frame. Sadly, all these efforts remain hidden to the world. The only thing that people see is the picture. They think that taking a picture is an effortless job, or something that can be attributed to the expensive lenses, ISO settings and/or filters that a photographer must be using. People forget that the real effort that is being put in by the photographer, through the vision that he is conjuring up in his mind, and which he is trying to find through the lens of the camera. All this background work that is needed in order to produce a fine picture are never brought forth and, thus, recognized by the rest of the world. It is this that we ought to focus upon, especially if one is trying to 'learn' photography. As can be sensed, all this is very essential for someone's personal growth, nourishment of someone's artistic potential and true nature of someone's imagination and with what perspective they view the world. Apart from being a source of light, it is a feeling that connects our soul with the rest of the world. In case of any scientific study, the very first and the most important step is the observation of the subject in the form of photograph. Different machines and equipments, hours and hours of scientific investment in order to get a definite result. Even in this case only the efforts of the scientists are hidden and only that the output makes a difference to the rest of the world. The hard work is only remembered by the ones who have given

themselves for the cause. The result of this effort is that it brings satisfaction, personal relationship and drives out emptiness from within.

What I feel and what I think is true to great extend that a passionate mathematician can be an excellent photographer as it is well known that mathematics is not just a play of numbers but the language with which nature speaks to us and explains itself in the most diligent and majestic way. It undoubtedly explains the symmetric nature of nature and anything to be visually attractive has to have some symmetry in itself. The same phenomenon is applied in case of photography. So to say, there are many rules in case of this art form but all those rules are based on mathematical symmetry nothing in this universe was, is or will be beautiful. It is the reason for our happiness; it is the reason why we love something which is the most powerful driving force in this universe.

A good photograph is one which pulls the eyes of a viewer towards itself, from all that he/she was looking at, and does not allow them to move away from itself. The viewer cannot keep his/her eyes off it, as if the picture has hypnotized him/her. The question now is what would make the photograph this good? Well, in a good photograph there are fewer elements for the eyes to comprehend. Too much cluttering of components in the image is strictly avoided. Further, all the chosen elements are properly arranged (backgrounded, foregrounded, distorted, blurred, lighting, focus, etc.) in a disciplined manner and in accordance with some mathematical symmetry, such that the viewer receives a visual pleasure by looking at it. Moreover, a good photograph has a story of its own and serves a purpose and meaning of life and to itself. On the other hand, a bad photograph may serve meaning and story of its own as well but if the elements do not have any geometrical pattern and does not add up to symmetry, it never looks visually pleasing to a viewer.

At the end of the day, a good photograph is the outcome of a creative process. Taking a good picture needs one to have a highly creative imagination that attempts to fashion and refashion perspective. However, creativity does not come alone. It requires rational analysis, logical reasoning and critical thinking. A scientist always has these, and in my opinion a photographer also needs to possess them. Without an active creative imagination, a photographer would never be able to excel in this art, even if they invest in expensive equipment that is available in the market these days.

There is a Greek phase- “Khalipa de Kala”. It means “beauty is harsh”. Well, the harshness of the beauty of a good picture lies in the hard work and toil that has gone into it. Behind every success and satisfaction, there are lots of struggle involved in it. So, whenever you see a photograph, don't just see it as a photograph. Feel the blood and sweat of the person who created it.

My Unfulfilled Reverie

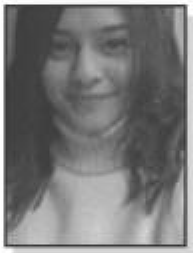

Tapasya Waldia
BA Programme 2nd year

To all my guy friends,

I want to roam around the world,

Roam around the world like it's my last day.

Just like you brag about how you spent the whole night beside the lake, dancing till you die,

I want to roam around the world like that.

Like how you slept outside on that bench! Yes. Just like that.

Like how you sang through the streets, DRUNK! I want to roam around the world like that.

I had a wish added to my bucket list when you narrated to me all the fun you had with your 'all guys gang' and dreamt of the time I too will roam around the world like that!

Amidst all this, all my wishes, dreams, fantasies, my thoughts, my plans! I forgot that my DREAMS ARE ILLUSIONS, My fantasies, a mirage!

I forgot that walking through the city streets after midnight is a gender privilege,

Forgot that strolling through the dark alleys I'll carry the fear of hundreds of monstrous eyes on me,

Forgot that 'I' was the one who had to abide by the social norms and not roam around the streets getting drunk.

So every time you'll tell me of how you spent another night under the clear night sky I'll live my dream through your stories and roam around the world like that.

From 'the girl next door'!

Can South Asia become a hub for Technological Innovation?

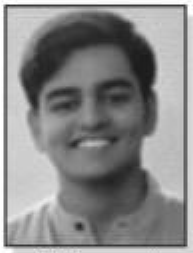

Shivam Anand
BA (H) Political Science, 2nd Yr

Technological innovation and economic development are positively co-related. Technological advancement is associated with greater productivity and efficient use of resources that can lead to increased economic output, attract investments and bring about significant reduction in poverty. Due to this, European nations pursued first, second, and third industrial revolutions and, consequently, brought about a significant change in the manner in which economic production and associated activities were done. However, the 21st century is sitting on the verge of the next stage of industrial revolution, called Fourth Industrial Revolution.

The onset of Fourth Industrial Revolution (IR4) is being driven by mobile internet, advancement in "computing power and big data", nanotechnology, artificial intelligence, and more. Owing to the fact that South Asia has higher number of young people connected to new technological developments and has a huge market of educated labor, the World Bank has deemed it to become a hub for innovation in the fourth Industrial Revolution. The advancement in technology will provide a means to tackle the "large-scale systemic challenges in South Asia".

However, there are many challenges that realization of Fourth Industrial Revolution will face in South Asia. To begin with, any argument for technological advancement in such a populous region as South Asia, where providing jobs to the masses is the most important political objective, is sure to bring about an opposition since technological advancements can cause upheavals in the labor markets. Further, there is also a lack of understanding of these technologies, which creates associated fears and resistance to adoption of new technology in South Asia. It is coupled with the fact that firms in South Asia underinvest in creating knowledge and providing skills and training to their workforces. Although, Research & Development (R&D) investment varies across countries, even the best performers like India invest approximately 1% of their GDP on R&D ecosystem. Both public and private investment in R&D is low compared to other developing regions such Latin America and East Asia. And even though Information and Communication Technology (ICT) has a good adoption rate in countries like India, Pakistan and Sri Lanka, the rate is low for Bangladesh and Nepal. The firms don't largely engage in e-commerce and online businesses. Even the acquisition of knowledge capital is largely limited to large and foreign-owned firms. Innovation, if any, is more an attempt at imitation than novelty. These are some of the ground realities that Fourth Industrial Revolution will have to face in South Asia.

The new world economies will be built on IR4 technologies, which means that the governments need to form favorable policies for adoption of these technologies. This has to be done to avoid becoming outdated economies that can't compete with the global market. Despite the positives, experts suggest a loss of 40% jobs in next 15 years as a result of technological advancement. Closing down the country's economy is no option as the countries have achieved a more prosperous growth

functioning as open economies. The solution, thus, lies in not stemming the pace of technological change but rather being prepared for it. If South Asian countries prepare themselves for this disruption, there could be more and better job creation than loss.

SKILL GAP

In order to be prepared for the change that IR4 technologies are going to bring about, the professional skill of the workers needs to be made up-to-date. According to UNICEF, "More than half of South Asian youth are not on track to have the education and skills necessary for employment in 2030". The South Asian countries which earlier targeted increasing accessibility of education, did not give a lot of attention to the quality of education. Students are given suboptimal vocational training that does not provide them with desired skills needed for labor market. Out of all the countries in the region, India has highest number of graduates every year and is eighth worldwide. Despite overall better conditions on this marker, only 4% of engineers have necessary cognitive and language skills required to start a technology start-up and 3% have other specific skills in artificial intelligence and data science, etc.

In this regard, primary schools will play an important role, as not only technical knowledge but also the cognitive and non-cognitive soft skills will become important which are generally better learnt at a young age. Thus, economies need to spend on higher quality of overall education. An overall strengthening of R&D ecosystem will be of utmost importance in order to make a progress towards innovation powered economy. More funds need to be allocated to universities and research labs that are working on technological innovations. A major reason why China, which started on a same base as India, has done well in terms of technological innovation is its massive increase in R&D spending since 1991. China's spending on R&D ramped up by an annual growth rate of 19% since 1991. The R&D ecosystem of China has been internationalized by forging academic collaboration with countries that do well in this front (such as Japan). Thus, as World Economic Forum points out about South Asia, "stronger links need to be formed between governments that regulate technology, academia that nurtures new technologies, and industry that builds technology".

START UPS

The novel ideas that come from R&D ecosystem need to be then put into the market. The role of banks will become crucial in order to extend loans to entrepreneurs and industries whose vision would be to create good and services related to IR4 technologies. Startups can thus become powerful weapons against the predictive loss of jobs as a result of technology replacing a large number of jobs. South Asia has tremendous potential to become an innovation and start up hub. It has unrivalled large number of young people, the region is also groping through a phase of tremendous urbanization and with overall increase in spending power, there is greater interest in digital innovation.

In order to incentivize people towards coming up with their startups, an entrepreneurial culture has to be developed. Our education system should be reoriented towards promoting creativity and encouraging startups, rather than a culture that only aims at job security and discourages taking risks. The government needs to make changes in laws that disincentive these startups to come up and liberalize them in order for these startups to receive investments. The tax regulations for these startups need to be eased at large. Recently, Government of India has exempted startups from paying the angel tax—"that required startups to pay a certain tax if they received an investment at a rate higher than their

fair market valuation." The government should envision to bring together both public and private sector to collectively support entrepreneurs who come up with novel technologies. This can be modelled on Horizon 2020, which was a large scale government innovation program by the European Union. Special Economic Zones can be created for for micro, small and medium-sized enterprises (MSMEs) with rules that encourage them to invest in infrastructure and set up manufacturing facilities. As pointed out earlier, MSMEs have often been found not investing too much on innovation than the larger firms. With a strong innovation system and dynamic start up culture, a robust source of job creation can be ensured in South Asia.

CONCLUSION

While COVID19 is having some major impacts on all sectors of economy, positive openings have surfaced for technology & innovation sector. There has been an increased usage of technology to provide healthcare while also ensuring social distancing. This is just a single example of positive impacts of technologies that are going to change nature of economies and our lifestyles. Tech and innovation that come up should be aimed at addressing the need of those at the bottom of the pyramid. Inclusive policy approach should be followed in this regard to increase acceptability of these innovations amongst most vulnerable sections so that they can reap the benefits of these changes.

South Asia has tremendous potential to become the next innovation hub. However, this isn't possible without South Asian governments facilitating it. The role of governments across the region will be essential to remove the roadblocks and incentive the firms that bring about these technological innovations. A healthy competition needs to be fostered in order to attract foreign investment. When the government will facilitate and the citizen will innovate, South Asia would take a flight to become the next hub for innovation.

'Make in India'- The OEM vs OED Conundrum

Pankaj Bharti
Assistant Professor
Department of English

In my memory, the first time when the idea of 'Make in India' made an appearance in a Prime Minister's speech was in the year 1993. On 15th August, the then Prime Minister Mr Narasimha Rao informed the nation from the ramparts of Red Fort that the Indo-Russian deal of sale of cryogenic engine for the critical upper stages of its Geosynchronous Satellite Launch Vehicle had fallen apart after the Russians had buckled under the pressure of United States administration. The indignation at this renege was so much that the 'make in India' call had to be given. There was no way out, like in 1991 when Narasimha Rao *had to* liberalise the Indian economy. Hence, he boldly declared to the nation from the same platform that the denial of such critical technology will not stop India's space program, and that the country will build its own cryogenic engine. Those who were better informed knew that this was going to be an uphill task, especially when India had simply given up on the development of an indigenous cryogenic engine after the deal with Russia (then USSR) for such engines had been signed. Hence, it took ISRO's Liquid Propulsion Systems Centre a painfully long 15 years to design and build that technology, with the first successful use of it coming another 6 years down the line. Thus, the initial story of India's 'make in India' attempts has not been encouraging one. Since then, we have made countless efforts to indigenize the different technologies we need to address our day today problems. However, many efforts have not brought forth the desired fruits and importing technology has been the fall-back option. If we add to it the fact that there is an abundance of cheap but high-quality products that can be imported from international manufacturers (read China), the scope for 'making in India' is all the more bleak. Yet, the bitter pill has to be bit into. The way we should bite into this pill is where the difference can be made.

The idea of 'Make in India' was introduced in mainstream political discourse in the recent times, and especially after 2015. From the political perspective the idea that we should locally manufacture things that we consume made better sense. It would not only reduce dependence on imports, and the Current Account Deficit, it would also mean that more jobs would be created in the manufacturing sector. We all know that, traditionally, manufacturing has not been a major contributor to the Indian economy since this sector is technology- and capital-intensive. For historico-social reasons capital isn't easily accessible to the Indian masses. And while Indian technological institutes are counted as some of the best in the world, owing to many political, social and economic factors, their students have been path-breaking problem solvers *outside India*, not here. Hence, encouraging the setting up of domestic manufacturing facilities would be a win-win situation for all. Further, the strategic importance of domestic manufacturing has been greatly realized in the present times. Realizing that trade can be used

as a weapon, India has moved to retaliate against a host of nations who have tried to meddle with a few internal matters of the country. It would really make good strategic sense if India could domestically manufacture a lot of material so that the possibility of trade being used as a weapon of war against India can be avoided.

Amidst all this hullaballoo surrounding 'Make in India', a few important things have been forgotten, and whose long-term impact needs to be kept in mind while an attempt is made to improve the contribution of manufacturing sector in the Indian economy. From what can be gathered, the most important aspect of the recent calls for 'Make in India' has been to make India an OEM/ODM hub. For the uninitiated, OEM means Original Equipment Manufacturer/Manufacturing, and ODM means Original Design Manufacturer/Manufacturing. As OEM/ODM, Indian policy-makers wish to see India becoming become the next manufacturing hub of original designs/equipment for different corporations of the world. In fact, the Indian government is time and again trying to woo many companies to shift their manufacturing units from other nations to India. The thought is that the world should have an alternate, and more reliable, supply chain of the commodities that it consumes on a daily basis. Hence, the call to global corporations is to move manufacturing facilities out of rogue nations where the intellectual property/proprietary technology of these corporations has been compromised, and set up local manufacture and packaging of original equipment for both domestic as well as international market in a safe environment such as India. If this plea translates into real migrations of factories, India stands to reap outright gains in the form of more employment opportunities for Indians, consequent material prosperity across the Indian society, and strengthening of the Indian economy. However, in the long term we need to be wary of becoming an OEM/ODM hub. By "we" I don't simply mean the policymakers in the government. In fact, this piece is not addressed to any policy-maker at all. It is meant for the student community, the workforce of the future. It is to them that I say that don't rely upon making a career in OEM. The apprehension that is to be brought into focus is that in due course of time, OEM will be penetrated extensively by automation, and controlled by PLCs/AI. It might conjure images of a dystopia seen in post-apocalyptic science fiction, but the mass-production lines of the future would limit the need for labour in the manufacturing process. Who wouldn't want a production line that never stops, doesn't come with too much financial liabilities associated with hiring and severance, and maintains a uniform quality. The future of production lines is seen as automation. Even in advanced countries such as South Korea, USA, Japan, Germany, etc, the thrust has been to increase the number of industrial robots per 10000 workers. Thus, pending technological and financial feasibility, the human element would be slowly but steadily phased out of manufacturing. Further, sentiments last till the time its stimulus is around. Once the stimulus disappears/replaced by some other stimulus, the sentiment would disappear as well. While various pledges have been received in the present times to shift manufacturing to India, there is no guarantee that this new found love for local manufacturing would remain the same in the future as well. In a global economy, capitalism would only care about procuring commodities at the cheapest price possible. It is the fundamental systemic characteristic of Capitalism. It does not matter to the capitalist where the production takes place till the time the cost and quality of the product is as desired.

This brings us to the second aspect of manufacturing, and which India should simultaneously think about—OED, or Original Equipment Design. As the name suggests, OED pertains to *designing* Original Equipment. It is about translating idea/concept of technology that solves a problem into a technology-product that can be produced on a mass scale for the consumer market. It entails researching and developing an all-aspect model of the concept that can be shifted from the drawing board to a production line without major challenges. Clearly, and while pursuit of OEMs is good for generating jobs, the real achievement for a civilization is being able to design original equipment aimed at solving problems. It is also what would keep OEM up-and-running in the future, despite all the automation that takes place. Hence, it is in this direction that Indian policy-makers and the teacher-learner community should move into. As it is, India is saddled with a historical baggage of a set of problems that have not been solved/addressed. The only drawback is that designing an original equipment requires considerable research and, most importantly, funding. That is exactly where the real difficulty lies, for such a task can be attempted either by multi-billion corporations where individual motivation is aligned with the motivations of the organization, or by national governments where motivations of the individual/citizen is often at loggerheads with that of the state. With the recent call for 'Make in India', the intent of the Indian government has been signalled. It is now more than willing to see manufacturing come up in India. All that is needed now is to move away from purely academic research and instead demonstrate the ability of designing solutions to problems, and to repeat this ability over and over again. And that is exactly where the teacher-learner community should shift their energies to, for probably this is where we will find answers, even if temporary ones, to some of the existential problems that we all have been besotted with all these decades.

SHALLOW GAPS

Jayanti Chopra
BA (H) Political Science

Standing in my balcony,
I feel air comprising-dust and smut
Nudging my body and yet soothing my mind.
Just when I'm about to lose balance,
my resisting hands get hold of the railings.
These black bars, suddenly,
stop my roaming eyes to wander somewhere else.
These railings, all darkened with thick black paint,
took me to some hazy memories,
reminding me of the prison in which my soul has been imprisoned.
The bars of the prison, evenly spaced,
and that shallow gaps between them,
allowing the air comprising-dust and smut
to nudge my soul and taking her to the vivid memories of the open sky
and the warmth of the sun.
Eerily, my hands lose their grip from those black-coloured railings and my roaming eyes, now,
get struck at the unbounded sky and radiant sun up above.

A Velvet Hand in Iron Gloves

Disha Gupta
BA (H) Political Science 2nd Yr

You filled my life with joy,
No matter how much I used to annoy.
You gave me the complete pleasure,
While you gave up your time of leisure.
You gave up your needs,
To fulfil my greeds.
You held my hand, so that I do not fall,
After I went, in every thirty minutes you used to give me a call.
Innumerable times you fought for me,
And most of the times got insulted because of me.
But you never let your hopes give up on me,
Whatever situation it may be.
Your burnt hands felt soft when you fed me,
Your wrinkled hands felt strong when you held me.
You had that faith, that I will shine,
You used to wrap the cloth around my neck while we dined.
You filled the empty box full of crayons,
I will never forget you tired afternoon yawns.
Today you lie there cold and still,
The best of the clicked memories are on the wall that you drilled.
While we slept you gave me the entire bed,
While you, yourself slept in the rest.
No one could keep me as secure as you did,
Today a farewell to you I bid.
I feel blessed to have you as my father,
Hope that I can become a worthy daughter.

The Need, Scheme and Concerns about PM CARES

Prakrat Gupta
BA(Hons) Political Science 1st Year

With the novel corona virus unleashing a global rampage since it was officially declared as a pandemic, all major economies have come to a standstill. Stringent measures such as national lockdowns were put in place in order to tackle the spread of this contagious virus. All economic activities had to be stopped in order to stop the transmission. As a result, a majority of the population involved in economic activities found themselves without any income. And with no income, there was a threat of going without eve two meals a day. At this time, the State of India stepped in to assuage these existential anxieties by ensuring that ration was available to anyone who needed it, that too at subsidized rates. Further, in dire times such as these the civil society and philanthropists stepped forward to lend a helping hand to the state. Yet another effort that garnered public scrutiny was that of Prime Minister (PM) Modi launching Prime Minister Citizen Assistance and Relief in Emergency Situation (PM CARES) fund through a thread of tweets on 28 March to gather public contributions in a bid to boost the response of the state towards the pandemic.

Within a few minutes of the launch of the fund donations started pouring in as numerous corporate houses, philanthropists, and prominent members of civil society pledged massive amounts towards the fund. However, various critics openly questioned the utility of such a fund, especially when something like the Prime Minister's National Relief Fund was already in place. Amidst all this humdrum, what many failed to notice is that PM CARES fund is much better suited to deal with distress situations or emergency situations, like COVID-19 pandemic, and providing relief to the affected. Let us first look at the similarities exists between both the funds. They are as follows:

1. All the donations made to both funds qualify for 100% exemption under 80G benefits of the Income Tax Act, 1961 and for Corporate Social Responsibility (CSR) obligations under the Company Act of 2013.
2. Both the funds don't receive any budgetary support and are composed solely of public contributions and are recognized as trusts under Income Tax Act
3. Both receive foreign donations and are exempted from Foreign Contribution (Regulation) Act 2010. The only minor difference is that PMNRF has been receiving foreign donations from 2011.

Now, we look into the manner in which PM CARES fund is more democratic, constitutional and legitimate manner of building a war chest for Coronavirus crisis and other exigencies. The points are as follows:

A) PM CARES Fund's trust comprises of PM as the chairperson of the trust; Home Minister, Defense Minister and Finance Minister as ex-officio trustees apart from 3 trustees nominated by the PM who are eminent experts in the field of research, health, science, social work, law, etc. PM CARES delegates the power of deliberation and decision making to the ministers in-charge of crucial portfolios in the cabinet, thereby ensuring more accountability and democracy. On the other hand, PMNRF's management since 1985 has rested solely in the hands of PM who may appoint a secretary from PMO for its management.

B) PM CARES Fund accepts even micro donations like Rs 10 with the belief that even micro contributions can go a long way in dealing with the pandemic in a populous nation like ours. On the other hand, the minimum donation to PMNRF stands at Rs 100.

C) Historically PMNRF has failed in its adequacy to deal with natural disasters. In fact, it has been turned into a vehicle for investments. One can look at the records for 2018-19 shows that PMNRF invested 1301 crores in state development loans. While with more democratic and constitutionally sound trust in place, expectations would be that PM CARES becomes a war chest that India can readily rely on in emergencies when the future of an entire country is at stake.

At the same time, PM CARES Fund has once again brought legal issues related with such type of funds into the mainstream. The very nature of the Public vs. Private Trust has been long debated in case of PMNRF and even Delhi Court's Division Bench failed to clear the final status of trust of PMNRF in Aseem Takyar vs Prime Minister National Relief Fund (2016) case. Even if the 'private' nature of trust is accepted the government cannot refuse to disclose the information to the Indian citizens as section 19 of the Indian Trusts Act, 1882 which says "A trustee is bound (a) to keep clear and accurate accounts of the trust-property, and (b) at all reasonable times, at the request of the beneficiary, to furnish him/her with full and accurate information as to the amount and state of the trust-property." Hence, citizens have right to seek information from the trustees as the objectives of such funds is to benefit the public.

The accountability of such funds has to be ensured in a transparent manner. High constitutional functionaries like PM and cabinet ministers control the trust as ex officio trustees and in a representative democracy should set high standards of political morality by enhancing the accountability factor of such funds. Such funds, including PM CARES and PMNRF, need to covered by the provisions of Article 151 (1) of the constitution and be audited by the Comptroller and Auditor General of India, instead of third party auditing, which will ensure more transparency and accountability. Another step could be that the trust of PM CARES could bring on-board the Leader of Opposition for ensuring the opposition oversight over trust, thereby making the fund more transparent and all inclusive.

Many critics and opposition ruled states raised apprehensions over the CSR obligations after the Ministry of Corporate Affairs clarified that contributions to CM Relief Funds and Corona Funds do not qualify for CSR. But what these states fail to notice that corporate contributions to the state disaster management authority (SDMA) funds qualify as CSR expenditure. Though SDMAs operate at the

state level, 75% of the contributions to these funds are being made by the Centre, in case of the special-category states, the Centre's SDMA share is even higher at 90%. Centralization of CSR funds is essential to ensure their optimum utilization for the worst affected states and avoid disparity of funds between more industrialized states versus the less industrialized ones.

The creation of such funds stands for the incoherence of Articles 266, 283 and 284 of the constitution. Article 266 (2) states that "all other money (other than consolidated and contingency fund of India) received by or on behalf of the government shall be entitled to the Public Account of India." The supervision of the legislature is crucial for such funds while sessions and meetings of various legislatures are disrupted due to pandemic. Novel mechanisms to facilitate the working of legislatures through video conferencing needs to be explored such as in Britain or for the time being President needs to frame proper rules for such funds. A petition was filed in the Supreme Court in this but however the plea was dismissed by the bench of CJI S.A. Bobde terming it as "misconceived petition"

Conclusion

Prime Minister's Office denied access to the details about PM CARES fund on a RTI plea. While PM CARES Fund no doubt is better suited to serve as a war chest in any unwarranted exigencies but the government needs to enhance the transparency of the fund by giving access to information sought by citizens about the fund and making the trust all inclusive. Cybercrimes, including fake links to PM CARES fund, related to COVID-19 are on a steep rise. The government needs to generate awareness about the same and indulge in constructive ways to work out a more transparent framework such as including of opposition leaders in the trust, making information about fund accessible to citizens, operating a separate website for the fund which publishes the name of beneficiaries on an annual basis, ensuring the timely disbursement of fund for pandemic, and addressing all the legal concerns associated. We are at a critical juncture in fight against COVID-19 and let's hope that the huge popularity endowed in the fund will strengthen state's response against COVID-19, as well as any such upheavals that may arise in the future.

Silence

Siddhartha Lahon
Assistant Professor
Department of Physics

Silence, it's such a convenience
Keep mum, frame it silence
Sycophantic bolsters, name it silence
Lonely, call the quiet the silence.

They induced silence for progression
Unnamed got silenced for suppression
Silenced for sheer oppression
Some grasped silence for commission
Few were silenced for facts' omission.

Heck, silence as constrained strength,
Dissenters stymied all the length
White noise, drown odd mouths' strength
Convenience of silence is crystal meth.

BOOK REVIEW-

TO KILL A MOCKINGBIRD

Sanjivani Nathani
B. Sc. Statistics, 1st Yr

With no dearth of time, yet complaining of boredom for an excuse amid lockdown, one can always cling onto the old school hobby of reading as a means to pass time, efficiently. 'To Kill a Mockingbird' is a book that most of us claim to have read; set up against the backdrop of a typical American neighborhood (in the fictional town of Maycomb, around 1930s) and is narrated by Jean Louise ("Scout") Finch.

The plot primarily revolves around Scout, her elder brother (Jem) and their friend Dill's daily routine as a group, and their interpretation and experiences with adults of society. Scout and Jem's father, - Atticus Finch, is a respected and renowned lawyer of Maycomb. Life is smooth until he decides to defend Tom Robinson- a black man from a poor and deprived lineage wrongly accused of raping a white woman, Mayella Ewell. In days when racial tensions and distinctions were high and prevalent, favoring a black man was considered an obscenely dishonorable move. Even though Robinson and Atticus lose the trial, Bob Ewell (Mayella's father) is stripped of all kinds of respect and dignity and experiences public humiliation in the court owing to his deprived lifestyle and illiteracy and that of his clan. This enrages Bob, and he plans the murder of Atticus' kids - his most prized possession.

Parallely, the story of Boo Radley has been developed, as a secluded person who has cut off all sorts of interaction with the neighborhood since decades. He has been a subject of interest to the children of the area; they were horrified yet intrigued by this neighbor, who never went to church, lived in a dark, gloomy house and had always been hotly rumored by women. The children spent many nights wondering about this enigmatic character and even more days enacting his personality amongst themselves.

Contrary to common perceptions about him, Boo is the person who saved Jem and Scout from Bob's attack and brought them back to their father.

This book enables the readers to realize the dilemmas young minds face while their father fights against the widespread stigmatic mindset of people- which not only affects his, but the personal life of his children too. They are targeted in their school with allegations about their family.

Apart from the central idea of racism, this book portrays a plethora of distinct underlying issues such as adolescent dilemmas, importance of growing up in an educated environment, innocent childhood romance and how the 1930s affected unemployment due to The Great Depression. Lee's novel doesn't fail to engage the readers through the beautiful nuances in use of language, vocabulary and descriptions which make an imaginary location seem so authentic.

Harper Lee always considered her book to be a simple love story. Today, it is widely regarded as a masterpiece of American literature. This novel is suitable for readers of all age groups, for there is something for everyone to relate to in this classic.

A Letter to Rachel Green

Karishma Prithiani
BA (H) English 1st Yr

Dear Rachel Karen Green,

You came running to Central Park in search of Monica. Instead you got lucky and found your whole family. From then to now, it has been a long journey. And, along the way you've taught me quite a few things. I've seen you evolve from a daddy's little spoiled girl to an incredible single mother. You've taught me, how leaving behind your idea of forever might be hard but finding yourself in return is not a bad deal after all. Starting over from scratch is the thing I dread the most. But seeing how you left everything behind and made a mark of your own in this world, even if it sucked, is all the inspiration I'll ever need.

You were never afraid to put forth your views, may it be telling Ross "No uterus, no opinion" or calling out on Gavin's description of maternity leave as a baby vacation, "A vacation? My idea of a vacation does not involve something sucking on my nipples until they are raw". You've always been the boost, my inner feminist needed. And, how you took a stance to be a single mother even after your dad's hilariously disparaging remarks, taught me some relationships don't need societal validation.

You're capable of so much more than you give yourself credit for, Rachel. From being a girl who was laughed at in 15 interviews to an executive at Ralph Lauren, you turned everything around. And throughout the way you taught me, that there are always going to be people who tell you 'You are a shoe', but all you need to do is go ahead and be the hat or the purse, you always wanted to be. Yes, you had your days when you felt buried under 50 feet of crap, but who doesn't? Yet you still made sure, the rest of your days are kick-you-in-the-crotch, spit-on-your-neck fantastic.

Oh, how much I adore you for getting off that plane and making everyone realise that some people are just worth giving up everything for.

A girl who always wanted to be you,

Karishma

IT AIN'T ALL ABOUT
RAINBOWS AND UNICORNS

Sakshi Semwal
BA (H) Political Science 2nd Yr

It's lunch time and you see a class 7 kid sobbing at a quiet corner near the nursery block. You gently ask him- "What happened?" and the kid bursts into full blown waterworks. Once he stops panting and crying, he finally lets it all out, how he has been teased by his classmates for not being 'man enough'; how he has been mocked for being girlish and how everyone refused to play with him.

This marked my first ever encounter with homophobia back in 2015. As much as I have denied it to myself, this remains in my memory as the most vitriolic or violent outbursts of homophobia not because I had not encountered worst incidents in the years to come, I did but I would still consider this as the most traumatizing one partly because here the victim was an innocent 12-year-old and partly because this was the first time I was confronting my straightness as some privilege. I cannot even manage to imagine the sadistic, sarcastic and sardonic laughter of his classmates, the homophobic slurs that would have been hurled against this 12-year-old and the emotional trauma that he would have suffered consequentially.

I sometimes wonder if homophobia is at all the right term. Once a journalist remarked-"There's a reason it's all homophobia since people are scared of homosexuality" and I couldn't disagree more. What I realized in my 18 years of existence on this planet is that people are not scared. They are not scared of homosexuality, they just resent it, they hate it from their very core. And that's precisely the reason why I wonder if homophobia is the right term at all to use when the mainstream culture even refuses to acknowledge the very existence of sexual minorities; wherein being homosexual is still made to sound like having a disease and where the entire community is dehumanized in the most incomprehensible of ways. Undeniably so, homophobia has become the new normal in India. Indian society by its very virtue seems to be anachronistic. Homosexuality has been stigmatized as just another kind of social pollution to the extent that today it has penetrated in the moral fabric of our society. Even today, homosexuals are viewed with disgust, contempt and cynicism. Our tendency to view everything from regressive lenses can be gauged from the atrocities that were suffered by Indian sprinter, Dutee Chand for coming out about her sexual orientation. It was absolutely devastating to see the hatred she was subjected to for acknowledging her same-sex relationship. What dawned upon me was that we Indians are terribly oblivious people with awry memory. Ours is but a classic case of selective amnesia. All her achievements, the accolades that she earned for country were reduced to a heap of dust. Homosexuality is considered so much of a sin in Indian society that a teenager finds it easy to take his life than coming out about it to his/her parents or heterosexual counterparts for that matter.

There has not been any other group as publicly chided, humiliated or ostracized as LGBT community. The vilification of the queer community made me conscious about the privilege I owned being one of two major acknowledged genders. Here, the problem is not so much about homosexuality

per se but about our ignorance and indifference. Since time immemorial, we have been obsessed with drawing rigid binaries. Highlighting the black-white dichotomy is the ultimate "Nirvana" for us, Indians. To say what Satish Deshpande said about caste, homosexuality is the paradoxical union of over familiar and poorly understood. Our preoccupation with a heteronormative ecosystem has costed thousands of people their lives, their dignity and of course their mental peace. This reminds me of class 7 NCERT Social Science textbook which defines Sex as "The biological state of being male and female" and thus outrightly ignores and marginalizes the possibility of existence of a third gender. As I look back upon it, as a person who strongly feels about sensitivity and social justice, I feel I'd be doing disservice to my truest convictions should I not voice my concerns. I desperately feel the need that school children be sensitized not only about sex education but also sexual education pertaining to one's sexual orientation.

In April 2014, the Supreme court ruled that the rights and freedoms of transgender people in India were protected under the constitution. But it was September 2018 when the SC also decriminalized homosexuality and stroke down Section 377. It was also the first time when I came to know that something called Section 377 also existed in IPC. Even the existence of section 377 was by its very virtue questionable and downright condemnable. Section 377 as I reckon was but a classic example of state sponsored terrorism, the terror that it inflicted in the hearts of 140 million LGBT Indian citizens for years is deeply regretful. The idea that someone could be punished for being something that came to them as naturally as breathing is downright revolting. But "Better late than never". The Supreme Court's decision of upholding constitutional morality over majority morality makes one hopeful about the future of this country. While LGBT have been guaranteed equality under the constitution, legal protection has a limited effect when the common masses continue to be inconsiderate to plight of queer community. We have seen too often, and for too long the cynical use of homophobic slurs that not only assault human dignity but also flagrantly violates the FRs and erodes conscience. The worst part is that it has been internalized to the extent that something as heinous as homophobia has been toned down and normalized. To discuss whether homophobia exists or not is testimony to the fact that it does. A million-dollar question here is "What made this happen?".

All thanks to the Bollywood movies we keep feasting our eyes on. Along with rampant toxic objectification of women, Bollywood is also to be blamed for normalizing homophobia with male leads flagrantly impersonating as eunuchs and transgender individuals. All thanks to your parents and your extended family who interfere in another person's personal space and tries to moral police them. All thanks to your best friend who unapologetically made a homophobic remark on the other day on WhatsApp group and of course, all thanks to you for responding with a big laughter emoji. We are prisoners of our own toxic prejudices which we have harboured within ourselves knowingly or unknowingly for eons. What we fail to recognize is that our humanity begins the moment we identify with each other's pain. The dice has always been rolled against queer community which has been historically marginalized all because some privileged fellow like you or me never bothered to vociferously oppose and call out our parents, aunts and uncles when they mainstreamed their intellectual deficiencies as opinions. This very homophobia is introduced to naïve kids fundamentally with "Pink-Blue" dichotomy. Our own ideological biases manifest when we prefer to gift a doll to a girl and a car to a boy. We need to think of toys, clothes and accessories as gender neutral. Being born as part of majority is something that millions yearn and fight for and that is something we often take for

granted. I strongly feel we all need to fight for idea of India. An India which isn't about tolerating differences but embracing them.

As for LGBT community, I know I can never begin to comprehend how you must have felt when your friend unapologetically made a homophobic joke and how all your peers laughed until their stomachs ached. And I don't want to make the mistake of an assumption. Acknowledging, embracing and celebrating your truth is not a cakewalk. Never has been, never will be. But I'll take the privilege of having you hear me out today.

Dear brave souls, I know we wronged you and we wronged you in the most insidious of ways, all I want to do is to apologize and apologize profusely. As for people who question your love, as someone once said, "Who are we to define love? Let love define us. Let love define us. Let love define us."

Silver Lining of the Coronavirus Outbreak

Krishan Talukdar
BA (H) Political Science 2nd Yr

The Coronavirus pandemic has infected more than 15 million people worldwide and has claimed the life more than half a million people. This pandemic has caused a lot of pain in our hearts and we all hope that it will be over faster than we dare to hope. However, only focusing on the negatives of our current situation doesn't get us anywhere. I am not trying to make light of the pandemic but trying to divert the attention towards the good and beautiful things world has come to see amidst this pandemic, or even because of it. At the time when one third of the global population is under lockdown a few good things have emerged. A number of positive changes have occurred in our habits, lifestyle, culture and surroundings. Amid the self-isolation which many have been forced to accept, here are examples of some positive side-effects which have come from the Coronavirus outbreak:

Earth is healing itself: While we, probably, are all aware of the negative effects of the Coronavirus, it has a rather unexpected side effect: a positive impact on the environment. Since the outbreak began, massive restrictions on human movement have been imposed across the globe to limit the spread of the virus worldwide. One of the main positive impacts of this measure has been a significant drop in levels of air and water pollution in many parts of the world. Most notably this melioration in the nature can be seen in Europe and densely populated countries of Asia e.g. China, India and Japan. For instance, with tourist numbers culled and things like motorboats effectively "grounded", sediment churning and other water pollutants have dropped dramatically. Consequently, water-bodies across the world are cleaner than they have been in living memory. In India, the biggest impact was seen in the mountains of Himalayas. With the stopping of annual 'pilgrimage' to Leh, Ladakh, Spiti valley, and other popular hotspots that many people make in owned or rented cars and two-wheelers, the mountains breathed sigh of relief. In the plains the stopping of effluent discharge into rivers has also brought about a sea-change in the chemical composition of water, resulting in more aquatic life. The lockdown in many of the countries has also ensured that there are fewer cars driving on the roads, and fewer planes in the air. Coupled with a ban on construction, these measures led to dropping of air pollution levels by roughly a quarter over the last 3-4 month. As a result highly polluted cities like Delhi, Beijing, Ji'nan are breathing clean air after years. How we wish that we don't need a pandemic to sustain this level of environment health.

Coronavirus Pandemic is Bringing Families Closer Together: One of the biggest problems of modern times is the disconnect within the most basic social unit of human civilization, the family. Owing to long and stressful working hours, members of a family don't get to spend

enough quality time together. Stopping of all activity and working from home in this pandemic has helped the family members fix that too. Lockdown as a result of Covid-19 pandemic has brought some positive changes in our cultural and social habits with families, especially youngsters, spending more quality time together. Earlier, due to different kinds of economic and academic engagements, it was quite difficult for all family members to spend a week or even a whole day together under one roof. However, now, when all the educational institutions and offices are closed the young and the old members of the families are spending more time together, which is a blessing in disguise. Such frequent interactions help build a connect with each other, contributing to emotional welfare. Further, confinement has helped bring the focus back on to learning new crafts and hobbies, or even upskilling through enrolment in online study programs. It is good to see that now parents got the opportunity to spend quality time with their children. In fact, in this fast-paced world, parents must make space for their kids, and assure them that they care about them and will always be there as pillars of support.

Community spirit: In the 21st century when almost every person is individualistic, Covid-19 strengthened the community spirit, even taking it to a new level. People came out to help each other and were willing to do whatever they could for those in need. It was fantastic to see people not waiting for the state to respond and take the lead in distributing packets of food and bagful of rations to whoever needed it. Community kitchens and restaurants delivered free food to the labors and workers who are unable to return to their villages and spending days and nights under the sky. Power and water companies suspended shut-off notices; landlords gave up on collecting rent; apartment houses offered free lodging to students left stranded when their universities abruptly closed; celebrities, sportsmen and business tycoons donated huge amounts of money for the treatment of the infected people; businessmen and entrepreneurs donated portions of their salary to pay the wages of workers whose work has been halted, and many other things. I am sure by now we all must have watched the videos of numerous people leaning out their balcony and windows, sending their hearts and voices into the outside air even as their bodies are confined to the home.

Rising global solidarity: Amid this global pandemic the need of the hour is a global plan to tackle the socio-economic turmoil the world has been pushed into. Such measures include countries sharing medical equipment, supplies and personnel, dealing with the economic fallout and not erecting trade barriers, as well as sensible global travel guidance. If ever there was a wakeup call for greater global comradery and collective governance, this was the moment. There is a thirst for solidarity not seen since the waning days of World War Two. Humanity requires a common voice and global leadership to defeat the Coronavirus, to build resilience to reduce its secondary risks, and eventually to recover from the fallout. The states must stand ready to react promptly and take any further action that may be required. Global action, solidarity and international cooperation are more than ever necessary to address this pandemic.

Consequently, an extraordinary G20 Leaders' Summit focused on COVID-19 was held where leaders across the globe, including Prime Minister Narendra Modi, participated to discuss strategies to combat the Coronavirus pandemic. Dr Tedros Adhanom Ghebreyesus, Director General of the World Health Organization, addressed Heads of States at this extraordinary G20 Leaders' Summit and told them to come together to confront the defining health crisis of this time; that we are at war with a virus that threatens to tear us apart- if we let it. He welcomed the G20's initiative to find joint solutions and work together by saying that this is a global crisis and it requires a global response. Leaders of the Group of 20 or G20 major economies pledged to infuse over $5 trillion into the global economy, and do "whatever it takes" to minimize the economic and social impact of the Covid-19 pandemic. G-20 leaders said they were also ready to strengthen global financial safety nets. It is also evident that the heads of different states from time to time have come forward and assured their population that they are working closely together to protect human life, restore global economic stability and lay out solid foundations for strong, sustainable, balanced and inclusive growth. Most of the states are expanding their manufacturing capacity to meet the increasing demands for medical supplies and ensure these are made widely available, at an affordable price, on an equitable basis, where they are most needed and as quickly as possible.

DEPARTMENT OF COMPUTER SCIENCE

DEPARTMENT OF MATHEMATICS

DEPARTMENT OF COMMERCE

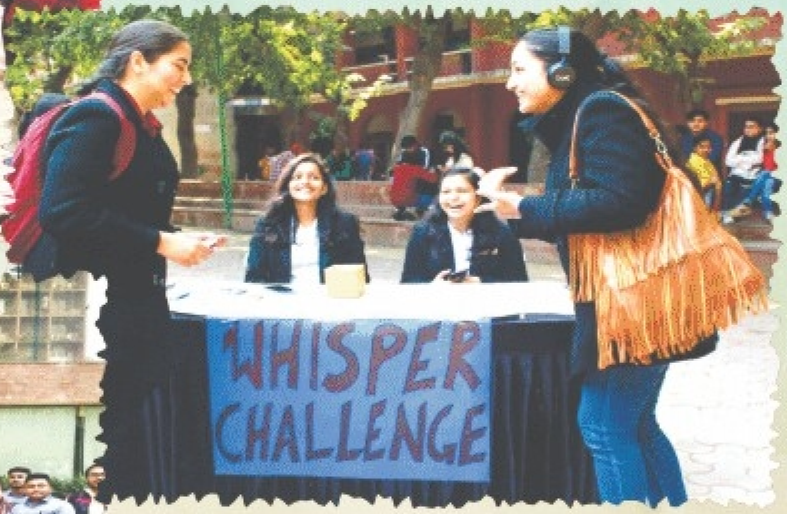

DEPARTMENT OF ZOOLOGY

DEPARTMENT OF BOTANY

DEPARTMENT OF CHEMISTRY

DEPARTMENT OF PHYSICS

DEBSOC

THE PLAYERS

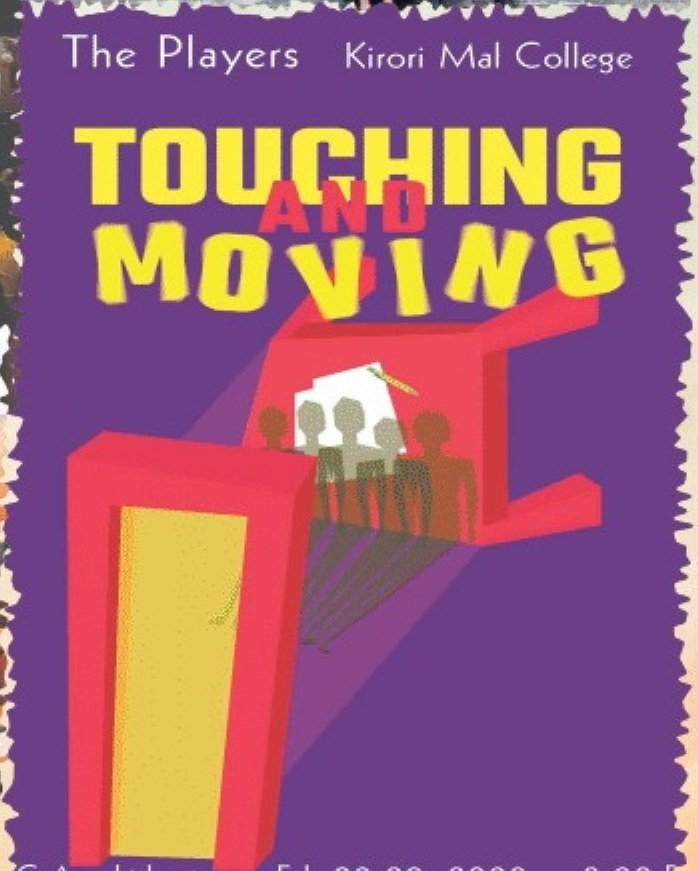

THE MONTAGE

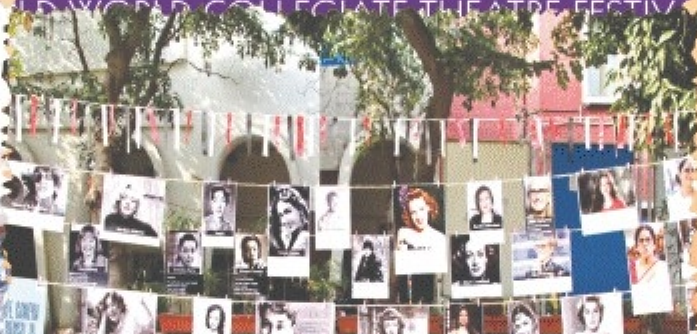

MUSOC - THE MUSIC SOCIETY

SENSATION

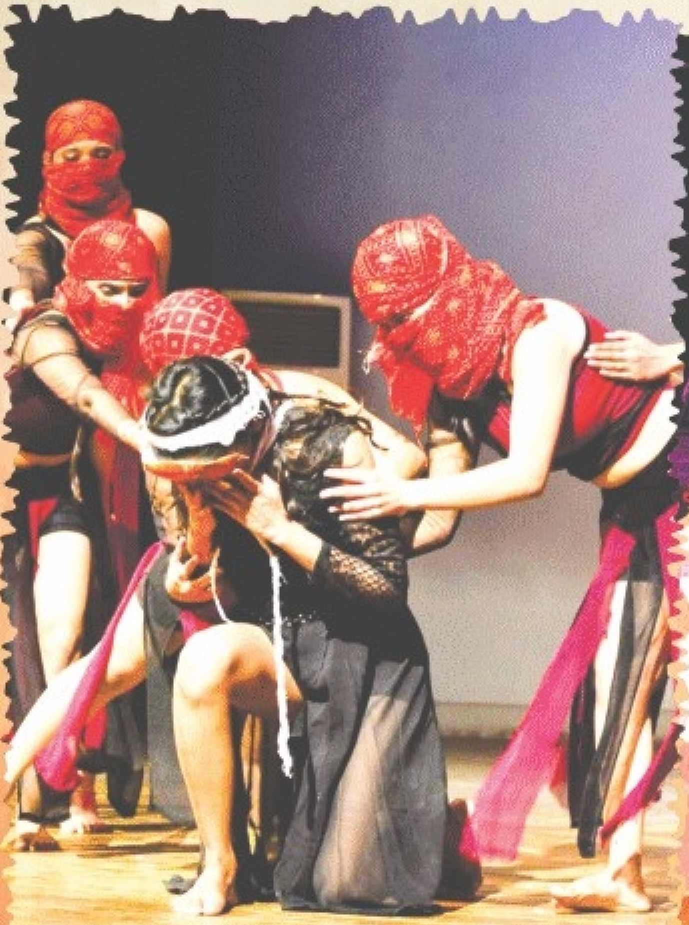

PRAYAS

KARTAVYA

NORTH EAST CELL

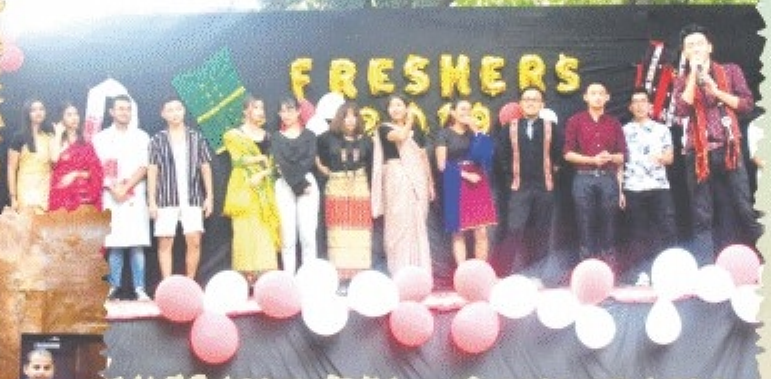

PLACEMENT CELL

संस्कृत–मञ्जरी

विषयानुक्रमणिका

• सम्पादकीयम्	सिंहः, सुभाषकुमारः (डॉ.)	111
• छात्र-सम्पादकीयम्	तिवारी, अभिषेकः	112
• पर्यावरणम्	अक्षितः	113
• वेदेषु पर्यावरण-संरक्षणम्	प्रियंका	114
• संस्कृत-साहित्ये पर्यावरणम्	झा, रोशनकुमारः	117
• अग्निहोत्र-यज्ञे पर्यावरणम्	झा, रोशनकुमारः	118
• पर्यावरण-संरक्षणम्	तिवारी, अभिषेकः	119
• प्रदूषण-समस्या-निराकरणम्	विद्यावती	121
• प्रदूषणस्य समस्या समाधानं च	मुस्कान	122
• विद्यार्थी-जीवनस्य योगः	मुस्कान	124
• संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणस्य महत्वम् एवं तस्याधारे वर्तमाने व्याप्तः समस्यानां निदानः	शर्मा, मुदितः मोहनः	125
• वृक्ष-वनस्पतिसंरक्षणम्	त्रिपाठी, सुधांशुशेखरः	127
• पर्यावरण-संरक्षणम्	गतिकृष्णः, प्रधानः	128
• भौतिकं पर्यावरणम्	कामाक्षी, अंजली	131
• पर्यावरणसन्दर्भे विचाराः	पन्तः, रोहितः	133
• पर्यावरण-प्रदूषणम्	कुमारी, रानी	134
• आयुर्वेदः	संजना	135
• योगस्य महत्त्वम्	पन्तः, नीरजः	136
• सर्वेषाम् औषधं मनसः समाधानं	कुमारः, आशुतोषः	137
• योग-दर्शनम्	तिवारी, मयंकः	138
• योगः कर्मसु कौशलम्	केशरी, सागरः	139
• योगपर्यावरणयोः सम्बन्धः	नौटियालः, चन्द्रमोहनः	140
• पर्यावरण-संरक्षणम्	रंजना	142
• वैदिक-वाङ्मये पर्यावरणम्	पाण्डेयः, प्रणवः	143
• वेदेषु पर्यावरणस्य महत्त्वम्	शर्माः, देवेन्द्रकुमारः	145
• संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणस्य चिन्तनम्	झा, निधिः	146
• वैदिक-वाङ्मये भौगोलिक-स्थितिः	आर्यः, दिव्यांशुः	148

सम्पादकीयम्

सम्प्रति वैज्ञानिक-युगो वर्तते, अकल्पनीया प्रगति विहिता विज्ञानेन। एकस्मिन् पक्षे मानवकल्याणार्थं चमत्कारपूर्णसृजनात्मकशोधैः मानवजीवनं सहजं सरलञ्च कृतमस्ति। तत्रैव द्वितीयपक्षे परमाणु-रासायनिक-जैविकायुधानामाविष्कारं कृत्वा विज्ञानेन संसारः विनाशस्य मुखे स्थापितोऽस्ति। विज्ञानस्यास्य विनाशात्मकविकासेन मानवजीवनं चिन्तास्पदमस्ति।

वर्तमाने प्रगतविज्ञानसमये, मानवमात्रकल्याणस्य स्थाने ''केनास्त्रेण संसारं स्वहस्तगतं कर्तुं शक्नोमीति'' जिज्ञासा प्रयत्नं च वर्तते। तत्र प्रलयस्याशंका अपि भयं न जनयति राजनीतिकानाम्। सर्वत्र सन्त्रासस्य स्थितिरस्ति अस्तित्व-रक्षार्थं संघर्षस्य साम्राज्यं वर्तते। परिणामतः सर्वत्राशान्तिः दुःखञ्च वर्तते। विज्ञानस्य विनाशात्मक-शक्तिविकासेन पर्यावरणस्य जीवनमूल्यानाञ्चाध्ययनस्य परम्परा समाप्ता जाता। रासायनिकशस्त्राणामनुसन्धानेन कीटाणुयुद्धस्य शस्त्राणामनुसन्धानपरम्परया च मानवः स्वमूलोद्घाटने यत्नरतोऽस्ति। मनुष्यः यस्यां शाखायां स्थितोऽस्ति तामेव विज्ञानदुरुपयोगेन छेत्तुं व्यवसितोऽस्ति एवञ्च स्वविनाशं कुर्वन्नस्ति। परमाणुशस्त्राणां परीक्षणं प्रकृतिं तस्याः लक्ष्म्याः सरस्वत्याश्च रूपेभ्यः अपाकृत्य चण्ड्याः रूपं कर्तुं व्यवसितोऽस्ति। अद्य प्रकृतिः परमाणुपरीक्षणैः कुपिता भूत्वा विनाशात्मक-चण्ड्याः रौद्रयाश्च रूपे स्थिताऽस्ति। इदमेवकारणमस्ति यत् शरत्काले वर्षा, वर्षाकाले ग्रीष्मस्य स्थितिरस्ति। अत्र यदि प्रकृतौ विजयस्योत्सुकः मानवः-विभिन्नानामस्त्राणां प्रयोगेण प्रकृतिं दूषयति तत्र प्रकृतिः तस्य विनाशार्थमनेकरोगाणामुत्पत्तौ प्रयत्नशीला वर्तते। परिणामतः कदाचित् इबोला, कदाचित् स्वाइनफ्लू, कदाचित् सॉर्स कदाचित् एड्स तर्हि कदाचित् एंथ्रेक्स कदाचिच्च कोरोना-विषाणुरोगैः मानवजीवनं भयास्पदमस्ति।

उपर्युक्तरोगाणां साम्राज्यं समस्तविश्वे विद्यते। भारते तु न्यूनमेवास्ति परन्त्वन्यदेशेषु तु विकरालरूपे स्थितमस्ति। एतस्यकारणमस्ति यत् भारतवर्षे यत्र-तत्र न्यूनमात्रायामेव स्यात् वैदिकपरम्परानुसारं यज्ञानां प्रकृतिसंरक्षणस्य च परम्परा अस्ति। अस्माकं प्राचीन-महर्षीणां पर्यावरणसंशोधनार्थे वेदेषु यज्ञस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्। इदं वैज्ञानिकतथ्यमस्ति यत् किञ्चिदपि वस्तु न नश्यति केवलं तस्य रूपपरिवर्तनं भवति। वसतीति अनेनैव वस्तु इति कथ्यते। अतः यज्ञे आहूतसामग्रीणां सुगन्धिभिः वायुप्रदूषणं विनश्यति। यदा वायुः शुद्धा भविष्यति तदा न कोऽपि रोगो विश्वस्मिन्नवशिष्यिष्यते।

उपर्युक्तसमास्यानां निदानं तदैव सम्भवमस्ति यदा शिक्षायां पर्यावरणशिक्षायाः समावेशो भविष्यति। तत्र न केवलं शिक्षा कर्गल-पृष्ठेष्वेव स्थिता भवेत्; अपितु सा व्यावहारिक्यपि भवितव्या अर्थात् शिक्षार्थी तां शिक्षां

स्वजीवने आचरेत् सर्वत्र च वृक्षारोपणं भवितव्यम्। यज्ञानां व्यवस्था भवितव्या। सर्वत्र जलप्रदूषणे, शब्दप्रदूषणे नियन्त्रणं भवितव्यम्। अत्र सर्वकारस्य प्रयत्नेन तदैव किञ्चिदपि भविष्यति यदा जनः स्वयमेव जागरुको भूत्वा स्वतः एवैतस्य मानवकल्याणनियमस्य पालने प्रयत्नशीलो भविष्यति तदैव संसारस्य कल्याणं भविष्यति।

अतोऽस्य निहितार्थोऽस्ति यत् पुनः वेदानां मार्गमनुसरणे मानवमात्रस्य महोत्सः वर्तते। दिल्लीविश्वविद्यालयस्य प्रतिष्ठितकिरोड़ीमल-महाविद्यालयस्य वार्षिकपत्रिका-''आउटलुक-2020'' इत्यस्यांके पर्यावरणसंरक्षणमिति मूलविषयेण सह योगायुर्वेदौ चानुसङ्गिकविषयरूपे प्रस्तुतौ स्तः।

अस्मिन्नतिप्रतीक्षितांके विद्यार्थिनां महनीयसार्थकप्रयासानां पुनः-पुनः सार्थकप्रशंसा करणीया अत्र च छात्राः श्लाघ्याः। यैः विभिन्नबिन्दुषु प्रकाशं सम्पात्य पाश्चात्यीकरणस्य स्थाने स्वप्राकृतिक-संस्कृतेः संस्तुतिः प्रस्तुता। पत्रिकायाः प्रत्येकलेखः उत्तमयत्नयुतोऽस्ति।

पूर्णविश्वासोऽस्ति यदङ्कोऽयं पाठकानां समक्षं स्वोपयोगितां साधयिष्यति।

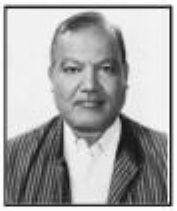

सूचनार्थम् : संस्कृत-मञ्जरीपत्रिकायां प्रयुक्तचित्राणामुपयोगो विद्यार्थिभिरिण्टरनेट-माध्यमेन विहितोऽस्ति। पत्रिकायामिण्टरनेटमाध्यमेन चित्राणामुपयोगः शोभाप्रदर्शनार्थं न प्रकाशकस्य स्वामित्वम्।

सिंहः, सुभाषकुमारः (डॉ.)
सहायक-आचार्यः

छात्र-सम्पादकीयम्

वार्षिकी-पत्रिका-नवदृष्ट्यायाः 2020-तमवर्षान्तर्गतस्य 66-तमे संस्करणे कार्यं कुर्वन् अतिप्रसन्नतामनुभवामि। प्रतिवर्षमिव अस्मिन्नपि वर्षे किरोड़ीमलमहाविद्यालयस्य संस्कृतविभागेन विभिन्नछात्रलेखानानां संकलनं प्रस्तुतपत्रिकायाः माध्यमेन प्रकाशनं कारितम्। पत्रिकायामस्यां संस्कृतविभागस्य छात्रैः विभिन्नविषयलेखाः कविताश्च संगृहीतः।

छात्राः स्वज्ञानेन अनुभवेन च स्वविचारान् लेखमाध्यमेन समाजे स्वजीवने च एकस्याः ''नवदृष्ट्यायाः'' स्थापनं कुर्वन्ति येन समाजः तान् विचारान् ज्ञात्वा शोभनं भविष्यस्य कल्पनां करोति।

अन्ततो गत्वा अहं स्वशिक्षकानां विशेषतः परामर्शदातुः डॉ.सुभाषमहोदयस्य, डॉ.रूपेशवर्यस्य च आभारं ज्ञापयामि, यौ एतत् कार्यं मह्यं दत्तवन्तौ। भवतोः कुशल-मार्गदर्शनेन कार्यमिदं साफल्यं प्राप्तम्।

धन्यवादाः

तिवारी, अभिषेकः
संस्कृतविज्ञकलास्नातकतृतीयवर्षः
छात्रसम्पादकः

पर्यावरणम्

वयं वायुजलमृदाभिः आवृत्ते वातावरणे निवसामः। एतदेव वातावरणं पर्यावरणं कथ्यते। पर्यावरणेनैव वयं जीवनोपयोगिवस्तूनि प्राप्नुमः। जलं वायुश्च जीवने महत्वपूर्णो स्तः। साम्प्रतं शुद्ध-पेय-जलस्य समस्या वर्तते। अधुना वायुरपि शुद्धं नास्ति। एवमेव प्रदूषित-पर्यावरणेन विविधाः रोगाः जायन्ते। पर्यावरणस्य रक्षायाः अत्यावश्यकता वर्तते। प्रदूषणस्य अनेकानि कारणानि सन्ति। औद्योगिकापशिष्ट-पदार्थ-उच्चध्वनियान-धूम्रादयः प्रमुखानि कारणानि सन्ति। पर्यावरणरक्षायै वृक्षाः रोपणीयाः। वयं नदीषु तडागेषु च दूषितं जलं न पतामः। तैलरहित-वाहनानां प्रयोगः करणीयः। जनाः तरुणां रोपणम् अभिरक्षणं च कुर्युः।

अस्मान् परितः यानि पञ्चमहाभूतानि सन्ति तेषां समवायः एव परिसरः अथवा पर्यावरणम् इति पदेन व्यवह्रीयते। इत्युक्ते मनुष्यो यत्र निवसति, यत् खादति, यत् वस्त्रं धारयति, यज्जलं पिबति यस्य पवनस्य सेवनं करोति, तत्सर्वं पर्यावरणम् इति शब्देनाभिधीयते। अधुना पर्यावरणस्य समस्या न केवलं भारतस्य अपितु समस्त-विश्वस्य समस्या वर्तते। यज्जलं या च वायुः अद्य उपलभ्यते, तत्सर्वा मलिना दूषिता च दृश्यते यथा भारतस्य राजधानी देहल्याम्। भारतदेशस्य राजधानी विश्वस्य अतिविशालासु नगरीषु अन्यतमा इति गण्यते। इत्यपि विश्रुता इयं नगरी प्राचीनकाले हस्तिनापुरमिति ख्याता आसीत्। इन्द्रसभायामपि सभाजितानां भरतकुलोत्पन्नानां महीपालानां राजधानी अद्यतनीया एव। पर्यावरणं मुगलवंशीयानां चक्रवर्तिनां तथा आङ्ग्लानामपि अधिकारिणां केन्द्रभूमिर्भूत्वा अधुनापि भारतीयगणराज्यस्य राजधानीपदमलङ्करोति।

पर्यावरणे प्रदूषणम्

साम्प्रतिके काले निखिलेऽस्मिन् जगति मानवसभ्याताया: समक्षमनेके समस्यात्मकाः दुष्प्रभावाः समुज्जृम्भते। पर्यावरणस्य प्रदूषणमपि तथैव मुख्या समस्या मानवसभ्यतायै परिदृश्यते। अधुना औद्योगिकप्रसारेण न केवलं जलं, वायुः, फलमन्नादिकं च प्रदूषितमपितु समग्रमपि भूमण्डलं दूषितं भवति। प्रतिदिनं परमाणुसंयंत्राणां रेडियोधर्मिता सर्वत्र प्रसरति, विषाक्तगैसीयतत्वानां प्रसारेण, बृहदाकारौद्यौगिकयंत्राणामपशोषितैः पदार्थैः, विविधानां यानादीनां धूमपुञ्जैश्च तथैवान्यैः संयंत्रादिभिः सर्वत्रवातावरणं भूलोकस्य वायुमण्डलं प्रदूषितं भवतीति वृत्तं दृग्गोचरं भवति। अस्मिन् वैज्ञानिके युगेऽपि यदि पर्यावरणप्रदूषणस्य विरोधोपायः समुचितो न स्यात्तदा कस्मिन् युगे भविष्यति।

पर्यावरणप्रदूषणस्य प्रभावाद् जगति रोगादीनां वृद्धिः सञ्जाता, अन्नपानादिषु रेडियोधर्मिपदार्थानां सम्मिश्रणात् सर्वत्र वायुमण्डलं तु दूषितं भवत्येव, तस्माद् आनुवंशिकप्रभावोऽपि भवति। अनेन भविष्यत्काले मानवसभ्यतायाः विनाशोऽवश्यम्भावीति निश्चप्रचम्।

अक्षितः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठायाः प्रथमवर्षीयः

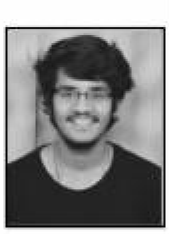

वेदेषु पर्यावरण-संरक्षणम्

पर्यावरणसंरक्षणे वेदानां योगदानम् : परि + आवरण इत्यनयोः पदयोर्थः यः परितः अथवा विस्तृतः दृश्यते तन्नाम पर्यावरणम्। अत्र सजीवनिर्जीवयोः सम्मेलनं भवति। ये भारतीयाः मनीषिणः सन्ति ते तु द्रष्टारः सन्ति। त्रैकालिकी यद् अवस्था भवति ते सर्वं जानन्ति। भविष्ये पर्यावरणस्य संरक्षणं तटस्थरूपेण न सम्भविष्यन्ति अतः वेदमन्त्रेषु पर्यावरणस्य महत्वं तद् विषयस्य उपयोगी तत्वानां विवेचनम् एवं लाभानां विषये वर्णिताः सन्ति। यथा अथर्ववेदे–

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्या पृथ्वी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहयस्मि स आत्मानं निदधैद्यावपृथिभ्यां गोपीथाय॥

* **वेदेषु भू-संरक्षणम् :** प्राणिनः पृथिव्यां निवसन्ति भोगं कुर्वन्ति च। तद् विषयमधिकृत्य भारतीयाः ऋषयः पृथ्वीमातृसदृशः। अतः कथयन्ति - **''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''** वयं पुत्राः सन्ति भूमिः माता। सम्पूर्णे पृथिवीसूक्ते पृथिव्याः वन्दनां ऋषयः कुर्वन्ति। मानवीयसम्बन्धविषये, आत्मीयतासम्बन्धविषये, संवेदनायाः विषये, समृद्धिविषये, कर्तव्यतानां विषये च तत्र संदेशः प्राप्नुमः।

यतते भूमि विस्वनामि क्षिप्तं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदमर्पिपम्॥

अन्यच्च - **उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्य सन्तु पृथिवी प्रसूताः।**
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।

* **वेदेषु जल-संरक्षणम् :** जल-संरक्षणविषये वयं सम्यक्तया जानीमः।

जले विष्णुः थले विष्णुः इत्यादयः कथनं जलस्य महत्वं प्रकटीकरोति। वेदेष्वपि वरुण-सूक्ते तद् स्तुतिः क्रियते-

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्
वेद नावः समुद्रियः॥

इति उपरोक्त विषयमधिकृत्य कथने समर्थः भवामः यद् पर्यावरण सन्तुलने वयम् अग्रे न गच्छामः तद् तु पर्यावरणमेव अस्माकं सन्तुलनं वैषम्यरूपे परिवर्तनं करिष्यति।

ऋषिः मेधातिथिः काण्वः उक्तवान् -

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये देवा भजत वाजिनः॥

भो मानवाः अमृतसदृशः एवं गुणकारी जलस्य सदुपयोगं करोतु। मानवानां स्वास्थ्याभिवर्धने शक्तिप्रदाने च उपयोगी एवम् अन्नादि

आरभ्य वनस्पतिपर्यन्तं जलस्य किदृग् महत्वम् इति स्पष्टमेव। ऋग्वेदे शक्तिप्रदायकजलस्य उपमा मातृसदृशा क्रियते–

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
अपामहं दिव्यानामपा स्त्रोतस्यानाम् अपामहं प्रणेजनेऽज्वा भवथ वाजिनः।

यजुर्वेदे जलप्रदूषिकरणं निषिद्धं वर्तते - **मा आपो हिंसीः।** जलं नष्टं न करणीयम्। कथनस्य तात्पर्य जलस्य शुद्धिकरणं तथा च यथोचितम् उपयोगविषये निर्देशनं क्रियते।

ऋग्वेदे जलाशयानां रक्षणार्थं तटेषु ये वृक्षाः सन्ति तेषां कर्तनं न भवतु - **यदर्णसं मोपथा वृक्षम्।** वैदिककालेऽपि जल-संरक्षणस्य प्रथाः प्रचलिताः दरीदृश्यते। वेदेषु जल-संरक्षणस्योपलब्धिः कथं करणीयम् इति विवेचितमस्ति।

* **वायु-संरक्षणम्** - जीवनयापनार्थं वयं वायु-ग्रहणं कुर्मः तन्नाम वेदेषु प्राणवायुः कथ्यते। वेदानुसारे वायुशुद्धता प्रत्येकमानवस्य कर्तव्यमस्ति। ये मानवाः वायुप्रदूषणं कुर्वन्ति ते अपराधिनः अक्षम्यः च भवन्ति। अथर्ववेदे स्तुतिः क्रियते - ये कारकाः वायु-प्रदूषणं कुर्वन्ति ते नष्टाः भवन्तु।

वायो यत ते तपस्तेन तं प्रतितप
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥

हे पवनः यद् भवतः प्रतापं तद् प्रतापे भवान् प्रतापी भवतु।

अन्यच्च - **वायो यत ते तेजस्तेन तमतेजस कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।**

* **वेदेषु अग्निः संरक्षणम् :** वेदेषु पर्यावरणे संरक्षणे निर्माणे च आधारभूतशक्तिरूपे अग्नितत्वस्य स्तुतिः सञ्जातः। मधुच्छंदसा ऋषिणा ऋग्वेदस्य प्रथमपदे अग्निमीळे इति उक्तम्। वेदेषु अग्नेः त्रयः रूपाः दृश्यन्ते पार्थिवः अन्तरिक्षस्थानीयः एवं द्यौस्थानीयः। वेदेषु सौरौजेति पर्यावरणसंरक्षणे महत्वपूर्णं घटकं बोधयति। सौर-ऊर्जाः तस्याः कान्तिः वृद्धिद्योतकः इति।

सूर्येः यतेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यचम्।

सर्वेषां पालकः, उत्पादकः च एवं प्रजानां संरक्षणे अस्य कीर्तिः दृश्यते। प्रातःकाले सूर्योपासनेन रोगनिवारणं शक्तिवर्धनं च भवति।

उद्यन्नद्य मित्रमहम् आरोहन्नुतरा दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

वर्तमानपर्यावरणसंकटे ऊर्जासंकटसमाधानार्थं विविधाः नवप्रयोगाः सञ्जाताः। अस्मिन् परिप्रेक्ष्ये वेदेषु वर्णितः सौरऊर्जायाः महत्वं निश्चितरूपेण ग्रहणीयम्॥

* **वनस्पति-संरक्षणम्** - भारतभूमौ सदैव गुणकारीवनस्पतयः उपलभ्यन्ते। वैदिक ऋषिणां वनस्पतयः संयोज्य-मानवानां मेलनं पूर्णरूपेण क्रियते। सम्पूर्ण-वनसम्पदा, वनस्पतिजगतः, वृक्षाणां पालनम् एवं पूजनमपि आवश्यकं वर्तते इति वेदे निर्देशं क्रियते।

यजुर्वेदे कुत्सः ऋषिः कथयति–

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो वनानां पतये नमः
वृक्षाणां पतये नमः औषधीनां पतये नमः
वृक्षाणां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः॥

ऋषयः नैरन्तर्येण समस्त-वनस्पतीनां संरक्षणाय संवर्धनाय च एवं सदुपयोगाय तत्पराः भवन्ति। वनस्पतयः जनानां कृते

लाभदायका: एवं जीवनयापने अतिसहयोगरूपेण सहयोगं ददति। एतदर्थम् अथर्ववेदे ऋषय: कथयन्ति–

तिस्त्रो दिवस्त्रिः पृथिवीः षडेमाः प्रदिशः पृथक्
त्वायाहं सर्वभूतानि पश्यामि देव्योषथे॥

अन्यच्च - **यत्सिन्धौ यद्सिवयां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः यत्पर्वतेषु भेषजम्॥**

*** वेदेषु यज्ञेन पर्यावरण-संरक्षणम्** - यजुर्वेद: पूर्णत: यज्ञपरक:। संसारस्य समस्तप्रक्रिया: यज्ञेन सम्पादनीया:। पर्यावरणस्य संरक्षणं यज्ञेन सम्भवति। यज्ञात् सुगन्धितद्रव्यानां प्रसरणम् अन्तरिक्षे भवति। सर्वत्र व्याप्त: भवति च तद्माध्यमेन दूषणवायु: विनाशं प्राप्स्यति एवं सर्वत्र स्वच्छवातावरणस्य प्रादुर्भाव: भवति।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमये स्वाहा
अपहताऽसुरा रक्षासि वेदिषदः॥

समस्त-पदार्थानां परिवर्तनं वायुमाध्यमेन सम्भवति। प्रकृतौ व्याप्त-गुणानां रक्षणं भवति। छान्दोग्योपनिषदि - पुरुषो वाव यज्ञ:। पर्यावरणसन्तुलने वेदैकादशतत्वानां संयुक्तरूपेण यज्ञेन हविषा दानेन निर्देशनं क्रियते -

यो देवाः पृथिव्यामेकादश स्थते देवासो हविरिदं जुषध्वम्॥
अन्यच्च - **कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्।**

वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु॥

निष्कर्ष: - उपरोक्तविषयेषु वेदेषु केन-केन माध्यमेन पर्यावरणसंरक्षणं सम्भवति कथं करणीयं च इति निर्दिष्टम्। तथापि पौन:पुन्येन -

पूषा विष्णुर्हवनं सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवीहवम्।

प्रियंका
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीया

निर्दिष्ट-ग्रन्थानां सूची :

1. ऋग्वेद: 8/54/4
2. छान्दोग्योपनिषद् 3/14
3. अथर्ववेद: 19/4/27/13
4. यजुर्वेद: 18/9

संस्कृत-साहित्ये पर्यावरणम्

परित: आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्, पर्यावृत्तिः पर्यावरणम्। अनया व्युत्पत्त्या पर्यावरण शब्दो निष्पद्यते। ये मानवं परित: आच्छादयन्ति मानव-जीवनं च प्रभावयन्ति ते पर्यावरण शब्देन गृह्यन्ते।

पर्यावरणसमस्या:

अद्यत्वे सकलमपि विश्वं पर्यावरणसमस्याभि: व्यापद्यते, सर्वत्रैव ध्वनिप्रदूषणं, जलप्रदूषणं, वायुप्रदूषणं - वैश्विकतापनं ग्लोबलवार्मिंग-इति सदृशपर्यावरणसमस्या: दृश्यन्ते, किन्तु इदानीमपि मानवा: पर्यावरणं प्रति न बद्धसंकल्पा: येनैषा विकटसमस्या अहर्निशमभिवर्धमाना दृश्यन्ते। एतेषां पर्यावरणसमस्यानां नाशाय एव वेदेषु बहुविधमुक्तं वर्तते।

वेदोक्तानि प्रमाणानि

धर्मजिज्ञासामानानां प्रमाणं परमं श्रुति: उपदिशति **''वनस्पतिवनमास्थापयध्वम्''** अथापि **''नाप्सु मूत्र-पुरीषं कुर्यान्ननिष्ठिवेत्''** इत्यादि वचनै: मानवस्य पर्यावरणकर्तव्यमेव बोध्यते। अथापि अथर्ववेद अपि निर्दिश्यते पर्यावरणसंघटकतत्वेषु सत्वत्रयं प्रमुखं वर्तते–

''त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधय: तन्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि॥''

प्राचीनकाले राजानोऽपि प्रासादेषु उद्यानं नियोजयन्ति स्म। शतपथब्राह्मणे वृक्षा: शिवौषधिरूपेण वर्तन्ते। वृक्षा: कार्बन डाई-ऑक्साइड (CO^2) रूपं विषं पिबन्ति अमृतरूपं प्राणवायुं (Oxyzen-O^2) वितरन्ति।

''ओषधयो वै: पशुपति:–(शतपथब्राह्मण)''
''नमो वृक्षेभ्य: हरिकेशेभ्य:। वनानां पतये नम:। ओषधीनां पतये नम:। (यजु.)''

अत्र सर्वत्रैव वृक्षा: वनस्पतय: छिद्यन्ते किन्तु संस्कृतवाङ्मये -
अभिज्ञानशाकुन्तले अपि कालिदासो पर्यावरणं प्रति निर्दिशति–

''पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्, दशपुत्रसमोद्रुम:''

इति उदात्तभावनया वृक्षवनस्पतीन् पुत्रमिव संरक्षणाय प्रेरयते। अथवा किमधिकं प्रख्यापनेन सकलमपि यज्ञविज्ञानं पर्यावरण-पोषकमेव अर्थात् वातावरणस्य शुद्धिकरणाय अस्माकं पूर्वजा: यज्ञानामनुष्ठानं कुर्वन्ति स्म।

उक्तं च - **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म:''।**

अत: उक्त-ऋषीणां पथ: अस्माभिरपि अनुसरणीयं येन अतिवृष्टि:, अनावृष्टि:, मूषिका इत्यादि हानय: न भविष्यन्ति। अस्माकं सर्वेषां समीपं यद्यपि प्रदूषणं भवति तद्दूरीकर्तुं प्रयतितव्यम्। तदानीमेव अस्माकं राष्ट्रं वयं च स्वस्थ-जीवनं यापयिष्याम:।

झा, रोशनकुमार:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीय:

अग्निहोत्र-यज्ञे पर्यावरणम्

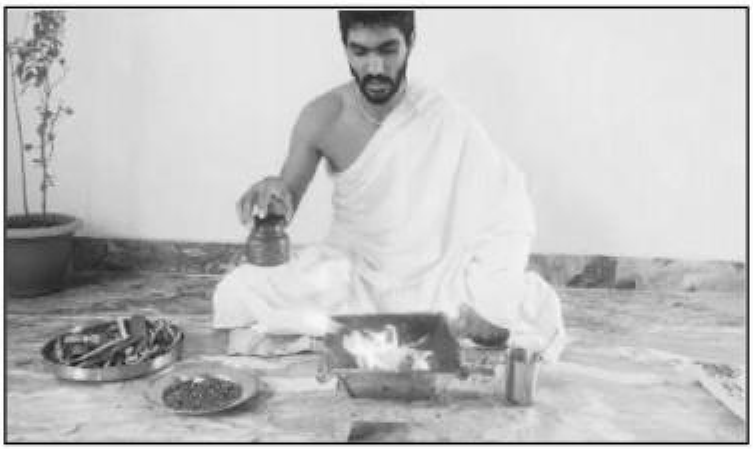

अद्यत्वे यज्ञोऽथवाग्निहोत्रं नाम न केवलं धार्मिककर्मकाण्डमात्रं परिदृश्यतेऽधुना अपितु शोध-विषयीभूत: विषयो जात:। अमेरिकादेशे यज्ञविषये शोधा: जाता:। प्रायोगिकै: परीक्षणै: स्यात्जातं यत् वृष्ट्या कारणरूपे प्राणवायो: शोधने, पर्यावरण-संतुलने, रोगनिवारणाय च यज्ञस्य मुख्यरूपेण भूमिका वर्तते।

चेचकनाम् इति रोगस्य ओषधि-आविष्कारका:-''डॉ. डैकिकन'' महोदयस्य कथनमस्ति-''घृतदाहने रोगस्य कीटाणव: म्रियन्ते''। फ्रांस-देशस्य ''प्रो. द्रिलविर्ट:'' वदति यत्-''ज्वलन्त्याम् अग्नौ शर्कराक्षेपणे वायो: शोधनं भवति'', अनेन टी.बी., चेचक, हैजादय: रोगा: सद्य: एव महत्तरां दूरीभवन्ति।

महर्षिमनुना उच्यते यत् प्रास्ताहूति: सम्यत्रादित्यमुपत्तिष्ठते। आदित्यात् जायते वृष्टि: वृष्टेरन्नं तत: प्रजा:। अद्य अत्यधिकं धूमपानं, अधिकाधिकं पेट्रोलियम् इत्यादिपदार्थानां प्रयोगेण वर्धन्तं प्रदूषणम्, विषयुक्ताश्च वायव: च चिन्ता यस्य प्रतिकारो वर्तते यज्ञ:।

सुप्रसिद्ध: वैज्ञानिक: ''डॉ. स्वामि-सत्यप्रकाशमहोदयेन अपि उक्तं च यत्-यज्ञे ओजोन-फारमेल्डीहाइडेत्यादय: स्वास्थ्यानुकूला वायवोऽपि उत्पाद्यन्ते। ओजोननाम्न: वायु: ''आक्सीजन'' इत्यस्मादपि स्थास्थ्यवर्द्धक: शरीरार्थं शुद्धं च। अयं ठोसरूपेण प्राय: समुद्रतटे प्राप्यते। वयं स्व-निजेषु यज्ञेरेवप्राप्तुं शक्नुम:।

अस्माकं प्राचीना: मुनयोऽपि वैज्ञानिकस्वरूपेणैव शोधं कृत्वा समिधायाश्च चयनं कृतवन्त: यथा-वटवृक्ष:, पीपल:, विल्व:, पलाश:, शमी:, अशोक:, पारिजात:, मौलश्री: इत्यादिवृक्षाणां समिधानां घृतसहितयज्ञे विधानमासीत् य: अद्य विज्ञानमतानुसारी एव विद्यते। यतोहि यज्ञोद्देश्य: वर्तते पर्यावरणशोधनं सन्तुलनं च।

यज्ञविज्ञानस्य मते वर्तते यत् अग्नौ क्षिप्तपदार्थ: स्थूलरूपात् सूक्ष्मं भवति। अत: याज्ञिकैरपि अग्निं धूरसि इति अकथयत्। अयमेव वैज्ञानिकसिद्धान्त: यथा अणो: सूक्ष्मात् परमाणु: परमाणो: सूक्ष्मतम: इलेक्ट्रान् वर्तते।

यज्ञे अयं सिद्धान्त: अनवरत् एकीभूत्वा कार्यं करोति। यज्ञस्थापितसमिधा: अग्निना विघटितं भूत्वा कार्यं कुर्वन्ति, तत्रैव अपर: सूक्ष्मपदार्थोऽपि महत्क्रियाशीलतां प्रभावीप्राप्य विस्तृतक्षेत्रं प्रभवति। यदि चमसमात्रं घृतम् एको जन: खादति चेत् स एव लाभान्वितं भविष्यति। किन्तु तदेव यज्ञे आहुत: घृत: विभिन्नजनान् लाभं प्रददाति, अनेनेव कारणेन अस्माकं जीवने यज्ञस्य बहु-महत्त्वं भवति। उक्तं च -

''यज्ञो वै: श्रेष्ठतम: कर्म:'' इति।

झा, रोशनकुमार:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीय:

पर्यावरण-संरक्षणम्

''वाय्वाकाश-जलादीनां प्रदूषण निवारणम्।
संरक्षणं च भूम्यादेः, पर्यावरण-रक्षणम्॥''

यत् परितः आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्। वायुमण्डलं जलमण्डलं भूमण्डलं च जगत् आच्छादयति, अतः पर्यावरण-शब्देन मृत्तिका, जलं, वायुः, प्रकाशः, आकाशश्च गृह्यन्ते। यद् एतान् दूषयति, तत् पर्यावरण-दूषकं कथ्यते।

मुख्यानि प्रदूषणानि सन्ति–1. वायु-प्रदूषणम् 2. जल-प्रदूषणम् 3. भूमि-प्रदूषणम् 4. ध्वनि-प्रदूषणम्।

वायुमण्डले विविधाः गैसाः विशेषानुपाततः सन्ति। औद्योगिकीकरणेन गैसानामनुपाताः विनाश्यन्ते, अतः वायु-प्रदूषणं भवति। वायु-प्रदूषण-निराकरणार्थम् एते उपायाः करणीयाः। धूम्रत्यागं पराणां वाहनानां न्यूनता विधेया। वृक्षाणां छेदने निरोधः स्यात्। वृक्षारोपणं विधेयम्। परमाणु-विस्फोटे प्रतिबन्धः स्यात्।

अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरण-संघटक-तत्त्वेषु तत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते। तानि सन्ति आपः (जलम्), वाताः (वायुः), ओषधयः (वनस्पतयः) च। एतानि पर्यावरणं निर्मापयन्ति।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे,
पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः
तान्येकस्मिन् भुवन् आर्पितानि॥

अथर्ववेदः - 18, 1, 17

वायुः जीवनस्याधारभूतः। अतस्तस्य संरक्षम् आवश्यकम्। उक्तं च–

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षयः। अथर्ववेदात्

तडाग-नद्यादीनां जले मल-मूत्रादित्यागेन, यन्त्रालयादीनाम् अपशिष्टस्य प्रवाहेण च प्रदूष्यते। प्रदूषित-जलं पानेन पाण्डुज्वरादि-रोगाः जायन्ते, पशवो म्रियन्ते। अतः तडाग-नद्यादिषु मलमूत्रादिकमन्यद् अपशिष्टं च न प्रवाह्यम्।

जल-जीवनम् अमृततुल्यं भेषजं रोगनाशकं चास्ति। अतस्तस्य संरक्षणं परमावश्यकं वर्तते। जलं सर्वरोग-प्रशमनं हृदरोगनाशकं चास्ति। जलं शक्तिवर्धकं रसायनं चास्ति।

मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गंगातीरे करोति यः।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि॥ (पद्मपुराणात्)

अप्सु-अन्तर्-अमृतम्, अप्सु भेषजम्–ऋग्वेद

यन्त्रालयादीनाम् अपशिष्टस्य प्रक्षेपणेन भूमेः उर्वराशक्तिः क्षीयते, अतः खाद्यान्नं प्रचुरं न भवति। भूरक्षणार्थम् औद्योगिकम् अपशिष्टम् अन्यत्र क्षेप्यम्। वेदादिषु द्यावा-पृथिव्योः संरक्षणस्य महती आवश्यकता निर्दिश्यते। द्यावा-भूमी मातृ-पितृवद् वर्तन्ते। तयोः संरक्षणं सर्वेषां कर्तव्यम्। भूमिः सस्य-संपदां प्रददाति, अग्निः लोहतत्त्वं ददाति, वनस्पतयश्च प्राणशक्तिं ददाति। पृथिवीं दिवं

च न दूषय। उक्तं च -

माता भूमि पूत्रोऽहं पृथिव्याः
पृथिवीं दृहं, पृथिवीं मा हिंसीः।–यजुर्वेदात्

वृक्षाः मानवं जीवनशक्तिं प्रददति, प्रदूषणं च नाशयन्ति। ऋग्वेदे कथ्यते यद् वृक्षारोपणम् अवश्यं कार्यम्। एते प्रदूषणं निवारयन्ति, प्राणवायुं च ददति, जलस्रोतांसि च रक्षन्ति। उक्तं च -

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्॥
प्राणो वै वनस्पतिः॥ ऋग्वेदात्

महाकाव्येषुपर्यावरणं दृश्यम्

महाकाव्येषु नाटकेषु च बहु कवयः पर्यावरणस्य प्रदर्शयन्, परन्तु कविकुलगुरुकालिदासः स्वस्य रचनायां मध्ये प्रकृत्तस्य मनोरं चित्रं दृष्टवान्। कविः कालिदासस्य कृतिषु अभिज्ञानशाकुन्तलादि-नाटकेषु कुमारसंभवादि-महाकाव्येषुश्च मध्ये पर्यावरणस्य विविध-दृश्यं प्रदर्शयन् यथा–

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं, निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयै, र्महातपः साक्ष्यइव स्थिताः क्षपाः॥

– (कुमारसंभवम्)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि, श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखातपः।
भूयात्कुशेशयर जोमृदुरेणुरस्याः, शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः॥

अतएव संस्कृतस्य विपुलसाहित्ये पर्यावरण-मनोहरं दृश्यं रक्षणार्थं च बहुविधं वर्णनं प्राप्यते।

तिवारी, अभिषेकः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठातृतीयवर्षीयः

वृक्षाः

वने वने निवसन्तो वृक्षाः।
वनं वनं रचयन्ति वृक्षाः।
शाखादोलासीना विहगाः।
तैः किमपि कूजन्ति वृक्षाः।
पिबन्ति पवनं जलं सन्ततम्।
साधुजना इव सर्वे वृक्षाः।
स्पृशन्ति पादैः पातालं च।
नभः शिरस्सु वहन्ति वृक्षाः।
पयोदर्पणे स्वप्रतिबिम्बम्।
कौतुकेन पश्यन्ति वृक्षाः।
प्रसार्य स्वच्छायासंस्तरणम्।
कुर्वन्ति सत्कारं वृक्षाः।

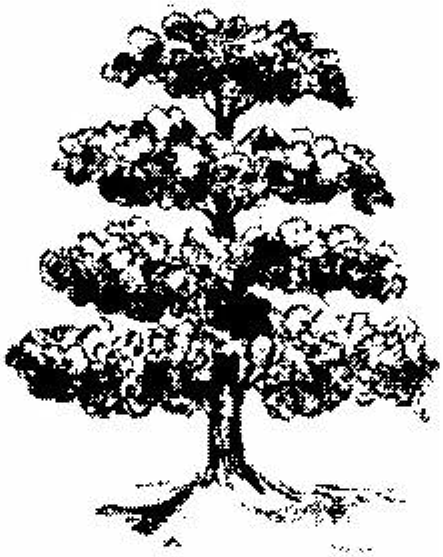

प्रदूषण-समस्या-निराकरणम्

किं पर्यावरणम् - पर्यावृत्तिः पर्यावरणं यत् परितः आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्। ये मानवं परितः आच्छादयन्ति, मानव-जीवनं च प्रभावयन्ति, ते पर्यावरण-शब्देन गृह्यन्ते। तेषु वायुमण्डलं, स्थलमण्डलं, जलमण्डलं तथा रासायनिक-तत्त्वानां च संग्रहो वर्तते।

पर्यावरण-प्रदूषणं-मानवः स्वक्रियाकलापेन, अवशिष्ट-पदार्थानाम् ऊर्जायाश्च विमोचनेन यत् प्राकृतिकं संतुलनं दूषयति, तत् प्रदूषणम् इति निगद्यते।

मुख्यप्रदूषणानि सन्ति–वायुप्रदूषणम्, भूमिप्रदूषणम्, ध्वनिप्रदूषणम्, रेडियो-धर्मीप्रदूषणं च।

पर्यावरण-विषयकं भारतीय-चिन्तनम्

संस्कृत-साहित्ये पर्यावरण-संरक्षण-विषयकं पर्याप्तं चिन्तनम् उपलभ्यते। वेदेषु, स्मृतिषु, पुराणग्रन्थेषु च पर्यावरण-संरक्षणाय बहुधा निर्देशाः प्राप्यन्ते।

पर्यावरण-संघटक-तत्त्वानि

अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरण-संघटक-तत्त्वेषु तत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते। तानि सन्ति-आपः (जलम्), वाताः (वायुः), ओषधयः (वनस्पतयः) च। एतानि पर्यावरणं निर्मापयन्ति।

वायु-संरक्षणम्–वायुः जीवनस्याधारभूतः। वायौ अमृतरूपं प्राणतत्त्वं वर्तते। वायुः सूर्यश्च जगतः रक्षकौ स्तः। वायुः, वर्षाः, अग्निश्च प्रदूषणानि नाशयन्ति।

ओजोन-स्तर संरक्षणम्–वेदेषु 'महद् उल्ब' नाम्ना ओजोनस्तरो निर्दिश्यते। स्पष्टं निर्दिश्यते यद् ओजोन-स्तरः पृथिवीं गर्भस्थ-बालकम् इव संरक्षति। तद् दूषणं विनाशायैव।

वृक्षारोपणं जीवनरक्षणार्थं कार्यम्–ऋग्वेदे कथ्यते यद् वृक्षारोपणम् अवश्यं कार्यम्। एते प्रदूषणं निवारयन्ति, प्राणवायुं च ददति, जलस्रोतांसि च रक्षन्ति।

वृक्षाः शिव-स्वरूपाः–शतपथ-ब्राह्मणे शिवस्वरूपम् ओषधिरूपेण प्रस्तूयते। वृक्षाः कार्बनडाइ-ऑक्साइड-रूपं विषं पिबन्ति, अमृतरूपं प्राणवायुं वितरन्ति। नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। वनानां पतये नमः।

विद्यावती
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठातृतीयवर्षीया

प्रकृतिः माता सर्वेषां बहूनाम् अपि फलानाम्
बहूनाम् अपि वृक्षाणां पुष्पाणां चापि मातेयम्।।
भ्रमराणां च पशूनां पक्षिणां च मानास्ति
जनेभ्यः जीवनं सदा ददाति प्रकृतिः माता।।
अस्ति सा तु मनोहरी मातृणाम् अपि मानास्ति
प्रकृतिः माता सर्वेषां नमोऽस्तु ते मात्रे प्रकृत्यै।।– **यादवः, प्रबलः (संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठातृतीयवर्षीयः)**

प्रदूषणस्य समस्या समाधानं च

प्रदूषणस्य तात्पर्यम्–प्रदूषण: वायो: जलस्य स्थलस्य च भौतिक-रासायनिक-जैविक विशेषताषु अघटितं तद् अवांछनीयं परिवर्तनम् अस्ति, य: मनुष्येण औद्योगिक-संस्थानेन अन्यानां जन्तूनां पादपानां नदीनाञ्च केनापि रूपेण हानि: करोति स: पर्यावरणप्रदूषण: भवति।

जीवधारिण: स्व-स्व-विकासार्थं व्यवस्थित-जीवन-क्रमस्य हेतो: एकस्य-सन्तुलितस्य पर्यावरणस्योपरि निर्भरा: सन्ति। सन्तुलितपर्यावरणे प्रत्येकं घटक: एकस्मिन् निश्चितमात्रायाम् उपस्थित: भवति। पर्यावरणे एकस्यानेक-घटकानां मात्रा न्यूनाधिकं वा भवति। पर्यावरणे वा कतिपयानां घटकानां प्रवेश: भवति। परिणामत: पर्यावरण: प्रदूषित: भवति। य: जीवधारिणां कृते कस्मिश्चिद् रूपे हानिकारक: सिद्ध: भवति। अथायमेव प्रदूषण: कथ्यते।

विविध-प्रकारकं प्रदूषणं–प्रदूषण-समस्याया: जन्म: जनसंख्याया: वृद्धिभि: सह अभवत्। विकासशीलेषु देशेषु औद्योगिकरासायनिकावशेषेन केवलं जलं नैव अपितु वायुं पृथ्वीं चापि प्रदूषितं कृतम्। भारतसदृश्-देशे तु गृहाणाम् अनुपयोगी पदार्थस्य प्रदूषितस्य जलस्य निष्क्रमणस्य समस्या अति विकरालरूपे प्रस्तुता अस्ति। विकसितेषु विकासशीलेषु सर्वेषु देशेषु विभिन्नप्रकारस्य प्रदूषणं विद्यमानम् अस्ति।

क) वायु-प्रदूषणम्–वायुमण्डले विविधा: 'गैस इति पदार्था: विशेषानुपाते उपस्थिता: भवन्ति। स्वस्थश्वसनप्रक्रियया वयमाक्सीजनं ग्रहाम:। कार्बन-डाइ-ऑक्साइडम् इति च गैसं त्यक्ष्याम:। हरित: पादपा: प्रकाशस्य उपस्थितौ कार्बन-डाइ-ऑक्साइडं गृहीत्वा आक्सीजनं निष्कासयन्ति च। अनेन पर्यावरणे ऑक्सीजनस्य उत्पति: भवति। परं मानव: स्व-अज्ञानतया अस्य संतुलनस्य स्वरूपं विघटयति। इदमेव वायु-प्रदूषणं कथ्यते।

वायु-प्रदूषणस्य कुप्रभाव: मनुष्यस्य स्वास्थ्योपरि अपि पतति। तेन स्वास्थ्य-विषयक-अनेका: रोगा: भवन्ति। तेषु फेफड़ानां कैंसर: 'दमा' इति रुग्ण: फेफड़ासम्बन्धिन: अन्या: रोगा: सम्मिलिता: सन्ति। नाइट्रोजनऑक्साइडेति गैसेन फेफड़ा-हृदय-नेत्राणां च रुग्णा: भवन्ति।

ख) जल-प्रदूषणम् – सर्वेषां जीवधारीणां कृते जलम् अति महत्त्वपूर्णमावश्यकं चास्ति। पादपा: अपि स्वभोजनं जलस्य माध्यमेन प्राप्नुवन्ति। इदं भोजनं जले मिश्रितं भवति। जले अनेकविधा: खनिजतत्त्वानि, कार्बनिक-अकार्बनिका: पदार्था: 'गैस' इति तत्त्वानि, मिश्रितानि सन्ति। यदि जले इमा: पदार्था: आवश्यकतया अधिकमात्रायाम् एकत्रिता: भवन्ति तर्हि जलं प्रदूषितं भूत्वा हानिकारकं भवति।

'केन्द्रिय-जल-स्वास्थ्य-इंजीनियरिंग-अनुसंधान-संस्थानस्य अनुसारं भारतवर्षे प्रति 100000 व्यक्तिषु 360 व्यक्तिनां मृत्यु: आन्त्रशोथेभ्य: (टायफाइड, पेचिश इति) भवति। यस्य कारणम् अशुद्धं जलम् अस्ति। नगरेष्वपि शत-प्रतिशतश: निवासिनां हेतो: स्वास्थ्यकरस्य जलस्य प्रबन्धं नास्ति। देशस्य अनेकेषु नगरेषु पेयजलं निकटवर्तिन्या: नद्या: ग्रहणं क्रियते। प्राय: नदीषु नगरस्य मल-मूत्रादिभि: कल-कर्मशालानाम् अविशिष्टै: प्रवाहितपदार्थै: प्रदूषणं क्रियन्ते। परिणामत: अस्माकं देशस्य अधिकांशानां नदीनां

जलानि प्रदूषितानि भवन्ति।

ग) रेडियोधर्मी-प्रदूषणम् - परमाणुशक्ति-उत्पादन-केन्द्रानां परमाणु-परीक्षणानां फलस्वरूपेण जलस्य वायोः पृथिव्याः च प्रदूषणं निरन्तरं प्रवर्द्धयति। इदं प्रदूषणम् आगामिके काले हानिकारकं भविष्यति।

घ) ध्वनि-प्रदूषणम् - विविधप्रकाराणां वाहनानाम्, मोटराणाम्, मशीनानाम्, समुदीर्घ-ध्वनिः ध्वनि-प्रदूषणं जनयति। तेन श्रवणशक्तेः ह्रासः भवति।

ङ) रासायनिक-प्रदूषणम् - प्रायः कृषकाः रासायनिकाः उर्वरकाः स्वकृषेः उत्पादनवृद्धिः हेतोः प्रयोज्यन्तो। रासायनिकः प्रदूषणः समुद्रस्य जीव-जन्तूनां हेतोः वनस्पतयः च हेतोः घातकं प्रभावं जनयति।

प्रदूषण-नियन्त्रणम्ः-

पर्यावरणं नियंत्रणं सर्वेषां कृते अत्यावश्यकम् अस्ति। अतः प्रदूषण-नियंत्रणस्य प्रयासः व्यक्तिगत-रूपेण सामूहिक-रूपेण च भवितुम् अर्हति। सर्वकारः विविधसमीतिनां निर्माणं कृतवान् अस्ति। समीतयः कार्यं कुर्वन्ति तथापि प्रदूषणं नियंत्रणं न भवति। तस्य मुख्य-कारणं भवति जनसंख्यायां वृद्धिः। सर्वकारेण जनसंख्या-नियंत्रणमपि प्रयत्नं करणीयम्। जनाः न्यूनाः भविष्यन्ति चेत् अद्य न्यूनप्राकृतिक-सम्पदानाम् उपयोगः न्यूनः भविष्यति, न्यूनजलस्य उपयोगः विर्चिकाउपयोगः न्यूनः भविष्यति, भिन्न-भिन्न-संसाधनानाम्, वाहनानाम् उपयोगः न्यूनः भविष्यति। अतः जनसंख्या नियंत्रणम् अपि एकः उपायः अस्ति प्रदूषणं नियंत्रणस्य पुनः इदानीं नूतनः नियमः आगतः यातायातनियमः नियमेऽस्मिन् व्यक्तिगतवाहनानां परिचालनम् अङ्कमाध्यमेन भवति। नियमानुसारं विद्युत-वाहनानां बैटरीचार्ज-वाहनानाम् उपयोगेन वायु-प्रदूषणं न्यूनं भवति। शीतलजलयंत्रम् (कूलर), यानानाम् उपयोगेन अपि अस्माकं वायु-प्रदूषणं न्यूनं भवति। भिन्न-भिन्न पर्वेषु यदि विस्फोटकानां विस्फोटं भवति। तत् कारणेन ध्वनि-प्रदूषणं पुनश्च वायु-प्रदूषणं भवति। भिन्न-भिन्नदेव-देवीपूजादिविसर्जनकाले नृत्यं, गीतं, भवति। डी.जे. इति माध्यमेन तेन ध्वनिप्रदूषणं भवति। एतेषां सर्वेषां नियंत्रणं करणीयम्। दीपप्रज्जवलेनापि उत्सवे पालनं भवितुम् अर्हति। विस्फोटकानां विस्फोटकम् आवश्यकं नास्ति। नदीनां स्वच्छतायां कृते वयं जलस्य प्रयोगं न्यूनं कुर्याम। जलप्रदूषणं न्यूनं करणाय वयं वृष्टिजलस्य संरक्षणमुपयोगञ्च कुर्याम। एतेषां विषयस्योपरि विचारं करणीयम्। जल-प्रदूषणं निमित्तम् अपि जनजागरणम् आवश्यकम् अस्ति। सर्वेः मनुष्याः वृक्षस्य पालनं कुर्मः। यथा अश्वस्य कुकुटस्य, धेन्वोः, अजस्य च भिन्न-भिन्न पशुपक्षिणां वयं पालनं कुर्मः, तादृशवृक्षाणां, नदीनां, वसुधानामपि पालनं कुर्तं शक्नुमः। एतेन रूपेणापि पर्यावरणस्य संरक्षणं कुर्युः। प्रदूषणस्य नियंत्रणं कर्तुं शक्नुमः इति व्यक्तिगतरूपेणापि वयं गृहे-गृहे स्वच्छतायाः ध्यानं कुर्मः चेत् प्रदूषणं न्यूनं भवेत्। प्लास्टिक-वस्तूनां व्यवहारं न्यूनं कुर्मः अन्यानां वस्तूनां व्यवहारः प्राकृतिक-वस्तूनां व्यवहारः अधिकः भवेत्। जैविकं कृषिं प्रति अधिकं ध्यानं भवेत् एतेन प्रकारेण वयं प्रदूषणस्य नियंत्रणं कर्तुं शक्नुमः प्रदूषणस्य नियंत्रणेन अस्माकं जीवनं सुखं, समृद्धं, शुद्धं च भविष्यति तदा भारत-समर्थं भारतं भविष्यति।

सारांशः

प्रदूषणम् अस्माकं कृते अहितकरमिति ज्ञात्वाऽपि वयं तस्मिन् विषये उपेक्षां कुर्मः। हितकरस्य स्वीकारः अहितकरस्य धिक्कारः इति ज्ञानिनां लक्षणम् अस्ति। अतः इदानीम् अस्माकं ज्ञानस्य परिचयकालः अस्ति। विविधेषु उत्सवेषु वयं राक्षसरूपीणां

कुश-पुत्तलिकानां दहनं कृत्वा हर्षम् अनुभवाम: परन्तु अज्ञातत्वेन वयं प्रदूषणरूपस्य राक्षसस्य जननम् अपि कुर्म:। एतादृशी अस्माकं प्रभुभक्ति: जलदेवता, वायुदेवता, अग्निदेवता.... इत्यादिरूपेण मन्दिरेषु अर्चनां कुर्म: किन्तु प्रत्यक्षरूपेण वर्तमानं जलं, वायुम्, अग्निं वा न पूजयाम:। एतादृशम् अस्माकं धार्मिकं जीवनम्। उक्ति: अस्ति ''धर्मो रक्षति रक्षित:'' तथैव ''प्रकृति: रक्षति रक्षिता''। अत: इदानीन्तने काले प्रदूषणमुक्तस्य वातावरणस्य निर्माणम् अस्माकं प्रमुख: मानवधर्म: इति चिन्तयामि। एष एव मोक्षमार्ग:।

विद्यार्थी-जीवनस्य योग:

स: प्रत्येक: जन: अपि विद्यार्थी अस्ति य: यत् किञ्चित् ज्ञातुम्, सार्थक: प्रयासं करोति। विद्यार्थी जीवनस्य न कोऽपि आयु: भवति। स: बालक: व अशीति वर्षस्य वृद्ध: अपि भवितुं शक्नोति। प्राय: प्रत्येकं महापुरुष: स्वजीवनस्य अन्तिमकालपर्यन्तं विद्यार्थीजीवनस्य पालनम् अकरोत् यतोहि जीवनस्य अपरं नाम ज्ञानार्जनम् अस्ति। 'विद्यार्थी-जीवनम्' जीवनस्य स्वर्णकाल: भवति। अपि च शास्त्रेण विद्यार्थीलक्षणं अथवा विद्यार्थिन: योग: दर्शित:-

काकचेष्टा, बकोध्यानं, स्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थीणां पञ्चलक्षणम्॥

यथा काक: दूरे आकाशे स्वछन्दम् उड्डीयते अपि स्वतीव्रदृष्ट्या भूमौ खाद्यपदार्थं दृष्ट्वा चापल्यपूर्वकं तत्र गत्वा च स्वलक्ष्यं प्राप्नोति। तथैव विद्यार्थी अपि ज्ञानप्राप्तुं तीव्रजिज्ञासाया: विकासं करणीयम्।

बक: तडागे वा नदीतीरे एकपादेन स्थित्वा ध्यानमग्नं भवति। यदा तीरे मत्स्या: आगच्छन्ति बक: शीघ्र: तां गृहीत्वा पुन: ध्यानमग्नं भवति तथैव विद्यार्थिन: अपि विद्याध्ययनरत: भवेयु: च निरंतरं ज्ञान-विज्ञानस्य प्रगति: पथे वर्धेरन्।

यदि सुप्तस्य शुन: समीपे कोऽपि गच्छति स: शीघ्रं जागृत: च उतिष्ठति तथैव विद्यार्थीन: अपि स्वजीवनलक्ष्यं प्राप्तुं सदैव जागरुक: भवेयु:।

विद्यार्थी-जीवनसाधना एव तपस्याया: जीवनम् अस्ति। अध्ययनशील: विद्यार्थी सदैव सात्विकम् अल्पभोजनं च खादेत् विद्यार्थी-जीवने सफलतायै स्वास्थ्यस्य प्राकृतिक-नियमानां पालनम् अत्यावश्यकमस्ति।

आदर्शविद्यार्थी अध्ययनार्थं गृहात् बहि गन्तुं सदैव तत्पर भवति।

अत: उपर्युक्तपञ्चलक्षणं विद्यार्थिनां कृते पालनीयम्।

उपर्युक्तपञ्चलक्षणं विद्यार्थिनां योग: भवति।

मुस्कान
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाप्रथमवर्षीया

संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणस्य महत्वम् एवं तस्याधारे वर्तमाने व्याप्तः समस्यानां निदानः

संसारस्य आदिग्रन्था: वेदा:। ते प्रथम ज्ञानश्रोता: ज्ञानचक्षुश्च कथ्यन्ते। सत्यमिदं मानवजाते: पुस्तकालये प्रथमज्ञानसंकलिता: ग्रन्था: वेदा: आसन्। यथा वैदिक-संस्कृति: प्रकृतिमानवता पर्यावरणपरिचिता आसीत् तथा न काऽपि संस्कृति:। एन.जे. लॉकरमहोदय: प्रतिपादितं कृतं यत् "यत् सर्वं वयं पठाम: तेषु सर्वेषु आदि: वेदा:"।

वर्तमाने पारितंत्र: एवं पर्यावरण: आधुनिक-विज्ञानस्य महत्वपूर्णं शाखां वर्तते, आधुनिकविज्ञानस्योद्भवं विंशति शताब्दे अभवत् परञ्च तस्याधारे पुराकालीनवैदिकसभ्यताया: संयोजनम् अस्ति। पर्यावरणस्य परिकल्पना कालानुसारं किञ्चित् भिन्नं अस्ति। अत: कालस्य परिस्थिते निर्भरं करोति।

पर्यावरणसंरक्षणाधिनियम: 1986, पर्यावरणं परिभाषितं करोति एतस्यानुसारे पर्यावरणं भूमि:, जलं, वायु: एवं मानव:, वृक्षा:, जीवा: एतै: सह सम्बद्धम्। उपर्युक्तपरिभाषात् वयं वदतुं शक्नुम: यत् पर्यावरणं जैविकानाम् अजैविकानाम् च संयोजनं वर्तते। जैविका: अर्थात् ये ये जले स्थले भूमण्डले वायुमण्डले जीवनयापनं कुर्वन्ते। अजैविका: अर्थात् जलं, स्थलं पदार्थादय:। आधुनिक-संस्कृते, अस्माकं परित: सर्वं व्याप्त: य: स: एव पर्यावरणे एव गण्यते। अथर्ववेदे एक: मन्त्र: वर्तते य: तत्कालस्य जना: एवं तेषां पर्यावरणात् परिचयं प्रदर्शयते–

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधय: तन्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि॥

अत्र अस्माकं पर्यावरणे त्रय: पदार्था: वायु:, जलम्, औषधं वर्णिता: सन्ति। ऐते आदिकालत: संसारे विराजन्ति। अस्य सर्वस्य आधारे एतत् वक्तुं शक्यते यत् अस्मान् परित: यानि पञ्चमहाभूतानि सन्ति तेषां समवाय: एव परिसर: अथवा पर्यावरणम् इत्युक्ते मनुष्यो यत्र निवसति, यत् खादति, यत् वस्त्रं धारयति, यज्जलं पिबति, यस्य पवनस्य सेवनं करोति तत्सर्वं पर्यावरणम् इति शब्देन अभिधीयते।

सम्प्रतिकाले निखिलेऽस्मिन् जगति मानवसभ्यताया: समक्षमनेके समस्यात्मका दुष्प्रभावा: समुज्जृम्भन्ते। पर्यावरणस्य प्रदूषणमपि तथैव मानवसभ्यतायै परिदृश्यते। अधुना औद्योगिकप्रसारेण न केवलं जलं वायु: फलमन्नादिकं च प्रदूषितमपितु समग्रमपि भूमण्डलं दूषितं भवति। प्रतिदिनं परमाणु-यंत्राणां रेडियोधर्मिता सर्वत्र प्रसरति विषाक्तगैसीयतत्त्वानां प्रसारेण बृहदाकारौद्योगिक- यंत्राणामपशोषितै: पदार्थै: संयात्रादिभि: सर्वत्रवातावरणं भूलोकस्य वायुमण्डलं प्रदूषितं भवतीतिवृत्तं दृग्गोचरं भवति। अस्मिन् वैज्ञानिकयुगेऽपि यदि पर्यावरणप्रदूषणस्य विरोधोपाय: समुचित: न स्यात्तदा कस्मिन् युगे भविष्यति।

पर्यावरणप्रदूषणस्य प्रभावाद् जगति रोगादीनां वृद्धि: सञ्जाता अन्नपानादिषु रेडियोधर्मिपदार्थानां सम्मिश्रणनात् सर्वत्र वायुमण्डलं तु दूषितं भवत्येव, तस्माद् आनुवंशिक: प्रभावोऽपि भवति। अनेन भविष्यत्काले मानवसभ्यताया विनाशोऽवश्यम्भावीति निश्चप्रचम्। न केवलं भारतम् अपितु समस्ते भूमण्डले प्राकृतिकसंतुलनं समुत्पन्नम्। कुत्रचिद् अनावृष्टि: अतिवृष्टि: च भवति साम्प्रतं वैज्ञानिकानां मते केवलं पृथिव्यामेव जीवनं वर्तते तदपि प्रदूषणेन शीघ्रमेव विनाशम् एष्येति। अनेनासंतुलनेन असाध्यरोगा: समुत्पन्ना:।

जनसंख्याविस्फोटेन औद्योगीकरणेन वा प्रदूषणस्य समस्या समुत्पन्ना पञ्चाशद् वर्षपूर्वं विश्वस्य जनसंख्या: द्वि-अर्बुदपरिमिता: आसीत् अधुना तु पञ्चार्बुदपरिमिता: जाता:। जनानाम् आवश्यकतापूर्तये उद्योगानां राजमार्गाणां जलबन्धनां रेलमार्गाणां संचारसाधनानां च विस्तार: अपेक्षित: अत: स्वार्थविरतेन मानवेन प्रकृतिकोषात् मृत्प्रस्तरधातुकाष्ठादीनि परिलुण्ठितानि यदि इत्थमेव प्रदूषणेन तापवृद्धिर्भवेच्चेत् तर्हि ध्रुवक्षेत्रे हिमगलनेन जलप्रलय: भविष्यति। मुख्यरूपेण भूमि-जल-वायु-ध्वनि-प्रदूषणानि सञ्चारितानि। वायुना कीटाणव: इतस्तत: वीयन्ते। वायुना विना न जीवन्ति जीवधारिण:। पाषाणतैलचालितानि (पैट्रोल) यानानि उपग्रह-प्रक्षेपक-राकेट-यानानि शीतोष्णपरिकरबन्ध: विच्छृंखलित: भवति।

मलमूत्रप्रणालीनां तैलशोधकरसायनानां प्रदूषितजलेन कूपनदीजलाशयानां जलराशि: विषाक्ता भूत्वा विषूचिकापाण्डुजलोदररोगान् जनयति। कीटनाशकानां वर्धमानेन प्रयोगेण पृथिव्या: अन्नफलादीनि प्रदूषितानि जातानि।

महानगरेषु वाहनानां निर्बाधप्रचलेन ध्वनिप्रसारयन्त्रविज्ञापनेन नूतनयन्त्राणां निनादेन कर्णस्फोटकध्वनि: रात्रिन्दिवं समुत्पद्यते तेन मानवस्य मन: शान्ति: विलुप्ता: जना: अनिद्रारोगेण विक्षिप्ता: इव सन्ति। प्रदूषण-निवारणाय वृक्षारोपणम् अत्यावश्यकमस्ति। प्राचीनकाले पुराणेषु अपि वृक्षाणां महत्वं प्रतिपादितम्। य: पञ्चानाम् आम्रवृक्षाणाम् आरोपणं करोति स: कदापि नरकं न गच्छति इति कथ्यते। पुरणि एतदेव कथितं ''पंचाम्रवाणी नरकं न याति इति''। वृक्षा: अस्माकं कृते किं करोति एतत् अस्मिन् सुभाषिते कथितम्–

धत्तेधारं कुसुमपत्रफलावलीनां

धर्मत्यधां वहति शीतभवां रुचं च।

यो सर्वमर्पयति चान्दसुखस्य

हेतो: तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु॥

किन्तु आधुनिकयुगे जना: स्वार्थिन: अभवन्। स्वसुखाय गृह-निर्माणाय ते वृक्षान् छिन्दन्ति। ते किं न जानन्ति, यत् वृक्षा: सृष्टे: आधारा: सन्ति वृक्षाभावे सृष्टि: असंभवा खलु।

वृक्षा: जनानां शरीरस्वास्थाय अपि सन्ति। ते 'कार्बन-डाइऑक्साइड' वायुं गृह्णन्ति, आक्सीजनं वायुं च विसृजन्ति। नूनम् एषां जीवनं समस्तप्राणिभ्य: उपयोगी अस्ति अत: वृक्षाणां छेदनं कदापि न कर्तव्यम्। प्राचीनकाले तु वृक्षभेदनं दण्डनीय: अपराध: मन्यते। अस्माकं संस्कृत्यां वृक्षभेदनं पापं मन्यते।

अत: प्रत्येकनागरिकस्य एतत् कर्तव्यं यत् तेन वृक्षारोपणम् अवश्यं कर्तव्यम्। पर्यावरण-प्रदूषण-निरोधाय जना: यत्र तत्र ष्ठीवनं मलमूत्रं प्रक्षेपणं न कुर्यु: गृहस्य प्रणाल्य: स्वच्छा: स्यु:। बालका: युवका: कृषका: युवत्यश्च विद्यालयेषु उद्यानेषु क्षेत्रेषु गृह-उद्यानेषु आधिक्येन वृक्षारोपणं कुर्यु: महानगरेषु मध्ये-मध्ये संस्थानानां हरितानाम् उद्यानानां विकासेन वायु-प्रदूषणं न्यूनं कर्तुं शक्यते। वस्तुत: समस्यानां निराकरणं युक्तिसंगतेन समाधेन सम्भवम्। वर्तमानयुगे पर्यावरण-शोधनकस्य परमावश्यकता। प्रबुद्धा: भारतीया: पुरा वायुशुद्धार्थं हवनादिकम् अकुर्वन्। ते वृक्षारोपणं सूर्यं, पवन-वरुण वनस्पतीनां स्तुतिम् अकुर्वन्।

विश्वस्वास्थ्यसंगठनेन पर्यावरणसन्तुलनार्थमनेके उपाया: प्रतिपादिता: अस्माकं देशेऽपि पर्यावरणप्रदूषणस्य निवारणार्थं सर्वकारद्वारा व्यवस्था क्रियते, तदनुसारं गंगानद्या: स्वच्छताभियानम्, अशुद्धजलमलादीनां विशुद्धयर्थं संयन्त्राणि स्थाप्यन्ते जनजागरणमपि प्रचलति प्रदूषणनिवारणस्योपाया: विधयश्चापि निर्दिश्यन्ते। एवञ्च विविधोपायैरेव पर्यावरणस्य संरक्षणं भवितुमर्हति।

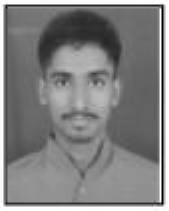

शर्मा, मुदितः मोहनः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाप्रथमवर्षीयः

वृक्ष-वनस्पतिः संरक्षणम्

वेदेषु ब्राह्मणग्रन्थेषु च वृक्षवनस्पतीनां महत्वपूर्णं वर्णनम् अस्ति। यथा– ''वनस्पति: सह देवैर्न आगन्, रक्ष: पिशाचान् अपबाधमान:''। अर्थात् वृक्षेषु देवतानां निवासो भवति। ते प्रदूषणरूपान् राक्षस–पिशाचान् विनाशयन्तीति। ब्राह्मणग्रन्थेषु–''प्राणो वै वनस्पति:''। इत्यत्र प्राणरूपत्वमुक्तं शतपथश्रुतौ– ''ओषं धयेति तत् ओषधय: समभवन्।।'' तथा च–''ओषधयो वै पशुपति:'' अथोषधयो दोषान् समापयन्ति। दोषशमनं कृत्वा जीवानां पालनं कुर्वन्ति तस्मादेते पशुपतिरित्युच्यन्ते। यजुर्वेदेऽपि च ''नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्य:।'' क्षेत्राणां पतयो नम:। वनानां पतये नम:। वृक्षाणां पतयो नम:। ओषधीनां पतये नम:। कक्षाणां पतये नम:।। इत्यादिषु मन्त्रेषु वृक्षवनस्पतीनां शिवरूपत्वं सुवर्णितम् अत इमे शिवरूपेणैव पूज्या: सन्ति।

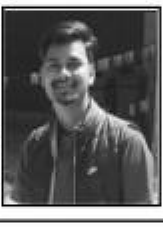

त्रिपाठी, सुधांशुशेखरः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाद्वितीयवर्षीयः

पर्यावरण-संरक्षणम्

किं पर्यावरणम् - पर्यावृत्तिः पर्यावरणम्, यत् परितः आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्। ये मानवं परितः आच्छादयन्ति, मानव-जीवनं च प्रभावयन्ति ते पर्यावरणशब्देन गृह्यन्ते। तेषु वायुमण्डलं, स्थलमण्डलं, जलमण्डलं तथा रासायनिक-तत्त्वानां च संग्रहो वर्तते एवं पर्यावरणं भौतिक-जैविक-तत्त्वानां संकलनेन भवति। भौतिकतत्त्वेषु मृत्तिका, जलं, वायुः, प्रकाशश्च सन्ति। जैविक-तत्त्वेषु समस्तं जीव-जगद् वृक्ष-वनस्पतयश्च सन्ति।

पर्यावरण-प्रदूषणम् - मानवः स्वक्रिया-कलापेन अवशिष्ट-पदार्थानाम् ऊर्जायाश्च विमोचनेन यत् प्राकृतिकं सन्तुलनं दूषयति, तत् प्रदूषणम् इति निगद्यते।

मुख्य-प्रदूषणानि सन्ति–1. वायु-प्रदूषणम् 2. जल-प्रदूषणम् 3. भूमि-प्रदूषणम् 4. ध्वनि-प्रदूषणम् 5. रेडियो-धर्मी-प्रदूषणं च।

1. वायु-प्रदूषणम् - वायुमण्डले विविध-गैसाः विशेषानुपातपूर्वकं सन्ति। ते प्राणिनो जीवनशक्तिं प्रददति। यदि औद्योगिकीकरणेन अन्यैर्वा साधनैः तत् प्राकृतिकम् अनुपातं प्रदूषयन्ति तर्हि वायु-प्रदूषणं संजायते।

वायु-प्रदूषणं मानवस्य स्वास्थ्यं प्रभावयति। कार्बनमोनो-ऑक्साइड-गैसो मानवस्य चिन्तनशक्तिं न्यूनं करोति। अन्यैश्च गैसैः श्वासरोगाः, नेत्ररोगाः कैंसर-प्रभृतयो रोगाः भवन्ति। वायु-प्रदूषणं ओजोन-स्तरं (Ozone Layer) दूषयति। तत्प्रभावेण वृक्ष-वनस्पतीनां क्षयो भवति। वनस्पतीनां क्षयो मानवजीवनस्य कृते संकटम् उपस्थापयति।

वायु-प्रदूषण-निराकरणम् - वायु-प्रदूषण-निराकरणार्थम् एते उपायाः लाभकराः भविष्यन्ति। अधिकधूम्र-त्याग-पराणां वाहनानां प्रयोगे न्यूनत्व-साधनं वृक्षाणां छेदनस्य वैधरूपेण निरोधः स्याद्, वृक्षारोपण-कार्ये च बाहुल्यं स्यात्। सर्वेऽपि यन्त्रालयाः नगराद् दूरं स्थापिता भवेयुः। परमाणु-विस्फोटे प्रतिबन्धः स्यात्। वायु-प्रदूषण-प्रभावं प्रति जनाः जागरुकाः भवेयुः।

2. जल-प्रदूषणम् - जलं मानव-जीवनस्य प्रमुखं साधनं वर्तते। पृथिव्याः 70 प्रतिशतं भागो जलावृत्तो वर्तते। समुद्रस्य जलं क्षारं भवति, अतः तत् पानार्थम् अनुपयोगि केवलं त्रि-प्रतिशतं जलं मधुरं पेयं च वर्तते। तेनैव मानवानाम् अवस्थितिः वर्तते। औद्योगिक-यन्त्रालयानां रासायनिक-यन्त्रालयानां च यद् अपशिष्टं प्रवाह्यते, तद् नद्यादिषु प्रक्षिप्यते। तेन जलं दुष्यति। कृषि-कार्येषु प्रयुक्ताः कीटनाशक-पदार्थाः रासायनिकं खाद्यं च यत् प्रवाह्यते, तद् नद्यादिकं प्राप्नोति, तेन जलं दुष्यति। एवमेव गृहापशिष्टा अपि प्राणाल्यादिभिः नद्यादिकं प्राप्नुवन्ति, तेनापि जल-प्रदूषणं भवति।

प्रदूषित-जल-पानेन अनेकाः रोगाः प्रादुर्भवन्ति। तद् यथा–पाण्डुरोगं, रक्ताल्पता, अतिसारं, ज्वरादिकं च। प्रदूषित-जल-पानेन-गो-वृषभ-महिषारि-पशवोऽपि मृत्युं प्राप्नुवन्ति। वृक्षेषु प्रकाश-संश्लेषण-क्रियायाम् अवरोधोऽपि जायते।

जल-प्रदूषण-निरोधार्थम् एते उपाया आश्रयणीयाः-नगरादीनाम् अपशिष्ट-जलं प्रवाहार्थं प्रणाली-व्यवस्था स्यात्। तद् नगराद

दूरम् अपशिष्टं प्रवाहयेत्। कीट-नाशक-पदार्थानां प्रयोगः स्वल्पः स्यात्। परमाणु-विस्फोटेषु प्रतिबन्धः स्यात्। मृत-जन्तवो भूमौ निरवाता भवेयुः।

3. भूमि-प्रदूषणम् - भूमिरेव जनानां जीवनस्य साधनम्। भूमिरेव अन्नादिभिः मानवं पोषयति। यदि भूम्या उर्वरा-शक्तिः क्षीयते तर्हि दुर्लभं भविष्यति। एतदर्थं भू-प्रदूषण-निरोधार्थम् उपायाः करणीयाः।

भू-प्रदूषणस्य कारणानि सन्ति-औद्योगिकयन्त्रालयानाम् अपशिष्टं जलं भूमिं प्राप्नोति तद् भूमेः उर्वराशक्तिं नाशयति। क्षेत्रेषु अपशिष्ट-पदार्थानां प्रक्षेपणेन मृत्तिका प्रदूष्यते। वनानां वृक्षाणि च छेदनेन मृदा-क्षरणं भवति।

भू-प्रदूषण-निरोधोपायाः - कीटनाशक-रसायनानां प्रयोगो नियन्त्रितः स्यात्। वृक्षादीनां छेदने प्रतिबन्धः स्यात्। शोधित-जलेनैव कृषौ सेचन-व्यवस्था स्यात्। गृहस्यापशिष्टं मलादिकं गोमयादिकं च कम्पोस्ट-खाद्यरूपेण परिवर्तितं स्यात्।

4. ध्वनि-प्रदूषणम् - ध्वनिः विचाराणाम् आदान-प्रदानस्य महत्त्वपूर्णं साधनम्। सामान्य-ध्वनिः स्वास्थ्य-हेतोः उपयुक्तोऽस्ति। परं तदेव उग्रं कठोरं वा सत् कर्णपीडा कर्णरोगादिकं च जनयति। ध्वनि-प्रदूषणेन रक्तचापे वृद्धिः, मांसपेशीषु कठोरता, अनिद्रा, श्वासरोगाः, शिरोवेदना-प्रभृतयो रोगाः जायन्ते।

ध्वनि-प्रदूषण-नियन्त्रणम् - ध्वनि-प्रदूषण-नियन्त्रणार्थम् एते उपायाः आश्रयणीयाः तीव्रध्वनिकारकयन्त्राणां स्थाने सामान्यध्वनि-कारकानि यन्त्राणि योजनीयानि। वाहनेषु तीव्रध्वनिकरणे प्रतिबन्धः स्यात्। यन्त्रालयेषु कार्यपराः कर्मकराः कर्णरोग-निरोधाय कर्णेषु किमपि ध्वनि-रोधकं प्रयुञ्जीरन्। तीव्रध्वनिकारकेषु यन्त्रादिषु प्रतिबन्धो विधीयेत।

पर्यावरण-विषयकं भारतीयचिन्तनम्

संस्कृत-साहित्ये पर्यावरण-संरक्षण-विषयकं पर्याप्तं चिन्तनम् उपलभ्यते। वेदेषु, स्मृतिषु, पुराणग्रन्थेषु च पर्यावरणस्य बहुधा निर्देशाः प्राप्यन्ते। तदत्र समासत उपस्थाप्यते।

सस्य संपदां प्रददाति, अग्निः लोहतत्त्वं ददाति।
वनस्पतयश्च प्राणशक्तिं ददाति। पृथिवीं दिवं च न दूषय॥

(क) पृथिवी माता, द्यौष्पिता-(यजु. 2.10.11)
(ख) अवतां त्वा द्यावापृथिवी, अवत्वं द्यावापृथिवी-(यजु. 2.1)
(ग) भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृत्। अग्निः पिपर्तु-अयसा सजोषाः
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं सविदानं, दक्षं दधातु सुमनस्यामानम्-(अथर्व.)

जल-संरक्षणम् - जलेन जीवनम् अमृत-तुल्यं भेषजं रोगनाशकं चास्ति, अतस्तस्य संरक्षणं परमावश्यकं वर्तते। जलं सर्वरोग-प्रशमनं हृदरोगनाशकं चास्ति। जल-शक्तिवर्धक-रसायनं चास्ति।

(क) आपो विश्वस्य भेषजीः-(अथर्व. 3.7.5)

पुराणादिषु प्रदूषण-निवारणादेशः - पद्मपुराणे क्रियायोगखंडे निर्दिश्यते यद् गंगादीनां नदीनां प्रदूषणं महत् पातकम् आवहति। अतो गंगादि-जलेषु मूत्रं पुरीषं निष्ठीवनं कफादिकम् उच्छिष्टं वा न त्यजेत्।

मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गंगातीरे करोति यः।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि॥ (पद्मपुराण क्रियायोग 8.8.10)

वृक्षारोपणं जीवनरक्षणार्थं कार्यम् - ऋग्वेदे कथ्यते यद् वृक्षारोपणम् अवश्यं करणीयम्। एते प्रदूषणं निवारयन्ति, प्राणवायुं च ददाति, जलस्रोतांसि च रक्षन्ति।

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
नि षू दधिध्वम् अरवनन्त उत्सम्। (ऋग्. 6.48.17)

पर्यावरण - संघटक-तत्त्वानि - अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरण-संघटक-तत्त्वेषु तत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते। तानि सन्ति-आपः (जलम्), वाताः (वायुः), ओषधयः (वनस्पतयः) च। एतानि पर्यावरणं निर्मापयन्ति।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः तन्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि॥ - (अथर्व. 18.1.17)

वायु-संरक्षणम् - वायुः जीवनस्याधारभूतः। अतस्तस्य संरक्षणम् आवश्यकं वायौ अमृतरूपं प्राणतत्त्वं (Oxygen) वर्तते। वायुः सूर्यश्च जगतः रक्षकौ स्तः। वायुः वर्षा अग्निश्च प्रदूषणानि नाशयन्ति।

(क) यददो वात ते गृहे, अमृतस्य निधिर्हितः। (ऋग्. 10.186.3)
(ख) युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः (अथर्व. 4.25.3)

ओजोन-स्तर (Ozone Layer) संरक्षणम् - वेदेषु 'महद्-उल्ब-नाम्ना ओजोन-स्तरो निर्दिश्यते। स्पष्टं निर्दिश्यते यद् ओजोन-स्तरः पृथिवीगर्भस्य-बालकम् इव संरक्षति तद्-दूषणं विनाशायैव।

महत् तदुल्वं स्थविरं तदासीद्,
येनाविस्तः प्रविवेशिथापः॥ - (ऋग्. 10.31)

द्यु-भू-संरक्षणम् - वेदादिषु द्यावा-पृथिव्योः संरक्षणं महती आवश्यकता निर्दिश्यते। द्यावा-भूमी मातृ-पितृवद् वर्तेते। तयोः संरक्षणं सर्वेषां कर्तव्यम्।

भूमि। वृक्षाः शिव-स्वरूपाः

शतपथब्राह्मणे शिवम् औषधिरूपेण प्रस्तूयते। वृक्षाः कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (Co_2) रूपं विषं पिबन्ति, अमृतरूपं प्राणवायुं (Oxgen O2) वितरन्ति। यजुर्वेदे वृक्षादिरूपेण रुद्र-स्तूयते।

(क) नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। वनानां पतये नमः
ओषधीनां पतये नमः (यजु. 16.17.19)
एवं वेदेषु संस्कृत-साहित्येषु अनेकानि उपायनानि सन्ति।

गतिकृष्णः, प्रधानः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाप्रथमवर्षीयः

भौतिकं पर्यावरणम्

'परि' 'आवरण' इति अनयोः योगेन 'पर्यावरण' शब्दः निष्पन्नः भवति। पृथिवी एकः विचित्रः ग्रहः यत्र विभिन्नरूपेण जीवजगतः विकासः अभवत्। पृथिवीं परितः यत् नैसर्गिकम् आवरणम् अस्ति, तत् पर्यावरणम् उच्यते। संप्रति परिवेष इति शब्दः पर्यायवाचकः। ''वेष्टने परिवेषः स्याद् भानो साविधमण्डले। अमरकोषे ''परिवेष'' इति शब्द उपलब्धः। परिवेषस्तु परिधिः उपसूर्यकमण्डले। परितः विष्यते अनेन इति परिवेषः। परि + विष् (व्याप्तौ) + घञ्=परिवेषः। येन सर्वं व्याप्तं भवति सः परिवेषः। जगत् परितः आवरणम् पर्यावरणम्। सृष्टि-प्रक्रियायां पञ्च महाभूतानि परस्परं संश्लिष्टानि। सूक्ष्मात् भूतात् स्थूलस्य भूतस्य उत्पत्तिः भवति। आकाशाद् वायुः, वायोः अग्निः, अग्नेः आपः अद्भ्यः पृथिवी एवं भौतिकसृष्टिक्रमः। पृथिवी स्थूलतमा यत्र अन्यानि भूतानि संश्लिष्टानि सन्ति। पर्यावरणम् एतानि भूतानि गृहीतानि। आकाशः, वायुः, अग्निः, जलम्, पृथिवी च भूतानि। पर्यावरणमध्ये एतेषां ग्रहणं भवति। Ecology, Oecology इति शब्दद्वयं OIKO(S) इति ग्रीक् शब्दतः निष्पन्नम्। यस्यार्थः गृहं संस्कृते ''ओकस्'' शब्द गृहपर्यायवाचकः। प्राणिजगतः उद्भिज्जगतः च व्यापकं ग्रहं भवति पर्यावरणम्।

भौतिक-जैविकभेदेन पर्यावरणं द्विविधम्। भौतिकपर्यावरणे पञ्चभूतानां जैविके वृक्षाणां जीवानां च ग्रहणं भवति। प्राणिनः भूमेः भोजनं, जलाज्जलं, वायुमण्डलात् प्राणवायुं च गृहीत्वा जीवन्ति। भौतिकपर्यावरणस्य सुरक्षया जीवजगत् सुरक्षितं भविष्यति।

पृथिवी-''पृथिवी-विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा जगतो निवेशनी'' (अथर्ववेद 7, 16) पृथिवी अस्माकं माता। पृथिवी जीवजगत् वृक्षजगत्, रत्नानि, खनिजद्रव्याणि च धारयति। पृथिव्याः संरक्षणेन सर्वे सुरक्षिताः भविष्यन्ति। भूमेः प्रदूषणेन रोगाः जायन्ते। वृक्षाणां वृथा छेदनेन अत्यधिकरासायनिककीटनाशकविषप्रयोगेण च भूमिः प्रदूषिता शक्तिहीना च भवति। भूमिं प्रकृतिः उच्यते। अतः तस्याः संरक्षणेन सर्वं संरक्षितं भवति।

जलम् - जायते अस्मात् इति 'जम् लीयते अस्मिन् इति (लम्)। (यत्र जीवजगतः उत्पत्तिः लयः च भवतः तद्भवति जलम्)। एवम् अर्थस्य जलं प्रतीकं भवति। जलं सर्वत्र आप्नोति व्याप्तं भवति। अतः जलम् आपः इति उच्यते। पृथिव्या यज्जलं व्याप्तं भवति सूर्यरश्मिभिः वाष्पीभवनप्रक्रियया तज्जलं मेघे सञ्चितं भवति। वर्षाकाले वृष्ट्या तज्जलम् अन्नम् उद्भावयति। ''अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः'' इति गीतावचनम्। जले जीवनस्य बीजं सृष्टम्। अप एवं ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्। (मनुस्मृति)। जलं 'रस' उच्यते। पर्वतेभ्यः प्रवहन्तीषु जलाधरासु मृत्तिकाधातुखनिजलवणादिरसाः सञ्चरन्ति। अत्र जीवनस्य धारकं वर्धकं च तत्त्वं निहितमस्ति शिल्पायनेन वर्ज्यवस्तुत्यागेन जलं प्रदूषितं रोगजनकं च भवति। निर्मलेन जलेन जीवनम् आयुरारोग्यमयं भवति।

अग्निः - अग्निः तेजोरूपः। अग्नेः दाहिका शक्तिः सर्वमशुद्धं वस्तु नाशयति पर्यावरणस्य विशुद्धिं च रक्षति। सूर्यः, यज्ञाग्निः, गार्हपत्याग्निः, वनाग्निः, वाडवाग्निः इति विधिरूपेण अग्निः शुद्धेः कारणं भवति, वायुमण्डलस्य विषप्रक्रियाम् अग्निः नाशयति संसारस्य हितं साधयति च।

वायुः - **''वाति गच्छति गन्धं वहति''** इति वायुः। जीवनस्य आधारः वायुः। वायुः विश्वभेषजरूपः। प्राणवायुद्धारा जीवनस्य सञ्चारः भवति। यज्ञे अग्नौ घृतयुक्ताः आहुतयः वायुमण्डलं शुद्धं कुर्वन्ति। वृक्षः वायुमण्डलात् अङ्गाराम्लं गृहित्वा अङ्गारं सञ्चिनोति प्राणवायुम् अम्लजालं निःसारयति। वृक्षः स्वपत्रमाध्यमेन रश्मिप्रतिपालनप्रक्रियया (Photosynthesis) खाद्यं प्रस्तौति। वायुसंशोधने वृक्षाणां भूमिका महत्वपूर्णा। वृक्षाणां छेदनेन वायु-प्रदूषणं वर्धते। वायुमण्डलस्य सुरक्षया जीवनं सुरक्षितं स्यात्।

आकाशः - **''आ समन्तात् कशते प्रकाशते''** इति आकाशः। वायुमण्डलस्य शुद्धिनिमित्तं द्युलोकस्य भूलोकस्य च संरक्षणम् आवश्यकम्। आकाशः पिता पृथिवी माता। द्यौर्न पिता (अथर्ववेद 6, 120,2) द्युलोकस्य अन्तरिक्षस्य वा प्रदूषणेन ऊर्जास्रोतसः हानिः, भूमेः प्रदूषणेन जीवनं च संकटापन्नं भवति।

एतानि भूतानि समन्वितरूपेण प्राणिनां जीवनं धारयन्ति पोषयन्ति च। एकस्यापि विपर्यये सृष्टेः विनाशः अवश्यम्भावी। विश्वस्य तदावरणस्य पर्यावरणस्य च सुरक्षया सृष्टिरियं नूनं रमणीया भविष्यति। सर्वत्र शान्ति विराजताम् इति धिया एतेषां सुरक्षानिमित्तं शान्तिमन्त्रः पठ्यते।

ओं द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः, ओषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिः, विश्वेदेवाः शान्तिः, ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः (यजुर्वेद 36-17)

कामाक्षी, अंजली
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाप्रथमवर्षीया

पर्यावरणसन्दर्भे विचाराः

परितः आवृणोति जीवजगदिति पर्यावरणं शब्दोऽयं (परि + आवरण) इत्यनेन निष्पन्नः जातः।

पर्यावरणसंरक्षणम् अद्यतनस्य एका विश्वव्यापी समस्या वर्तते। अस्माकं देशस्य द्विचत्वारिंशततमे (42) संविधान- संशोधनद्वारा प्रत्येकनागरिकाणां मूलकर्तव्यमस्ति यत् सः प्राकृतिक-पर्यावरणयस्य अन्तर्गते वनानि, सरोवराः वन्यजीवजन्तवः सन्ति तेषां रक्षणम् एवञ्च तेषां संवर्धनाय प्रयासः करणीयः, प्राणिमात्रं प्रति स्नेहं सौख्यं च करणीयः।

पर्यावरण-संबन्धी आचार-संहिता, सर्वेषां जीवमात्रं प्रति आदरभावं तथा च प्रकृतेः सौन्दर्यं रक्षणाय निर्मितमस्ति। पर्यावरणस्यान्तर्गते तत् सर्वं समायोजितं वर्तते यः अस्माकम् इतस्तः वर्तते यथा–पृथ्वी, जलं, वायुः, आकाशः, वृक्षाः, वन्यजन्तवः, भूगर्भखनिजाश्च।

असंतुलितपर्यावरणः एवञ्च मानवाः

1. पर्यावरण-प्रदूषणविषये 1980 तमे वर्षे अमेरिकाराष्ट्रपतिना 'विश्व 2000' इत्यस्य प्रतिवेदने उक्तं–यदि पर्यावरण-प्रदूषणं नियंत्रितं न जायते तदा 2030 तः मानवानां जीवनं दुष्करं भविष्यति।
2. औद्योगिकक्षेत्रं नगरीकरणञ्च स्वमलेन नदीनां जलं दूषितं कुर्वन्ति, येन जलीय-वन्यजन्तुना सह मानवजीवनमपि संकटे अस्ति।

पर्यावरणप्रदूषणस्य कारकानि–

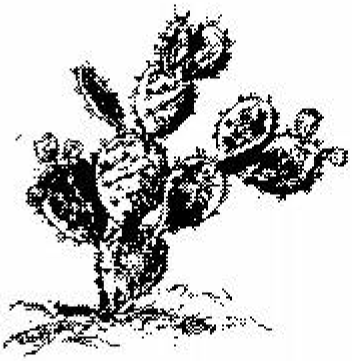

* वायुः प्रदूषणम्
* जलप्रदूषणम्
* भूप्रदूषणम्
* ध्वनिः प्रदूषणम्

पर्यावरणसंबन्धे नीति एवं नियमाः

पर्यावरणसंबन्धे अनेकाः नीति, नियमाधिनियमश्च स्थापिता सन्ति–

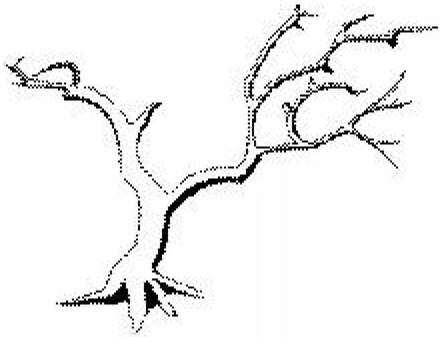

* पर्यावरण-सुरक्षा-अधिनियमम् (1986)
* रीवर बोर्ड्स एक्टम् (1956)
* जल-उपकर-अधिनियमम् (1977)
* वाइल्ड-लाइफ-एक्टम् (1995)
* जैव-विविधता अधिनियमम् (2002)
* स्वच्छ-भारत-अभियानम् (2014) इत्यादि।

निष्कर्षः

पर्यावरणं विज्ञानस्य अभिन्न-अङ्गं वर्तते। मानवस्य उपर्युक्त समस्तघटनानां प्रत्यक्ष-परोक्षरूपेण पर्यावरणेन सह संबन्धं वर्तते। अतः मानवः-धर्मस्य अनुशीलकः पर्यावरण-संतुलनस्य संपोषकः च अस्ति। विश्वं प्राकृतिक-प्रलयात् निवृत्यर्थं विश्वमान्यः सिद्धान्तः अहिंसा एव वर्तते।

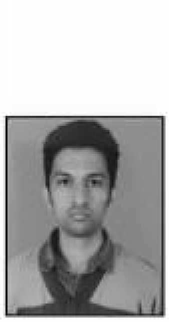

पन्तः, रोहितः

संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीयः

पर्यावरण-प्रदूषणम्

भौतिक-पर्यावरणं प्रकृत्या प्रदत्तं प्राणतत्त्वं रक्षकवचं च वर्तते। जीवमात्रस्य विकासाय पर्यावरणशुद्धि: आवश्यकी वर्तते। "परित: आवृणोतीति....पर्यावरणम्।" अस्मान् परित: भूमण्डलं जलराशि: वायुवृत्तं तेजोमण्डलं नभोमण्डलं च पञ्चमण्डलानि सन्ति। एतेषां प्रभावेण ऋतुचक्रं प्रवर्तते।

सम्प्रति न केवलं भारते अपितु समस्ते भूमण्डले प्राकृतिकासन्तुलनं समुत्पन्नम्। कुत्रचिद् अनावृष्टि: अतिवृष्टि: च भवति साम्प्रतम्। वैज्ञानिकानां मते केवलं पृथिव्यामेव जीवनं वर्तते तदपि प्रदूषणेन शीघ्रमेव विनाशम् एष्यति। अनेनासंतुलनेन असाध्यरोगा: (विषव्रण-कैंसर, हृदयरोग:, रक्तचाप:) समुत्पन्ना:। जनसंख्याविस्फोटेन औद्योगीकरणेन वा प्रदूषणस्य समस्या समुत्पन्ना पञ्चाशद् वर्षपूर्व विश्वस्य जनसंख्या: द्वि-अर्बुदपरिमिता: आसीत्। अधुना तु पञ्चार्बुदपरिमिता: जाता:। जनानाम् आवश्यकतापूर्तये उद्योगानां राजमार्गाणां जलबन्धानां रेलमार्गाणां संचारसाधनानां च विस्तार: अपेक्षित:, अत: स्वार्थनिरतेन मानवेन प्रकृतिकोषात् मृत्प्रस्तरधातुकाष्ठादीनि परिलुण्ठितानि। यदि इत्थमेव प्रदूषणेन तापवृद्धिर्भवेच्चेत् तर्हि ध्रुवक्षेत्रे हिमगलनेन जलप्रलय: भविष्यति। मुख्यरूपेण भूमि-जल-वायु-ध्वनि-प्रदूषणानि सञ्चारितानि।

वायुना कीटाणव: इतस्तत: नीयन्ते। वायुना विना न जीवन्ति जीवधारिण:। पाषाणतैलचालितानि (पैट्रोल) यानानि उपग्रह-प्रक्षेपक-राकेट-यानानि प्रतिक्षणं विषमिश्रितं धूमं वायौ मिश्रयन्ति। अनेन भूमे: शीतोष्णपरिकरबन्ध: विच्छृंखलित: भवति।

मलमूत्रप्रणालीनां तैलशोधकरसायनानां प्रदूषितजलेन कूपनदीजलाशयानां जलराशि: विषाक्ता भूत्वा विषूचिकापाण्डु-जलोदररोगान् जनयति। कीटनाशकानां वर्धमानेन प्रयोगेण पृथिव्या: अन्नफलादीनि प्रदूषितानि जातानि। महानगरेषु वाहनानां निर्बाध-प्रचलनेन ध्वनि-प्रसारयन्त्र-विज्ञापनेन नूतनयन्त्राणां निनादेन कर्णस्फोटकध्वनि: रात्रिन्दिवं समुत्पद्यते। तेन मानवस्य मन:शान्ति:-विलुप्ता, जना: अनिद्रारोगेण विक्षिप्ता: इव सन्ति।

पर्यावरण-प्रदूषण-निरोधाय जना: यत्र तत्र ष्ठीवनं मलमूत्र-प्रक्षेपणं न कुर्यु:। गृहस्य रथ्यायाश्च प्रणाल्य: स्वच्छा: स्यु:। बालका: युवका:, कृषका: युवत्यश्च विद्यालयेषु, उद्यानेषु क्षेत्रेषु गृह-उद्यानेषु आधिक्येन वृक्षारोपणं कुर्यु:। वृक्षच्छेदनकानां कृते दण्डव्यवस्था भवेत्। महानगरेषु मध्ये सघनानां हरितानाम् उद्यानानां विकासेन वायु-प्रदूषणं न्यूनं कर्तुं शक्यते। वस्तुत: समस्यानां निराकरणं युक्तिसंगतेन समाधानेन सम्भवम्। वर्तमानयुगे पर्यावरणशोधनस्य परमावश्यकता। प्रबुद्धा: भारतीया: पुरा वायुशुद्ध्यर्थं हवनादिकम् अकुर्वन्। ते वृक्षारोपणं सूर्य-पवन-वरुण-वनस्पतीनां स्तुतिम् अकुर्वन्। येन ते सुखेन स्वजीवनं यापयामासु:।

कुमारी, रानी
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाया: तृतीयवर्षीया

आयुर्वेदः

प्रत्ययेषु अपि अधिकतया कृत्प्रत्ययानां प्रयोगः आयुर्वेदीयग्रन्थेषु प्राप्यते। तत्रापि क्त-क्त्वा-ल्यप्-यत्-ल्युट्-ण्वुल्-आदीनां प्रत्ययानां प्रयोगाधिक्यम् अस्ति। यथा-

अनुरक्त, स्मृता, आक्षिता, स्मृत्वा, विधेयः, आधाः, शमनम्, कोपनम्, वमनम्, परिचारकः।

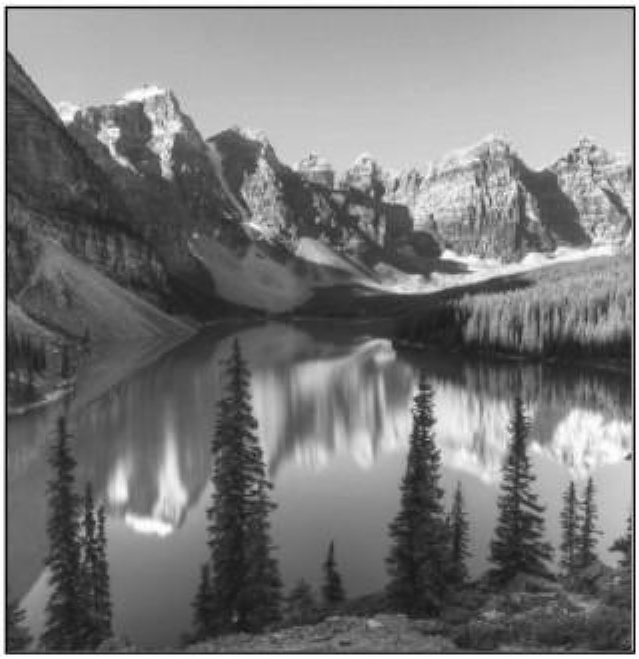

अवधातव्यं यत् एतेषां बोधनाय आयुर्वेदीयशब्दाः एव स्वीकृताः सन्ति। आयुर्वेदीयग्रंथेषु कीदृशस्य सन्धेः प्रयोगः अस्ति। कीदृशः समासस्य प्रयोगः अस्ति इत्येवम् अन्विष्य पाठे प्रदर्शितम् अस्ति। येन आयुर्वेदस्य पठनं कालक्रमेण सरलं भवति। एतानि पुस्तकानि पठित्वा कोऽपि साक्षात् अन्येषाम् आयुर्वेदीयग्रंथानाम् अध्ययनम् अनुवादं विना कर्तुं शक्ष्यति।

चतुर्थे मार्गे तु अष्टाङ्गहृदयसूत्रस्थानस्य पञ्चदश अध्यायाः स्वीकृताः सन्ति। अत्र प्रायेण उपसहस्त्रं श्लोकाः सन्ति। अस्य चतुर्थस्य भागस्य भागत्रयं कृतम् अस्ति। अत्र प्रत्येकं श्लोकस्य पदच्छेदः पदपरिचयः पदार्थः अन्वयः तात्पर्यं व्याकरणांशाः च प्रदत्ताः सन्ति। व्याकरणांशे प्रत्येकं श्लोके विद्यमानानां सन्धि-समासादीनां परिचयः प्रदत्तः अस्ति। कश्चित् अवधेयम् इत्यपि दत्तम् अस्ति येन विषयस्य अवगमनं सारल्येन स्यात्।

इत्थम् आयुर्वेदीयग्रन्थेषु प्रयुक्तायाः भाषायाः आधारेण संस्कृतभाषाज्ञानवर्धनाय कौशलविकासाय च अत्रत्याः पाठः सञ्जीकृताः सन्ति। अस्मिन् पाठ्यक्रमे प्रत्येकं पाठ्यबिन्दोः उपस्थापनाय अभ्यासाय च आयुर्वेदीयग्रन्थेषु उपलब्धानि वाक्यानि अधिकतया स्वीकृतानि सन्ति। अस्मिन् पाठ्यक्रमे नामाङ्कनं कर्तुम् अत्र नुदतु।

आयुर्वेदाचार्याः सर्वान् अनुगृह्णन्तु इति आशास्य विरम्यते।

संजना
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाद्वितीयवर्षीया

योगस्य महत्त्वम्

ऐतिहासिकरूपेण इयं कथनं सुतरां कठिनं वर्तते। यत् साम्प्रतं भारते योगविद्याया: प्रसार: वर्धित:। योगविद्याया: आविर्भावविषये अनेकेषु ग्रन्थेषु यथाकालं प्रतिपादितं समुपलभ्यते।

अत: आबाहुकालाद् इयं विद्या प्रचलने प्रकाशने चासीदिति। इयं विद्या विश्वे सर्वान् प्राणिन: अनुप्राणितवती, अनया विद्यया एव अनेके स्वीयं सर्वविधं लक्ष्यं मार्गदर्शनं च प्राप्तवन्त:।

योग-शब्दस्य सामान्यार्थ:

सामान्यरूपेण योग-शब्दस्य अर्थ: वर्तते मेलनं योजनं समाधिं संयमनं वा, संस्कृतव्याकरणानुसारन्तु अनेकधातुभि: निष्पद्यते, यथा युजिर्-योगे, युज्-समाधौ, युज्-संयमने।

योग-शब्दस्य अर्थ:–नानाग्रन्थेषु योगस्य वर्णनं प्राप्यतेऽनेके आचार्या: च यथाकालं परिस्थित्यनुगुणं योगं वर्णयन्ति प्रतिपादयति च वेदान्तानुसारम्-जीवात्मन: परमात्मन: च सम्पूर्णमेलनं योग:।

पतञ्जल्यनुसारम् - योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:।

गीतानुसारम् - योग: कर्मसु कौशलम्, समत्वं योग: उच्यते।

योग: स्वरूपम्

मोक्षप्रदचित्तवृत्तिनिरोध: एव योग: उच्यते। येन चित्तवृत्तिनिरोधेन समाधिना वा कैवल्यप्राप्ति: न स्यात् अर्थात् जीवात्मा स्ववास्तविकरूपे प्रतिष्ठितो न स्यात्, स: चित्तनिरोध: समाधिमात्रं वर्तते, न तु योग:। तथ्यमिदं वर्णयितुं शक्नुम: यद्यपि प्रत्येकं योग: समाधिरस्ति किन्तु प्रत्येकं समाधि: योग: नास्ति इति। केचन विशिष्टसमाधय: एव योग इति उच्यन्ते। समाधिद्वयमेव चित्तवृत्तिनिरोधे सहाय्यम् आचरति अत: सूत्रकार-भाष्यकारानुसारेण केवलं समाधिद्वयं वर्तते।

प्राचीनकाले योगस्य परम्परा

प्राचीनभारतीय-दार्शनिक-विचारधारायां योग: सर्वत्र मुख्यतया मुख्यावयत्वेन अङ्गीक्रियते। मन्यते च, वैदिकविचारधाराया: दृष्टौ यदि योगं पश्याम: तर्हि अनेकेषु स्थलेषु स्पष्टतया योग: वर्णित: वर्तते। विविधविदुषां मननं वर्तते यत् योग: ऋग्वेदे, यजुर्वेदे, अथर्ववेदे अनेके स्थलेषु वर्णित: वर्तते। तानि च उदाहरणानि

यस्माद‍ृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन स धीनां योगमिन्वति।

एतेन प्रमाणेन ज्ञायते यत् भारते योगस्य परम्परा सुदीर्घा प्राचीना च वर्तते। महर्षियाज्ञवल्क्य: योगं परिभाषयन् उक्तं यत्-संयोग: योग: इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो इति अर्थात् जीवात्मपरमात्मनो: संयोगवस्थाया: नाम योग: वर्तते। एवमेव कठोपनिषदि अपि वर्णिता: वर्तते।

मैत्रायण्युपनिषदि यथा-

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च
सर्वभावपरित्यागे योग: इत्यभिधीयते।

प्राणानां मनस: इन्द्रियाणामेकत्वं, एकाग्रावस्था प्राप्ति ब्रह्मविषयेभ्य: विरक्ति: इन्द्रियाणां मनसि, आत्मनि, प्राणानां निश्चलता एव योग: वर्तते।

योगस्य आधारतत्वानि।

यजुर्वेदे वर्णितं यत् योगे-योगे तवस्तरं वाजे-वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूर्तये।

पौनः पुन्येन अभ्यासबलेन ईश्वरस्य योगस्य वक्ता नास्य पुरातनः, प्रथमवक्ता हिरण्यगर्भः वर्तते।

सांख्यस्य वक्ता कपिल-परमर्षि उच्यते।

हिरण्यगर्भः योगस्य वक्ता नास्य पुरातनः, हिरण्यगर्भः एव परमात्मा वर्तते। हठयोगप्रदीपिकायाम् आदिना आदिनाथ शिव-शिवं एव प्रवर्तकः।

योगस्य विकास-क्रमः

वेदाः संसारस्य आदिग्रन्थाः सन्ति। सृष्टेः आरम्भे अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरानामकाः ऋषयः परमात्मप्रेरणया वेदानां सर्जनम् अकार्षुः। योगस्य महती काचित् परम्परा वेदेषु अवलोक्यते। यजुर्वेदे युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।

योगस्य आवश्यकता

सम्प्रतिकाले योगस्य महती आवश्यकता दृश्यते। बहुशः जनाः रोगैः आक्रान्तः सन्ति, योगमाध्यमेन एकत्र रोगाणां निवृत्तिः भवति। अपरत्र जीवने स्फूर्तिरपि जायते।

अत्यन्तेऽस्मिन् व्यस्तकाले शारीरिकस्वास्थ्यरक्षणाय योगस्य महती आवश्यकता वरीवर्ति!

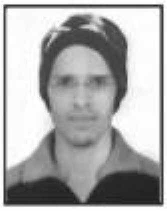

पन्तः, नीरजः

संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीयः

सर्वेषाम् औषधं मनसः समाधानं

रोगैः पीड्यमाना वयं चिकित्सालयं प्रति धावामः। वैद्यानां संनिधौ नम्रा भूत्वा परिहाराय याचामहे। ते स्वानुभवानुसारेण किमपि औषधं ददते। अदृष्टानुसारेण कदाचिद् व्याधिः कदाचिद्वर्धते। उल्लंघनस्य मुख्यं कारणं मनः। मनः प्रसादो यदि भवति, तर्हि व्याधयः स्वयं दूरीभवन्ति। उक्तं च भगवता कृष्णेन इति।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

यस्य मनः सदोद्विग्नं भवति, तस्योपरि कस्यापि औषधस्य प्रभावो नास्ति। श्रेष्ठेन धन्वंतरिसमानेन वैद्येन औषधं दत्तं, तथापि रोगो न शान्तः, रोगी लोकान्तरं गत इति तद्बन्धवो रुदन्ति। किन्तु तत्र वैद्यस्य वा औषधस्य वा दोषो नास्ति। रोगिण एव दोषः। तस्य खलु मनः क्षुब्धम्। यथा श्रेष्ठाया अपि धन्वाः क्षीरं निर्दोषमपि सकश्मले पात्रे निहितं विक्लत्रं नष्टगुणं स्यात्तथा। अतोऽस्माभिः प्रथमं मनसः प्रसन्नत्वं साधनीयम्। कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि यदि मुञ्चामस्तर्हि मनः प्रसन्नं स्यादेव। एतैः षड्भिःदुःखं परित्यक्तं मनः स्वयं निर्मलं रमणीयं प्रसन्नं च भवति। देवपूजा, पुराणश्रवणं मंत्रजपः इत्येतत् सकलं मनसः प्रसन्नत्वाय भवति। देवपूजावेलायां मन्त्रजपवेलायां वा भार्यायै क्रुध्यन् पुरुषो यदि गालीः प्रयुङ्क्ते तर्हि सा पूजा विडम्बना, स च जपो निष्फलः। मम मनसः प्रसन्नता देवपूजया न भवति, अपि तु सम्यकं कन्दुक-क्रीडयैव भवतीति चेत्तदेव कुरु। संगीताकर्णनेन मम मनसः प्रसन्नतेति चेत् सङ्गीतमाकर्णय। मुख्यं किमिति आलोक्य-तत्साधनार्थं किमपि कुरु। किन्तु पापाचरणे मतिं मा कार्षीः। सत्यम् अत्यक्त्वा, हिंसाम् अकृत्वा, परोपकारम् अविधाय येन केनापि मार्गेण मनः प्रसन्नतां साधय, सैव औषधायते। मनः समाधानं विना कृतं सकलं विफलम् इति जानीहि।

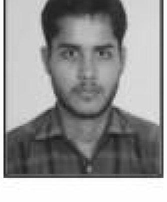

कुमारः, आशुतोषः

संस्कृतविज्ञकलास्नातकतृतीयवर्षीयः

योग-दर्शनम्

भारतीयेषु षड्सु दर्शनेषु महर्षिणा पतञ्जलिना विरचितम् अन्यतमं 'योगदर्शनम्' इदं दर्शनं प्रमुखं स्थानम् आवहति। 'युज-समाधौ' इति धातोः 'घञ्' प्रत्ययेन योगः इति पदं सिद्ध्यति। अतः योगः नाम समाधिः तन्नां परमात्मना परमात्मनः साक्षात्कारः अर्थात् 'अन्तः विद्यमानस्य आत्मतत्त्वस्य परमात्मतत्त्वेन सह योजनम्' इति।

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' (योगदर्शनम्, समाधिपादः, 2)

इति सूत्रे महर्षिः पतंजलि कथयति। प्रमाणं, विपर्ययः, विकल्पः, निद्रा, स्मृतिः इति एताः पञ्च वृत्तयः सन्ति। यदा एताः वृत्तयः अभ्यासेन वैराग्येण च मनसि विलीनाः भवन्ति। यदा च मनः आत्मनः स्वरूपे दृढतया सम्मिलितं भवति तदा सा स्थितिः योगः इति कथयितुं शक्यते। एवं च 'शरीरम् आद्यं खलु धर्मसाधनम्' (कुमारसम्भवम्) अर्थात् अनारोग्ये जीवनम् अपूर्णं चेतना-रहितं कष्टयुक्तं च भवति। यदि अस्माकं शरीरं स्वस्थम् अस्ति तर्हि जीवनं सुखमयं परन्तु यदि शरीरम् अस्वस्थं तर्हि जीवनं दुखमयम् एव। एते विषयाः महर्षिणा पतंजलिना 197 सूत्रेषु स्थापिताः। एतेषां सूत्राणाम् अर्थम् अवगमनाय 'व्यासमुनिना व्यासभाष्यम्। सदाशिवेन्द्र-सरस्वतिना योगसुधाकरः भोजेन भोजवृत्तिः अन्यैः वाचस्पतिमिश्रादिभिः आचार्यैः अपि बहुन्यः व्याख्याः कृताः सन्ति। किन्तु एते ग्रन्था संस्कृतेन लिखिताः सन्ति। सामान्यजनानां तेषां भाषाम् अवगन्तुं कष्टकरं स्यात्। अतः योगग्रन्थानां भाषायाः अवगमनाय योगस्य भाषा संस्कृतं पठ्यताम् इति कश्चन पाठ्यक्रमः 'संस्कृत-संवर्धन-प्रतिष्ठानेन' निर्मितः अस्ति। योगस्य भाषा इत्येनन योगग्रन्थेषु प्रयुक्तायाः संस्कृतभाषायाः शैली इति अभिप्रायः अस्ति।

प्रत्येकमपि शास्त्रस्य काचित् स्वकीया भाषा भवति। यथा-गीतायाः भाषा भिन्ना, न्यायशास्त्रस्य भाषा भिन्ना, विज्ञानस्य भाषा भिन्ना, वेदान्तस्य भाषा भिन्ना, तथैव योगस्य भाषा अपि भिन्ना।

अस्मिन् पाठ्यक्रमे योगसूत्रेषु प्रयुक्तायाः संस्कृतभाषायाः पाठनं क्रियते। योगसूत्रेषु प्रमुखतया समासानाम्, सन्धीनाम्, कृदन्तपदानाम्, अव्ययानां च बाहुल्येन प्रयोगः दृश्यते। तेषां पाठनम् अस्मिन् पाठ्यक्रमे प्रमुखतया चत्वारः भागाः सन्ति।

- अत्र प्रथमे भागे संस्कृतसम्भाषणाय आवश्यकानां बिन्दुनां परिचयः प्रदत्तः अस्ति। अर्थात् योगस्य शब्दाः सम्भाषणे प्रयुक्ताः सन्ति। तेषां द्वारा कथं सम्भाषणं करणीयम् इति प्रदर्शितम् अस्ति।
- द्वितीय भागे विभक्तिनां परिचयः, हलन्तशब्दाः, विशेष्यविशेषण परिचयः, लकाराः कर्मणिप्रयोगः भावेप्रयोगः प्रयोगपरिवर्तनं च इत्यादयः विषयाः प्रदर्शिताः सन्ति। एतेषाम् उपस्थापनाय योगग्रन्थेभ्यः विषयाः पदानि च स्वीकृतानि सन्ति। अत्र विभिन्नाः सम्भाषणात्मकाः पाठाः सन्ति।
- तृतीये भागे संस्कृतव्याकरणस्य मुख्यानि तत्त्वानि बोधितानि सन्ति। यथा-सन्धिः, समासः, कारकम्, कृदन्तः, तद्धितान्तः, सनाद्यन्तं णिजन्तं च इत्यादीनि।

अवधातव्यं यत् एतेषां बोधनाय योगग्रन्थेभ्य: शब्दा: एव स्वीकृता: सन्ति। कीदृशे: सन्धे: प्रयोग: अस्ति, कीदृशस्य समासस्य प्रयोग: अस्ति इत्येवं योगसूत्रेषु अन्विष्य पाठे प्रदर्शितम् अस्ति। एतानि पुस्तकानि पठित्वा कोऽपि साक्षात् अन्येषां सदृशग्रन्थानाम् अध्ययनम् अनुवादं विना कर्तुं शक्ष्यति।

• चतुर्थ-भागे सर्वाणि योगसूत्राणि सन्ति। अत्र प्रत्येकं सूत्रस्य सन्दर्भ-पदच्छेद:, अन्वय:, व्याकरणात्मकं विवरण-भावार्थ: च प्रदत्त: अस्ति।

इत्थं योगग्रन्थेषु प्रयुक्ताया: भाषाया: आधारेण संस्कृतभाषाया: ज्ञानवर्धनाय कौशलविकासाय च तदनुगणं पाठा: सुसज्जीकृता: सन्ति। अस्मिन् पाठ्यक्रमे प्रत्येकं पाठ्यबिन्दो: उपस्थापनाय अभ्यासाय च अधिकतया योगग्रन्थेभ्य: नामाङ्कनं कर्तुम् अत्र नुदतु निश्चयेन अयं पाठ्यक्रम: योगशास्त्रम् अवगन्तुम् अत्यन्तम् उपकारक: भविष्यति इति आशास्महे।

तिवारी, मयंक:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठाद्वितीयवर्षीय:

योग: कर्मसु कौशलम्

योग: भारतस्य आधार: अस्ति।
योगं विना वयं स्वस्था: सानन्दा: च भवितुं न शक्नुम:।
सर्वप्रथम-महर्षिपतञ्जलिना योगसूत्रं प्रतिपादितम्।
अस्मिन् ग्रन्थे अष्टांग-योगस्य वर्णनम् अस्ति।
सम्प्रति महानगरे प्रदूषणस्य समस्या अस्ति।
ध्वनि:, वायु: एवं जलप्रदूषण: महानगरेषु जीवनस्य विकटसमस्या अस्ति।
एकल: परिवार: महानगरस्य यथार्थ:, एतेन कारणेन जना: रुग्णा: भवन्ति।
समयाभावेन जनेषु परस्परं प्रेम: स्नेह: च नास्ति।
वयं सर्वे तनावग्रस्ता: भवाम:।
अतएव अस्माभि: नूनं योग: करणीय:।
प्रतिदिनं प्रात: सायं योगं पूजनीयम्।
केवलं योगेन वयं स्वस्था: भविष्याम: शारीरिकं मानसिकं च पुष्ट्ये योग: महत्वपूर्ण: अस्ति।
गीतायाम् अपि कथ्यते–
अधुना अखिलं विश्वम् अपि जून-मासस्य एकविंशतितिथिं योगदिवस: इति मन्यते।
समस्तदेशा: सम्प्रति योगस्य महत्वं स्वीकुर्वन्ति।
जयतु योग: जयतु भारत: एवं जयतु विश्वम्।

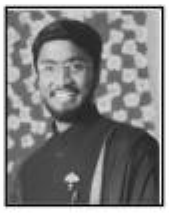

केशरी, सागर:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीय:

योगपर्यावरणयोः सम्बन्धः

पर्यावरणम्

निरन्तरं वर्धमानं प्रदूषणं सर्वेषां चिन्तायाः विषयः यतोऽहि प्रदूषणेन मनुष्याः रुग्णाः सञ्जायन्ते, वायुजलमृद्भिः परिमण्डिते वातावरणे वयं निवसामः एतदेव वातावरणं पर्यावरणं शब्देन उच्यते, सम्प्रति न केवलं भारते, अपितु समस्ते भूमण्डले प्राकृतसन्तुलनं नष्टप्रायं कुत्रचित् अनावृष्टिः, कुत्रचित् अतिवृष्टिश्च भवति। पर्यावरणेनैव वयं जीवनोपयोगीनि वस्तूनि प्राप्नुमः। साम्प्रतं शुद्धपेयजलस्य समस्या वर्तते, अधुना वायुरपि शुद्धा नास्ति, तेन विविधाः रोगाः संजायन्ते, पर्यावरणस्य रक्षायाः अत्यावश्यकता वर्तते, यावत् देशस्य नागरिकः पर्यावरणस्य रक्षणे दृढनिश्चयः न भवति तावत् अस्याः समस्यायाः समाधानं न कर्तुं शक्यते। अस्याः समस्यायाः समाधानाय स्थाने-स्थाने विविधाः वृक्षाः रोपणीयाः, विद्यालयेषु वृक्षारोपणदिवसस्य आयोजनं कर्त्तव्यम्। पर्यावरणविषये गोष्ठीनाम् आयोजनं भवेत्। यदि सर्वे नागरिकाः पर्यावरण-रक्षणाय कृतसंकल्पाः भवेयुः तर्हि किमपि न दुष्करं-

विश्वस्य सर्वप्राचीन-ग्रन्थे ऋग्वेदेपि पर्यावरणविषये उक्तं यत्-

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः
तेन नो देहि जीवसे॥

अर्थात् वायौ अमृतम् (ऑक्सीजन) अस्ति। तं विनष्टं न कुर्यात् अस्याभिप्रायो वर्तते यत् एतादृशं किमपि कार्यं न करणीयं येन वायौ अमृतस्य (ऑक्सीजन) न्यूनता भवेत्।

योगः

योग-शब्दः युजिर् धातोः निष्पद्यते यस्यार्थमेलनं जीवपरमात्मनोः ऐक्यं तादात्म्यभावश्च योगः उच्यते। महर्षि पतञ्जलिनापि-**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** इत्युक्तम् अर्थात् योगस्य सम्बन्धः साक्षात् चित्तेन सह वर्तते। चित्तस्य च पञ्चवृत्तयः **'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'** आसां वृत्तिनां निरोधः एव योगः उच्यते, अपि चोक्तं महर्षिणा योगसूत्रे-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

अर्थात् योगस्य सम्बन्धः न केवलं चित्तेन सह अपितु वाचा शरीरेण कर्मणा चापि वर्तते।

अतः तेन योगस्य अष्टाङ्गानि वर्णितानि। योगः भारतस्य आधारः अस्ति। योगं विना वयं स्वस्थाः सानन्दाश्च न भवितुं शक्नुमः। अधुना अखिलं विश्वमपि जून-मासस्य एकविंशतितमे दिनाङ्के योगदिवसं समायोजयन्ते, समस्तदेशाः सम्प्रति योगस्य महत्वं स्वीकुर्वन्ति।

योगपर्यावरणयोः सम्बन्धः–अस्माकं परितः प्रकृतिरेव पर्यावरणरूपेण उपस्थिता वर्तते। तया सह अस्माकं साक्षात् सम्बन्धो वर्तते। यतोऽहि वयमपि प्रकृत्या भिन्नाः न प्रकृत्यामेव वयं खादामः, भ्रमामः सर्वाणि कार्याणि च कुर्मः। प्रकृतिरेव अन्नजलादिरूपेण पञ्चभूतादिरूपेण च अस्मासु उपस्थिता वर्तते। अतः प्रकृत्या विना अस्माकं जीवनस्य कल्पनाऽपि न भवितुं शक्नोति। पर्यावरणस्य प्रभावः अस्माकं न केवलं शरीरेण वर्तते अपितु मनसा, वाचा कर्मणाऽपि वर्तते। यथा पर्यावरणस्य सम्बन्धः तेन सह वर्तते तथैव योगस्याऽपि सम्बन्ध मनसावाचाकर्मणा शरीरेण च वर्तते। अतः वक्तुं शक्यते यत्–योगस्य पर्यावरणेन सह अभिन्नः सम्बन्धः वर्तते, प्रकृतिं प्रति रुचिः प्रेमश्चापि एको योगो वर्तते।

वर्तमानजीवने मानवाः आर्थिक-विकासार्थं, भौतिक विकासार्थञ्च यत्र-तत्र भ्रमन्ति, परन्तु जनाः तेन सह जीवनयापनस्य कलामपि-विस्मृतवन्तः, तस्माद् कारणाद् ते प्रकृत्याः अत्यधिकं शोषणं-कृतवन्तः तच्छोषणात् जनाः शारीरिकरोगग्रस्ताः, मानसिकरोगग्रस्ताः बौद्धिकादिरोगग्रस्ताः च भवन्ति। तत् शोषणजन्यात् उत्पद्यमानां समस्यानां एकैव उपायो वर्तते सः योगः। अतः अवश्यमेव योगः करणीयः।

योगात् लभते स्वास्थ्यं,
दीर्घायुष्यं बलं सुखं।
आरोग्यं परमं भाग्यं,
स्वास्थ्यं सर्वार्थसाधनम्।

नौटियालः, चन्द्रमोहनः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरद्वितीयवर्षीयः

काश्मीर

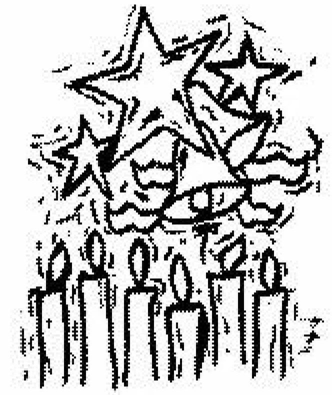

जगति स्वर्गः इति यदि कश्चित् वर्तमानः
काश्मीरः काश्मीर एव खलु सः, अन्यः कः?
कल्पितं कौतुकस्येदं वेयं अन्धबधिरश्रुतिः
मातैव मुञ्चति मृगमत्र हा हन्त कुसृतिः!
योषिदत्र न माता न प्रिया नापि स्वसा
अकृतस्यापराधस्य गृहिणी दण्डग्राहिणी
विधवा भाग्यशीलात्र अर्धविधवाखनिरमुत्र
कुड्यं कुसृतं यत्र कीलनेन हा महारक्षा!
कुप्वाराक्रन्दनं क्रुष्टं समज्यया मीडियया तथा
किन्तु कृत्रिमा कार्या कुचलति द्रविद्रशकपरा
कूजनेन को लाभः क्रन्दनं कर्णे यदा
हा हन्त! अरिरन्तश्चेत् हरिणापि किं तदा?
स्थितेरभावे छन्दोभिः किम्?
मर्यादोल्लङ्घने मात्राभिः किम्?
तथापि भो भारतीयाः भारत्यां वा श्रुत्वैतत्
जागरिताः जगन्ति भवन्ति इति
खलु विश्वासः! हा केवलं विश्वासः!

झा, निधिः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरप्रथमवर्षीया

पर्यावरण-संरक्षणम्

यत् परितः आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्। भूमण्डलं वायुमण्डलं जलमण्डलं च अन्यानि तत्त्वानि जगत् आच्छादयति, अतः पर्यावरण-शब्देन मृत्तिका, जलं, वायुः, आकाशश्च गृह्यन्ते, ये प्राणिनं परितः आच्छादयन्ति, तेषां जीवनं च प्रभावयन्ति। यद् एतान् प्रदूषयति तं पर्यावरण-प्रदूषकं कथ्यते। मानवः स्वव्यवहार-क्रिया-कलापेन अवशिष्टपदार्थानाम् ऊर्जायाश्च विमोचनेन यत् प्राकृतिकं सन्तुलनं दूषयति, तत् पर्यावरण-प्रदूषणम् इति कथ्यते।

विश्वेषु मुख्यानि प्रदूषणानि सन्ति-वायु-प्रदूषणं, जल-प्रदूषणं, भूमि-प्रदूषणं, ध्वनि-प्रदूषणं, रेडियो-धर्मी-प्रदूषणं च।

वायुमण्डले विविधगैसाः विशेषानुपाततः सन्ति। यदा औद्योगिकीकरणेन अन्यैर्वा कारणैः तत् प्राकृतिकम् अनुपातं विनश्यति, तदा वायुप्रदूषणं भवति। अस्य निराकरणार्थं धूम्रत्याग-पराणां यानानां न्यूनता विधेया वृक्षारोपणं विधेयम्। वनानां संरक्षणं भवेयुः।

तडाग-नद्यादीनां जलम् उपशिष्टादि-त्यागेन प्रदूष्यते। जल-प्रदूषण-निरोधार्थं-तडाग-नद्यादिषु मलमूत्रादिकम् अन्यद् अपशिष्टपदार्थं च न प्रवाह्यम्।

भूमिरेव जनानां जीवनं-साधनम्। यदा रासायनिकोर्वरकैः- पदार्थैः भूम्या उर्वराशक्तिः क्षीयन्ते, तदा तत् भूप्रदूषणं भवति। तस्य रक्षणार्थं कीटनाशक-रसायनानां प्रयोगः नियन्त्रितः स्यात्। औद्योगिकम् अपशिष्टम् अन्यत्र क्षेप्यम्।

ध्वनिः विचाराणां संप्रेषणस्य महत्त्वपूर्णं साधनम्। ध्वनि-विस्तारक-यन्त्रादीनाम् उच्चध्वनिः कर्णरोगं शिरोवेदनां रक्तस्यापि वृद्धिं च करोति। एवं ध्वनि-प्रदूषणं विविध-रोगाणां जनकः। ध्वनि-प्रदूषण-नियन्त्रणार्थं तीव्रध्वनि-कारक-यन्त्राणां स्थाने सामान्यध्वनि-कारकानि यन्त्राणि योजनीयानि तीव्र-ध्वनिकारकेषु यन्त्रादिषु प्रतिबन्धो विधेयम्।

संस्कृत-साहित्ये पर्यावरण-संरक्षणम् – भारतीय-संस्कृत-साहित्ये पर्यावरण-संरक्षण-विषयकं पर्याप्तं चिन्तनं प्राप्यते। वैदिक-वाङ्मयेषु, स्मृतिषु, पुराणग्रन्थेषु च पर्यावरण-संरक्षणाय बहुधा चिन्तनं लभ्यते।

अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरण-संघटकतत्त्वेषु तत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते। एतानि पर्यावरणं निर्मापयन्ति तानि आपः, वाताः, ओषधयः च सन्ति।

यथा-

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः, तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि॥ (अथर्व.)

वायुः प्राणिनां जीवनदायकं शक्तिरस्ति। अतस्तस्य संरक्षणम्-आवश्यकम्। वायोः संरक्षणस्य विषये वेदे चिन्तनमस्ति-वायुः सूर्यश्च जगतः संरक्षकौ स्तः। वायुः, वर्षा, अग्निश्च प्रदूषणानि नाशयन्ति।

यथा-

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः। (ऋग्.)
वातः पर्यन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्। (अथर्व.)

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः (अथर्व.)

वेदेषु द्यावा-पृथिव्योः संरक्षणस्य बहुधा निर्देशाः प्राप्यन्ते। भूमिः सस्यसंपदां ददाति। पृथिवीं न प्रदूषय।

यथा-

पृथिवीं दृंह, पृथिवीं या हिंसीः। (यजु.)

ऋग्वेदे वर्णनमस्ति वृक्षारोपणं सर्वोत्तमं कार्यं, एते प्रदूषणं नश्यन्ति प्राणवायुं ददति, जल-स्रोतांसि रक्षन्ति, मृदा च संरक्षन्ति। यथा-

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
नि षू दधिध्वम् अरवनन्त उत्सम्। (ऋग्.)

अतः एवं संस्कृत-साहित्ये पर्यावरणरक्षणार्थं बहुविधं वर्णनम् उपलभ्यन्ते।

रंजना
संस्कृत-विभागस्य स्नातकप्रतिष्ठातृतीयवर्षीया

वैदिक-वाङ्मये पर्यावरणम्

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

ईशावास्योपनिषदः मन्त्रमिदं संस्कृतवाङ्मये पर्यावरणस्य महत्त्वपूर्णं चिन्तनं प्रददाति। अत्र प्रतिपाद्यते यत् ईशाधिवासितेन अखिलेयं सृष्टिः आदरणीया संरक्षणीया च वर्तते। मानवेन प्रकृतिसंसाधनानामुपभोगः करणीयः परञ्च भोगवादीप्रवृत्या न अपितु तत्र त्यागभावनायाः प्राधान्यं स्यात्। पर्यावरणस्य व्युत्पत्तिलभ्यः अर्थः भवति–परि + आवरणम्। परितः आव्रियते आच्छाद्यते येन तत् पर्यावरणम्। पारिभाषिकरूपेण चैवं वक्तुं शक्यते यत् कस्यापि जीवं परितः समस्तः जीव-अजीवश्च परिवेशमेव पर्यावरणमस्ति यस्मिन् सः निवसति। अनया दृष्ट्या वायुः, मेघः, भूमिः, अग्निः अपि च जीव-जन्तवः अपि पर्यावरणस्य तत्त्वानि सन्ति।

वैदिक-वाङ्मये पर्यावरणीय तत्त्वानां विवेचनम्–प्राचीनतम ऋग्वेदस्य प्रारम्भैव अग्निसूक्तेन भवति। अनेन अग्नेः पर्यावरणीय महत्त्वं लक्ष्यते। अग्नये पावकः शब्दस्य अपि प्रयोगः क्रियते। 'पावक' शब्दस्य अर्थः भवति–पवित्र-कर्ता। यदि अग्नौ हविः दीयते चेत् तेन वातावरणस्य शुद्धिः भवति। अनेन प्रकारेण प्रदूषण-नियन्त्रणस्य प्रमुखं साधनं भवति 'अग्निः' इति। अतैव ऋग्वेदस्य प्रारम्भैव अग्ने महत्त्वं दर्शितम्–

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्त्विजं होतारं रत्नधातमम्

ऋग्वेदस्य वातसूक्ते अपि वायुं प्रार्थयन् तं (वायुं) हृदयाय परमौषधिः कल्याणकारी आनन्ददायकञ्चोक्तम्

वात आवातु भेषजं शंभु मयो भु नो हृदे।
प्रण आयुंषि तारिषत्।

ऋग्वेदस्य विश्वामित्र-नदी संवादः—नदीमानवयोः पारस्परिकतां द्योतयति। वेदेषु नदी चराचरजगतः मातृरूपेण प्रतिपादिता—

यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा
विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः।

ऋग्वेदे 'महद् उल्व' इति नाम्ना ओजोन-स्तरस्य अपि वर्णनमपि प्राप्यते। अयं ओजोन-स्तरः पृथिवीं गर्भस्थशिशुमिव सुरक्षतां ददाति—

महत् तदुल्वं स्थविरं तदासीत्।
येना विष्टितः प्रविवेशिथापः॥

वैदिक-वाङ्मये पृथिवी मातारूपेण द्यौ च पितारूपेण प्रतिपादितः अस्ति। पृथिवी समस्तजीवान् मातृवत् परिपालयति अपि च द्यौरपि पितृवत् सहाय्यं करोति।

पृथिवी माता द्यौष्पिता (यजुर्वेद)
अवतां त्वा द्यावा पृथिवी,
अव त्वं द्यावा पृथिवी।

अपि च अथर्ववेदे भूमिमातारूपेण मानवाश्च तस्य पुत्ररूपेण प्रतिपादिताः—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अतः निष्कर्षतः एतद् वक्तुं शक्यते, समग्रे वैदिकवाङ्मये पर्यावरणस्य महत्ता अस्ति। आधुनिकाः पर्यावरणचिन्तकाः पर्यावरणशास्त्रस्यान्तर्गते येषु बिन्दुषु गहनं चिन्तनं कुर्वन्ति। प्रायः तेषां प्रतीकात्मकं चिन्तनं वैदिक-वाङ्मये प्राप्यते। सम्प्रति पर्यावरणीय-समस्यानां समाधानाय ये निर्देशाः दीयन्ते ते समेऽपि निर्देशाः वैदिकवाङ्मये प्राप्यन्ते।

पाण्डेयः, प्रणवः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरप्रथमवर्षीयः

वेदेषु पर्यावरणस्य महत्त्वम्

वयं भारतीया: सन्ति, भारतदेशविविधता परिपूर्णम् अस्ति, बहव: साम्प्रदायिक-जना: परस्परसौहार्दपूर्णा: निवसन्ति केऽपि जना: द्वेषपूर्ण-व्यवहारं न व्यवहरन्ति तस्य व्यवहारस्य मूलभूत-कारणमस्ति-अस्माकं भारतीयसंस्कृति:-इतोऽपि भारतीयसंस्कृत्याम् अस्माकं वेदा:। अस्माकं वेदेषु मानवजीवनस्य सर्वतो भावेन-जीवनमूल्यानि सन्ति तेषु मूल्येषु एकं महत्वपूर्णम् अस्ति पर्यावरणम्। अस्माकं वेदेषु अनेकानि सूक्तानि सन्ति तेषु सूक्तेषु पर्यावरणस्य विषये महती जागरुकता अस्ति, वैदिक-जना: वनस्य संरक्षरणस्य विषये कटिबद्धा: आसन्। वनस्य स्तुतिं कुर्वन् वदति।

गामङ्गैष आ हवयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्
ववन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते॥

यद्यपि जना: किञ्चित्-कारणात् वृक्षाणां कर्तनं कर्तुं तत्परा: भवेयु: तथापि वैदिक-जना: वृक्षाणां मूलभूतरूपेण कर्तनं न कुर्वन्ति स्म उपरि भागेषु कुर्वन्ति स्म अनन्तर समयेन सह ते वृक्षा: पुन: फलीभूता: भविष्यन्ति अभवन् वा। वनस्य सर्वाधिकं भयम् अस्ति अग्ने:। अत: जना: अग्नि-देवताया: स्तुतिं कुर्वन्त: सति वनस्य संरक्षणार्थ वनं प्रति पर्यावरणं प्रति वा अग्ने: सम्मुखं करौ बद्धवा प्रार्थयन्ति स्म यत् भो अग्ने। अस्माकं पर्यावरणस्य संरक्षणार्थं वनं मा भक्ष। ते जना: अग्ने: वनस्य संरक्षणार्थ प्रार्थनां कुर्वन्ति स्म यत् क्रोधरूप-भूय अग्नि: वनं भस्मं न कुर्यात्-

तमीष्वि यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्
कृष्णा कृणोति जिह्वया॥

स: अग्नि: वनस्य भस्मं कर्तुम् इच्छित-स्वरूप जलेषु गत्वा शान्तं भवति-''कामयमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नप: इत्यादव: अनेकेषु स्थानेषु अस्माकं वेदेषु पर्यावरणस्य विषये जनान् प्रति स्वस्थ-धारणा विकसन्ति।

इदानीं सम्पूर्ण-विश्वे पर्यावरणस्य हानि: क्षति वा भवति तस्य हानि: सर्वे देशा: निर्वहन्ति किन्तु तस्या: समस्याया: यदि समाधानमस्ति तु अस्माकं वेदेषु अस्ति, अत: पर्यावरणस्य संरक्षणार्थम् एकैव शरणम् अस्ति सैवाऽस्ति='वेदा:' अत: वयं कटिबद्धा: भूत्वा सन् वेदेषु शरणं गच्छाम: वेदेषु निहित-ज्ञानं प्रायोगिकं कृत्वा पर्यावरणक्षतिरूपीं समस्यां नितान्तसमाधानं कर्तु सक्षमा: भवेम:।।

शर्मा:, देवेन्द्रकुमार:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरप्रथमवर्षीय:

संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणस्य चिन्तनम्

ननु किमिदं पर्यावरणम्? अस्मान् परितः आवृत्य संस्थितं तत्त्वजातं नाम पर्यावरणम्। जल-वायु-तेजस् खमिति भौतिकपर्यावरणं विहग-मृग-मधुप-सरिसृपादिकं जैविकपर्यावरणम्, वनौषध-लता-गुल्म-प्रभृत्युखित तत्त्वावरणं समष्टित्वेन पर्यावरणमभिधीयते। संस्कृतसाहित्ये वेदानुकूल-समाजानुकूल-परिवारानुकूल-पर्यावरणानुकूल तत्त्वानामाध्यात्मिकं वैज्ञानिकं च सजीवचित्रणं समुपलभ्यते। तत्र कुमारसम्भवे ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' इति कालिदासकवेः सूक्त्यनुसारं भवाब्धावपारे सर्वैः मानवैः शरीर-रक्षणार्थं यतनीयमिति। जगत्यस्मिन् को वा सुखं न वाञ्छति? स एव मनुष्यः सुखी भवति, यः स्वस्थः भवति। आधि-व्याधि रहित कायेन मनसा वा स्वस्थः कथ्यते। प्राणी स एव सुखी स्वस्थः भवितुं शक्नोति यदा तस्य पर्यावरणं शुद्धशान्तञ्च स्यात्। अतो हेतोः पर्यावरण-शुद्धिः संरक्षणञ्च परमावश्यकम् इति।

ये जनाः संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणस्य चिन्तनं संरक्षणञ्च दृष्टुम् इच्छन्ति ते अभिज्ञानशाकुन्तलस्य मङ्गलाचरणं-''या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री'' यजुर्वेदस्य-''भुवनस्य यः पतिरेक'', ''मा द्यावापृथिवी अभिरोधी'', ''वनस्पतिः शमिता'' इत्यादयः पश्यन्तु सर्वे।

वेदेषु पर्यावरणसंरक्षणस्योपायाः

वैदिकवाङ्मये पर्यावरणस्य विषये बहुसूक्ष्मचिन्तनम् अक्रियत महर्षिभिः। पर्यावरणं मानवजीवनस्य मूलाधारोऽस्ति यतोहि पर्यावरणानुसारेणैव अस्माकं सामाजिकी, सांस्कृतिकी, आर्थिकी, जैविकी अन्याश्च क्रियाः प्रभाविताः भवन्ति। अर्थश्चास्य प्राणिषु यानि वस्तूनि दृष्टि-श्रवण-गन्ध-स्पर्शादीनां पंचेन्द्रियेषु विविधानुभूतिम् उद्दीपयन्ति तत्सर्वं पर्यावरणमभिधीयते।

भारतस्य प्राकृतिके परिवेशे विश्वशान्तये विविधानि विधानानि कुर्वन्तस्तत्फलं च दर्शं दर्शं तदर्थमृषयो निश्चितामेकां विधानसरणिं शास्त्रेषु व्यवस्थापितवन्तः। वैदिका ऋषयस्तथ्यमिदं सम्यक् परिचिन्वानाः सन्त एतेषां यथास्थिति रक्षणाय निरन्तरजागरुका आसन् एतेषां साक्षात्कृतमन्त्रेषु, धार्मिकेषु विधानेषु कर्मकाण्डयागादिप्रयोगेषु च तथ्यमिदं नितरां स्फुटीभवति। तत्रापि विशेषरूपेण पर्यावरणस्य संघटकतत्वानि कानि?

वैदिक-युगे मानवः प्रकृत्या सह जीवननिर्वाहं करोति स्म। प्रकृतिं देवतारूपेण मानयति स्म-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
प्रथस्वती प्रथस्व पृथिव्यसि।
प्रथनात् पृथिवीत्याहुरिति यास्कः।

यजुर्वेदादिषु बहूनि नामानि पृथिव्याः प्राप्यन्ते। यथा गौ, ग्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षामा, क्षोणी, क्षितिः, अवनिः, ऊर्वी, पृथिवी, मही, रिपः, अदितिः, इला, निर्ऋतिः, भूः, भूमिः, पूषा, मातुः गौत्रमिति। भूतेषु सर्वप्रथममियं ज्ञाता ''भूतस्य प्रथमजा'' इयं वा एषां लोकानां प्रथमाऽसृज्यन्त, इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा।

अग्निगर्भापि युक्ता ''अग्निगर्भा पृथिवी'' पृथिवी सर्वप्राणिनामाश्रयभूता सर्वभुवनं धारयति ''पृथिवी भूतसाधनी''।

पवित्रं वातावरणं मानवस्य व्यक्तित्वस्य विकासाय परमावश्यकमस्ति। अस्माकं ऋषिभिरिदमुपदिष्टम्-''अधिकशब्दं मा कुरु'' वस्तुतोऽत्यधिकः शब्दः कस्यापि विचारकस्य विदुषः कृते तु हानिप्रदोऽस्त्येव परं साधारणजनतायाः कृतेऽपि हानिप्रदः विद्यते। इत्थं जगत्याः माङ्गल्यं वेदैव निहितमस्ति। ऋग्वेदे वृक्षाणां कर्तनं अनिष्टदायकममन्यत। अत एव वृक्षाणां कर्तनेन प्रदूषणं भवति। अतः तेषां कर्तनं मा स्यात्।

''काकम्बरीम्। उद्वहो वनस्पतिम्, अशस्तीर्वि हि नीनशः।

पर्यावरणसंरक्षणस्याद्यं साधनं वृक्षाणां संरक्षणमेव भवति। वेदः ''वृक्षेभ्यः हरिकेशेभ्यश्च नमो नमः'' इति हरितपर्णवृक्षं देवतारूपेण संभावयति नमस्करोति च। सन्त्यनेके पिप्पलादयो वृक्षास्तेषु देवत्वसंभावनेनैवाधुनापि जनाः देवतुल्यान् तान् मन्वानाः कदापि न

कर्तयन्ति अपितु समये-समये तान् पूजयन्त्येव। अतो यजुर्वेदे नैकेषु स्थलेषु वृक्षाणां स्तवनं प्राप्यते–

नमो वृक्षेभ्य:। वनानां पतये नम:।
औषधीनां पतये नम:। वृक्षाणां पतये नम:।

पर्यावरणप्रदूषणस्य विमुक्तये सूर्यस्य महद् योगदानं विद्यते। स वायुमण्डलं जलं पृथिवीं च शोधयति। कृमिनाशक:, संसारवृद्धि-पोषणहेतु: सर्वपदार्थानां प्रसवहेतुत्वादयं सविता कथ्यते। यत्र सूर्यरश्मयो न यान्ति तत्र कीटाणवो वर्द्धन्ते, तेन रोगवृद्धिर्भवति। सूर्य: स्वरश्मिभि: सर्वपदार्थान् पवित्रं करोति अत एव वैदिक-ऋषिस्तं प्रार्थयन् वदति–

उभाभ्यां देव सवित: पवित्रेण सवेन च मां
पुनीहि विश्वत:। इति।

गायत्रीमन्त्रेऽपि सूर्यस्य तेजसा बुद्धिविकासोऽभियाचित:। सूर्योदयात्प्राक् शय्यापरित्यागस्य, गायत्रीमन्त्रजपस्य विधानं धर्मशास्त्रीयग्रन्थेषु प्रतिपादितमस्ति। जैमिनीयब्राह्मणे तु यज्ञोऽग्निरुक्त:–यज्ञो वै अग्नि:। यजुर्वेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे अग्नि-वायु-चन्द्रमा-वसून् देवता: कथिता:।

ऊर्ध्वज्वलनधर्मण: सन्ततं पर्यावरणमालिन्यदूरीकरणकर्मण: पावकस्य भूयान् महिमा वैदिकसंहितासु गीयते, अमीवचातन: रोगनाशक: अयमेव देव: ऋग्वेदे प्रथममन्त्रेण स्तूयते अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमित्यादि। त्रयोऽस्य भ्रातरो भवन्ति सूर्यो, विद्युत् पार्थिवाग्निश्च दावाग्निस्तावदतिथिरूपेण प्रकटीभवति। इन्द्राग्नीं विदितचरौ वैदिकवाङ्मये युगलतया सहजन्मानौ। अद्यत्वे भौतिकशास्त्रिणो वह्नौ विद्युत्कणानामवस्थितिं वीक्ष्य युगलत्वमेतत् प्रमाणयन्ति।

ऊर्जस्वलेन अग्निगोलकेन संचाल्यमानं सर्वं नक्षत्रमण्डलमिह तेजसां पर्यावरणसन्तुलनेन सन्तिष्ठे, अद्यापि सन्ततं गतिशीलनक्षत्राणि सन्त्येवाग्निगोलकानि पृथिव्या: केन्द्रं सूर्यसमानं सार्धपंचसहस्रशतांश (5550^o) तापमानं जाज्वल्यत इति चरमभागे विंशशताब्दया: (Quantum Physics) प्रमात्राभौतिक्या ज्ञातवन्तो माइक गीलन-दारियो अल्फे-डेविस बाईससंज्ञा ब्रिटेनवैज्ञानिका: किन्तु अथर्ववेदे पूर्वत: एवेदं रहस्यमुल्लिखितं वर्तते–

अयमग्नि:–**''नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतत् इति।''**

असौ जातवेदोरूपेण उषस:, प्राक्, सूर्याद् दिनाञ्च प्रागेव द्यावापृथिव्योरन्तराले प्रविशति। पावकरूपेण हव्यगन्धैर्वाता वरणदूषणं (Complex molicules) च विखण्डयति अत एव कथ्यते विश्वजित् विश्वभृत् विश्वकर्मा तेन संचालिता समस्ता वसुमति अग्निवासा: समाम्नायते।

एवं वेदेषु सम्पूर्णं विज्ञानं यज्ञरूपेणाभिव्यक्तम् तेषां प्रयोग: तत्परिणामश्च यज्ञेनैव साधितुं शक्यते। एको यज्ञ: प्राकृतिकोऽपरश्चानुष्ठेय:। प्राकृतिको यज्ञ एव अनुष्ठेययज्ञस्याधार:। पवित्रं पर्यावरणं प्रकृते: दिव्योपहार:। प्राचीनकाले मानव: पर्यावरणस्य रक्षायै दत्तावधान आसीत्। तदा मानव: तत् कार्यं न चकार येन पर्यावरणं प्रदूषितं भवति स्म। इदानीं पर्यावरणस्य प्रदूषणसमस्या न केवलं भारतस्य एव अपितु अखिलसंसारस्य वर्तते।

सम्प्रति तु भारतवर्षे सर्वं विपर्यस्तम्। न भारतीयानां जडपर्यावरणस्य शुद्धौ प्रयत्नो न चापि जंगमपर्यावरणशुद्धौ। अनुदिनं स्वार्थवशाद् वा मोहाद् वा कलिकालदुष्प्रभावाद् वा भौगलिप्सया वा सर्वत्र पर्यावरणे प्रदूषणं जायते।

अत: नैके पर्यावरणविद: मुक्तकण्ठेनेदानीं परित: तारस्वरेण जनान् सम्बोद्धयन्त: पर्यावरणं प्रति जागरुकान् कुर्वन्त: प्रत्येकं कल्याणाय लोकहिताय प्रकृते: संरक्षणाय च कथयन्ति यत् सम्प्रति सर्वेषां जनहितकारकाणामिदं परमं कर्तव्यं यत् स्वयमेव पर्यावरणं रक्षयन्तोऽन्यानपि तथाकर्तुं प्रेरयन्तु, इयमेव सर्वश्रेष्ठा जनसेवा विद्यते सम्प्रति।

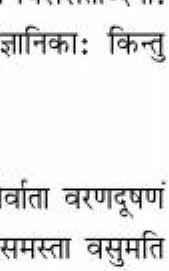

झा, निधि:
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरप्रथमवर्षीया

वैदिक-वाङ्मये भौगोलिक-स्थितिः

भूरिति भूलोकः। तस्य दृश्यमानः गोलभागो 'भूगोलः' इति। भूर्लोकः सप्तसु लोकेषु (भुवनेषु) एकतमः। तेषां सप्तलोकानां भूर्लोकस्य च वर्णनम्–

भुवनज्ञानं सूर्य-संयमात् (योगदर्शनम्)

इत्यत्र महर्षि व्यासः भाष्ये लिखति यत् 'तत्प्रस्तारः (भुवन-विन्यासः) सप्तलोकाः, तत्रावीचेः प्रभृतिः मेरुपृष्ठं यावत् एषः भूलोकः। मेरुपृष्ठात् आरभ्य आध्रुवात् ग्रह-नक्षत्र-तारा-विचित्रोऽन्तरिक्षलोकः तत्परः स्वर्लोकः, पञ्चविधः माहेन्द्रस्तृतीयलोकः, चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः, (पञ्चमः षष्ठः सप्तमः) त्रिविधो ब्रह्मलोकः। तद्यथा जनलोकस्तपोलोकः, सत्यलोकः इति

ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजा॥

अयं च भूर्लोकः (सप्तद्वीपा वसुमती) इति। अत्र योऽयं जम्बूद्वीपः सूर्यप्रचारात् रात्रिन्दिवं लग्नमिव विवर्तते। अयं भूर्लोकः न भ्रमति स्व-अक्षं सूर्यं परितः वा, सूर्यादिग्रहाः नक्षत्राणि चास्य परितो भ्रमन्ति। अत्र प्रमाणम्–

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकम्॥ (सूर्यसिद्धान्तः)

अत्र भूर्लोकस्य स्थैर्यम् आकाशे स्पष्टमेव वर्ण्यते। किमर्थं न पतति? वा इतस्ततो न गच्छति? अस्योत्तरमपि वर्ततेऽत्र। ब्रह्मणो परम-धारण-शक्त्या। सूर्यादि-ग्रहा-नक्षत्राणि च भूगोलं परितः किमर्थं भ्रमन्ति?

आयङ्गौ पृश्निरक्रमीत् असदन्नमातरम्पुरः पितरञ्चप्रयन्त्स्वः।

अयं गौः (सूर्य-निरुक्तम्) पृश्निः (सूर्य-निरुक्तम्) मातरम् (पृथिवीम्) आ (समन्ताद) पुरः (पुरतः अक्रमीत् क्रामाति भ्रमति) अत्र पुल्लिङ्ग पदं (अयम्) सूर्यं लक्ष्यति न तु स्त्रीलिंगां पृथिवीम्। अद्यत्वे विज्ञानं स्वीकरोति यत् पृथिव्यादि-ग्रहाः सूर्यं परितो भ्रमन्ति। एतदसत्यं यतोहि-विज्ञानम् अद्यत्वे स्वीकरोति यत् सूर्यस्य भारः पृथिव्याः अपेक्षया बहु अधिकः वर्तते। तेन स्वगुरुत्वेन पृथिव्यादिकं स्वं प्रत्याकर्षति एतद् असत्यम्।

निरुक्ते यास्काचार्यः-आदित्यः कस्मात्? अदितेः पुत्रः

शतपथब्राह्मणे उच्यते–इयं वै पृथिव्यादितिः, अतः सूर्यः पृथिव्याः खण्डं न तु विपरीतम्।

अद्यत्वे विज्ञानं कथयति यत् पृथिवी सूर्यं परितः भ्रमति। सूर्यः आकाशगंगायां भ्रमति, आकाशगंगा अपि गतिः करोति, एतद् विचारणीयम् एतत् स्वीकारे दृश्यमान्-पदार्थानां स्थैयार्थम् अनवस्था दोषो जायते। अद्यत्वे खगोलविदः स्वीकुर्वन्ति यत् सूर्यः आकाशगंगायां स्व पृथिव्यादि ग्रहैः सह प्रति सेकेन्डं 225 किमी. गच्छति। किं कश्चिद् विचारयितुं शक्नोति यत् यस्याः उपरि वयं स्थिताः स्वयमेव एकस्मिन् विकले (सेकेण्डे) एतावत् धावहि। परञ्च एतत् तु प्रतिभाति यत् पृथिवीस्थिरा, अपि च पृथिव्याः समन्तात् वायुमण्डलं विद्यते। भूमितलाद् दशसहस्र किमी. यावत् अस्य विस्तारो वर्तमानविज्ञानेन स्वीक्रियते। 225 किमी. प्रति सेकेण्डं गच्छन् किं वायुमण्डलस्य सूक्ष्मकणाः गुरुत्वाकर्षणेन पृथिव्याः सह लग्नं भवितुमर्हति; पृथिव्यापृथक् पलायिष्यन्ते। पृथिवी स्थिरा चेत् तदा तु स्थास्यन्ते।

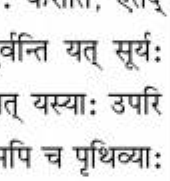

उपसंहार–अत्रमया यथामति एतत् प्रतिपाद्यते यत् यादृक् स्वरूपम् अद्यत्वे वैज्ञानिकाः प्रदर्शयन्ति वैदिकवाङ्मये तस्मात् स्वरूपात् भिन्नं वर्णितमस्ति, तत्र पृथिव्याः स्थैर्यं प्रतिपाद्यते, सूर्यस्य च गतिः। सूर्यश्च कश्चन् पृथिव्याः एव एकं खण्डं वर्तते।

आर्यः, दिव्यांशुः
संस्कृत-विभागस्य स्नातकोत्तरप्रथमवर्षीयः

FOSTAS

PARIVARTAN

GARDEN COMMITTEE

THE ROUND TABLE

FINE ARTS & PHOTOGRAPHY SOCIETY(FAPS)

NATIONAL CADET CORPS (NCC)

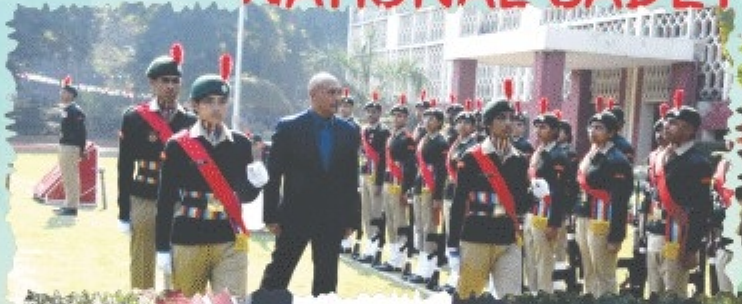

NATIONAL SERVICE SCHEME (NSS)

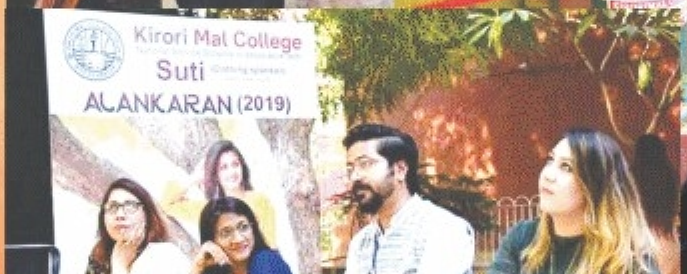

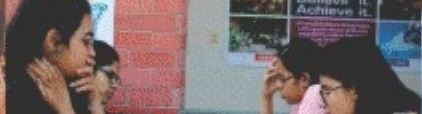

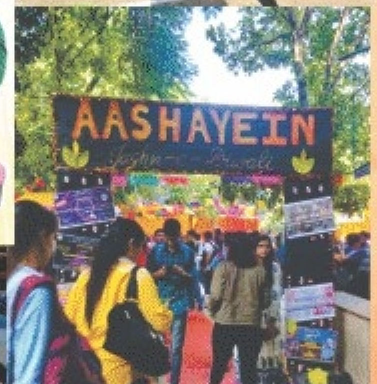

SPORTS

KIRORI MAL COLLEGE HOSTEL

ALUMNI MEET

POOJA CELEBRATION

KIRORI MAL COLLEGE HOSTEL ASSOCIATION

INDEPENDENCE DAY

FOUNDERS DAY

বাংলা বিভাগ

২০১৯-২০২০

সম্পাদক

দীপক মাইতি

সহকারী সম্পাদক

পিয়ুষ কান্তি আদক

সুপ্রভা ঘটক

সম্পাদকীয়

আমরা আবারও আমাদের সেই গর্ব ও আনন্দ মুহূর্তের দোরগোড়ায় দাঁড়িয়ে যখন প্রকাশিত হতে চলেছে আমাদের প্রিয় কলেজিয় পত্রিকা “New Outlook”। এই কলেজিয় পত্রিকাটি ছাত্র-শিক্ষকদের স্বাধীন ভাবনাচিন্তা প্রকাশের একটি সুন্দর মাধ্যম। এবারের পত্রিকায় আমরা ছাত্র-ছাত্রীদের থেকে খুব ভালো সাড়া পেয়েছি। পত্রিকায় লেখা দেওয়া থেকে শুরু করে লেখা সংগ্রহ করা, টাইপ করা ও সেগুলির প্রুফ সংশোধন- সবই সারাবছর সম্পাদকের তত্ত্বাবধানে থেকে ছাত্র-ছাত্রীরা এই পত্রিকাকে আরও সুন্দর ও রচনাগুণে সমৃদ্ধ করেছে। আগামী দিনেও ছাত্র-ছাত্রীরা এভাবেই এগিয়ে আসবে আশা রাখি। এই পত্রিকার আরও উজ্জ্বল ভবিষ্যতের আশায় থাকলাম।

দীপক মাইতি, বাংলা বিভাগ।

সূচিপত্র

ভাড়াবাড়ি	সুপ্রভা ঘটক	152
মরিচা	স্নেহা ব্যানার্জী	157
আমার রবি ঠাকুর	বিদিশা সরকার	160
মান-হুঁশ ও বর্তমান সমাজ	পিযুষ কান্তি আদক	163
নির্বাচিত কয়েকজন বাগ্মী ও তাঁদের উল্লেখযোগ্য বক্তৃতা	তামান্না এমি	164
রবীন্দ্র সঙ্গীতের উৎস ও ক্রমবিকাশ	অঞ্জনা ব্যানার্জী	182
প্রথম বাংলা বিজ্ঞান পত্রিকা কোন্‌টি?	দীপক মাইতি	193

ভাড়াবাড়ি

সুপ্রভা ঘটক
বি. এ. (প্রোগ্রাম), দ্বিতীয় বর্ষ।

একটা মেয়েলি কণ্ঠস্বর ভেসে আসছে অনেকক্ষণ ধরে। পাশের দুটো রুমেই পর্দা নামানো। সামনের সোফায় বসা ভদ্রমহিলা বললেন, তুমি একাই থাকবে তো? না আর কেউ আছে? বন্ধুবান্ধব?

একাই। চুমুক মেরে টেবিলে কাপটা নামিয়ে রাখল সায়ন্তন। ঠিক তখনই নজর পড়ল ভদ্রমহিলার পেছনে ওয়াল পেন্টিং-এ। ছবিটা যে হাতে আঁকা তা বুঝতে বেশ খানিকটা সময় লাগল। দক্ষিণের দেওয়ালে অজস্র মেডেল ঝোলানো। ছোটো বড় ধরনের ট্রফি, কাপ, সার্টিফিকেট ভর্তি একটা শোকেস। তার ঠিক উপরেই টাঙানো পোট্রেটটা। গ্রিলহীন জানলার ভেতর থেকে মেয়েটা সোজাসুজি যেন সায়ন্তনের দিকে তাকিয়ে আছে।

ছবিটা আমার মেয়ের। এবার কলেজে উঠল। পাশের ঘর থেকে আচমকা এক ভদ্রলোক বেরিয়ে এসে কথাটা বলল। স্যান্ডো গেঞ্জি আর ঢিলেঢালা একখানা পায়জামা পরে আছেন, মাথায় উসকো খুসকো চুল। মুখে হাসি ঝুলিয়েই ছবিটার দিক থেকে চোখ সরিয়ে সায়ন্তনের দিকে তাকাল লোকটা। মেয়ের ছবি আড়চোখে দেখছিল সেটা লক্ষ্য করেই বোধহয় ভদ্রলোক এই ঘরে এলেন। অপ্রস্তুত হয়ে চোখ নামাল সায়ন্তন। ভাড়াবাড়ি দেখতে এসে বাড়িওয়ালার মেয়ের দিকে তাকিয়ে থাকা কাঙালপনা ছাড়া আর কিছু নয়। ছিঃ! কী ভাবল এরা? সায়ন্তন লজ্জিতবোধ করল। একটু হেসে বলল, না মানে ছবিটা এত্ত জীবন্ত। তাই আর কি...!

শুধু তুমি নও। যারাই আসে তারাই মুগ্ধ হয়। আমিও হই। নামকরা শিল্পীর আঁকা। বলে ভদ্রলোক একচোট হাসলেন। সম্মতিসূচক মাথা নাড়ল সায়ন্তন। নিজের মেয়ের রূপে প্রত্যেক বাবাই মুগ্ধ। সেটা বড়াই করে বলার কিছুই নেই।

একটু বসো, আসছি। ভদ্রমহিলা তার স্বামীকে গিয়ে কিছু একটা বললেন। তারপর দুজনেই পাশের ঘরে চলে গেলেন। এই ফাঁকে সায়ন্তন পেন্টিংটার কাছে গিয়ে একটা ছবি তুলে নিল

মোবাইলে। মেয়েটা বাড়াবাড়ি রকমের সুন্দরী। হাতে আঁকা ছবিতেই যদি এমন সুন্দর হয়, তাহলে সামনা সামনি কেমন হবে কথাটা ভাবতেই অস্পষ্ট একটা অবয়ব ফুটে উঠল চোখের সামনে। মিহি কণ্ঠস্বরটা আবার ভেসে আসছে সঙ্গে হারমোনিয়ামের ছন্দবদ্ধ সুর। মেয়েটা গানও করে। যেমন দেখতে, তেমনি গলা। চোখদুটোর মধ্যেও আশ্চর্য এক মায়া আছে। অদ্ভুত একটা ঘোর লেগে গেল সায়ন্তনের।

চাবির গোছা নিয়ে ভদ্রমহিলা এলেন, 'চলো তোমায় রুমগুলো দেখিয়ে আনি।'

একঝলক চোখ বুলিয়ে সায়ন্তন পোর্ট্রেটের আশেপাশে মেয়েটার নাম খোঁজার চেষ্টা করল। পেল না।

খুব যে পছন্দ হল তা নয়। দু'কামরার রুম। ঘরের ভেতর ভ্যাপসা গন্ধ। অনেকদিন দরজা জানলা বন্ধ থাকলে যেমন হয়। চার দেওয়ালের মধ্যে তিন দেওয়ালেই নোনা ধরা। অ্যাটাচড নয়। ঘর থেকে বেরিয়ে উঠোনের কোণার দিকে যেতে হয়। একতলা বাড়িটার দু'দিকেই একফালি করে উঠোন। নানারকম ফুলের গাছ লাগানো। উঁচু পাঁচিল দিয়ে ঘেরা চারিদিক। ফ্ল্যাটে ঢেকে যাওয়া পাড়ায় বোধহয় এই বাড়িটাই কেবল একতলা। পুরনো ধাঁচের।

রুমগুলো দেখে সায়ন্তন ভেবেছিল না করে দেবে। এরচেয়ে চৌধুরী মোড়ের আগের মেসই ঢের ভালো। আর এখানে টাকাটাও বেশি। এতসব ভাবার পরেও সায়ন্তন দুম করে অ্যাডভান্স করে দিল। মনের ভেতর তখনও বেজে চলছে সেই হারমোনিয়ামের সুর, স্বল্প চেনা কণ্ঠস্বর।

মেয়েটা কোনো কারণে সামনে আসতে চায় না। এখানে শিফট হওয়ার দিন চারেক পর সায়ন্তন জিনিসটা খেয়াল করল। তাকে সকাল সাড়ে ন'টার মধ্যে বেরিয়ে যেতে হয়। অফিস থেকে ফিরতে সাড়ে সাত-আট। মঙ্গলবার অফিস ক্যান্টিনে শমীকের পিঠে একটা চাপড় মেরে বলেছিল, 'কী বাড়ির খোঁজ দিলি রে ভাই! বাড়ি তো নয় হীরের খনি!'

কথাটায় ব্যঙ্গ আছে কিনা শমীক ধরতে না পেরে বলল, 'পোষায়নি, না?'

পকেট থেকে ফোন বের করে সেদিনের ছবিটা দেখালো সায়ন্তন। 'এই জিনিস বাড়িতে থাকলে কার পোষাবে না ভাই?'

'ওরেহ! বাড়িওয়ালার মেয়ে? কী দেখতে রে! একে দেখার জন্যেই মাসে সাড়ে তিন হাজার দেওয়া যায়। এক্সট্রা রুমটুম হবে? আমিও গিয়ে থাকব তাহলে!' বলে সায়ন্তনকে খোঁচা মারল শমীক।

'মনের রুমে তো শুধু একজনকেই জায়গা দেওয়া যায়।'

'ওই দ্যাখো' চোখ টিপে হাসল শমীক। ওদের কথা শুনে সামনে বসা সুচরিতা, বিদিশাদের হাসির রোল উঠল। রাইমা পাশেই বসে ছিল। মোবাইলটা কেড়ে নিয়ে বলল, আমরা বউদি পাচ্ছি তবে, কথাবার্তা কতদূর এগোল?

'ওই আর কি...প্রাইমারি স্টেজে রয়েছে। টুকটাক হাসি, কথা। ওর লজ্জা এখনও পুরোপুরি কাটেনি। রোজ সকালে রেওয়াজে বসে। অপূর্ব গান করে। একদিন দেখা করাব তোদের সঙ্গে।'

ঢপটা মেরে সায়ন্তন বুঝল একটু বেশি বাড়াবাড়ি হয়ে গেল। চারদিনে একবারও মেয়েটার সঙ্গে দেখা হয়নি তার।

রোজকার মত আজকেও ভোরবেলার ঘুমটা ভেঙে গেল সায়ন্তনের। হারমোনিয়ামের অস্পষ্ট সুরটা ভেসে ভেসে আসছে। ঘুম জড়ানো চোখে মোবাইল হাতড়ে দেখল সাড়ে পাঁচটা বাজে। কনকনে শীতের সকাল। চারপাশ নিস্তব্ধ। গায়ের থেকে লেপ সরিয়ে বিছানায় কিছুক্ষণ থম মেরে বসে রইল। তারপর অভ্যাসবশত শাল জড়িয়ে বাইরে এসে দাঁড়াল। সুরটা আরও কিছুটা স্পষ্ট হল। আলোকেরই ঝর্ণা ধারায় গানটা হচ্ছে।

গানের প্রতি কোনোকালেই বিশেষ আকর্ষণ ছিল না। ছেলেবেলায় মায়ের একটু আধটু গানের প্রতি প্রেম থাকলেও ছেলের তেমন ছিল না।

শিফট হওয়ার কিছুদিনের মধ্যেই সায়ন্তন বুঝতে পারে বাপ মেয়ের মধ্যে প্রায়ই অশান্তি লেগে থাকে। ভদ্রলোকও পাল্টা ঝাঁজ দেখানো শুরু করে। বাপ-মেয়ের এত অশান্তি কী নিয়ে সায়ন্তন বুঝতে পারে না। কথাগুলো স্পষ্ট শোনা যায় না। কিন্তু বোঝা যায় অশান্তি কোনো ছেলেকে ঘিরেই।

মাঝে মধ্যে ভদ্রমহিলাও খেঁকিয়ে ওঠেন 'পাগল করে ছাড়বে আমাকে। কোনওদিন গলায় বিষ ঢেলে মরে পড়ে থাকব।'

কথাগুলো শুনে শুনে মুখস্থ হয়ে গেছে। এদের পারিবারিক সমস্যা নিয়ে ওর কোনো মাথাব্যথা নেই। তবুও কৌতূহল বাড়ে। রোববার একটু দেরিতে ঘুম ভাঙল। সকালে রেওয়াজের শব্দ কানে আসেনি। বিছানায় শুয়ে মোবাইলে নিউজ ফিড স্ক্রল করছিল সায়ন্তন। দরজা ধাক্কানোর আওয়াজে বিছানা ছাড়ল।

সেই মালকিন ভদ্রমহিলা। আড়ষ্ট গলায় বললেন, "একটু বিরক্ত করলাম। তোমায় একটা

কাজ করে দিতে হবে ভাই।"

ভদ্রমহিলাকে দেখে মনে হল উনি কোনো সমস্যায় রয়েছেন। শাড়িটাও এলোমেলো ভাবে পরা। -- না না বিরক্ত কীসের? আসুন না ভেতরে। কী কাজ বলুন?

ভদ্রমহিলা একটা ব্যাগ বাড়িয়ে দিয়ে বলল 'মাছ আর সবজির একটা লিস্ট করে দিয়েছি। ভেতরে টাকাটা আছে। একটু বাজারটা করে দিতে পারবে?'

এ তো মেঘ না চাইতেই বন্যা। এই সুযোগ ছাড়া যায়? বাজার দিয়ে আসার নাম করে মেয়েটার সঙ্গে একটু আড্ডা মেরে আসা যাবে।

একগাল হেসে সাগ্রহে ব্যাগটা নিল সায়ন্তন। কেমন যেন একটা জামাই জামাই ফিল আসছে। মুখে বলল, 'এ আবার কোনো কাজ হল।'

ভদ্রমহিলা ম্লান হেসে বললেন, 'আসলে তোমার কাকুর শরীরটা একটু খারাপ করেছে আর মিনতিটা কয়েকদিন ধরে কাজে আসছে না। তাই আর কি......।'

ব্যাগভর্তি বাজার হাতে কলিং বেল টেপে সায়ন্তন। ভদ্রমহিলা এসে দরজা খুললেন। বসার জন্য বললেন ভেতরে।

সায়ন্তন ঘরে ঢুকল। বাজারের ব্যাগটা মেঝেয় নামিয়ে রেখে ভদ্রমহিলা তড়িঘড়ি সোফা থেকে কিছু একটা দলা পাকিয়ে পাশের ঘরে নিয়ে যেতে গেলেন। হাত ফস্কে কতগুলো পুতুল মেঝেতে পড়ল। সায়ন্তের মনে হল এগুলো আগে যেন দেখেছে।

সায়ন্তন ইতস্ততভাবে জিজ্ঞেস করল, আপনার মেয়ের সঙ্গে আলাপ হয়নি এখনো। ভদ্রমহিলা থতমত খেয়ে বললেন, 'ও খুব একটা পচ্ছন্দ করে না কারো সঙ্গে দেখা করতে।' দেখা না করতে চাওয়ার কি কি কারণ হতে পারে সায়ন্তন ভাবছিল। রোজকার মত আবার বাবা-মেয়ের অশান্তির আওয়াজ শোনা গেল। ভদ্রমহিলা উঠে ওই ঘরে গেলেন। ওদের ঘর থেকে বেরিয়ে আসার সময় বার কয়েক 'অ্যাসিড' শব্দটা শুনতে পেল। অজানা আতঙ্কে বুকটা কেঁপে উঠল।

শমীক ঠিকই আন্দাজ করল। ওই বাড়িটায় যাওয়ার পর থেকে সায়ন্তনকে ডিস্টার্ব দেখাচ্ছে। কাজে ভুল করছে। আজকেও নিজের ডেস্কে চুপচাপ বসে জানালার দিকে তাকিয়ে ছিল সায়ন্তন। মোবাইল ওয়ালপেপারে সেই মেয়েটার ছবি।

তোর কী হয়েছে বলতো?

সায়ন্তন না বলে থাকতে পারল না। শমীককে চিন্তিত দেখাল, অ্যাসিড ভিক্টিম? তার জন্য সামনে আসতে চাইছে না?

সায়ন্তন চুপ করে থাকল। শমীক বলল, তাইতো মনে হচ্ছে। দাঁড়া, আমি খোঁজ লাগাচ্ছি। সত্যিটা জানা দরকার। মেয়েটার নাম ম্যানেজ করতে পারবি কোনোভাবে? কায়দা করে, শোন ভদ্রমহিলার কাছে। বা পাড়ার কাউকে পেলে ধর।

ম্যানেজ করার অনেক চেষ্টা করেছে সায়ন্তন। পারেনি। আর পাড়ার লোকের যা ছিরি ঘরে আগুন লাগলেও খোঁজ নিতে আসবে না।

মাঝের কিছুদিন রেওয়াজ, ঝগড়া কোনো কিছুই শোনা গেল না। কিন্তু সায়ন্তনের ঘুম ভাঙত সাড়ে পাঁচটাতেই। অস্থির পায়ে পায়চারি করত পুরো উঠোন জুড়ে। সন্ধ্যায় অফিস থেকে ফিরে কান পেতে থাকত। মানুষ যে জিনিস কম ভাবার চেষ্টা করে, সেটাই আরও তীব্রভাবে চলে আসে ভাবনায়। অনিচ্ছা সত্ত্বেও গুগলে অ্যাসিড ঝলসে যাওয়া মুখের ছবি দেখে, আঁতকে উঠত।

বাড়ি ছাড়ার সিদ্ধান্তটা নিয়ে ফেলল শেষমেশ। কাল বিকেলে বাড়ি ছেড়ে দেবে। শমীক অন্য একটা মেস ঠিক করে দিয়েছে। ভদ্রমহিলাকে বাড়ি ছাড়ার কথা বলতে তিনি কিছু বললেন না। যেন এটাই স্বাভাবিক। অদ্ভুত এরা। একমাসের টাকা অ্যাডভান্স করলেও চোদ্দোদিনেই ঘর ফাঁকা করে দেবে। এখানে থাকা সম্ভব নয়।

পরের দিন ঘরে তালা মেরে বেরতে পাঁচটা পেরিয়ে গেল। চাবি দিয়ে এল ভদ্রমহিলার হাতে। ব্যাগ নিয়ে শেষবারের মত উঠোনে এসে দাঁড়াল। এক ভদ্রমহিলাকে কাপড় উঠোতে দেখল। এই মিনতি বোধহয়। এতদিন এই সময়ে অফিসে থাকার জন্য দেখা হয়নি। এর থেকে যদি কিছু জানা যায়। কৌতূহল গোপন করতে পারল না।

মিনতি প্রথমে কিছু বলতে চাইল না। পরে আশপাশ দেখে নীচুস্বরে বলল- 'আমি জানতাম আপনিও থাকতে পারবেন না। এসব পাগলের কারবার দেখে কে থাকবে এখানে? যে আসে সেই পালিয়ে যায়।'

সায়ন্তন কথাটা ধরতে পারল না। -- পাগল মানে? কে পাগল? মেয়েটা? আশ্চর্য চোখে তাকাল সায়ন্তন।

বউটা কেমন যেন ফ্যাকাসে হাসল। বলল, 'মেয়ে পাগল হয়ে বেঁচে থাকলেও তো বাপের এমন দশা হত না। আপনি কি কিছুই জানেন না?

সায়ন্তন কোনো উত্তর দিল না।

'এই বাড়িতে কাজ করছি আঠারো, উনিশ বছর। দিদিমনি যার কাছে গান শিখত, সেই গানের মাস্টারের সাথে লটপট কেস ছিল। দাদাবাবু জানতে পেরে আপত্তি করায় মেয়ে অ্যাসিড গিলে পড়ে রইল বেসিনের পাশে।

বিদ্যুৎস্পৃষ্ট গাছের মত দাদাবাবু দাঁড়িয়ে রইলেন। এরপর দাদাবাবু অনেকবার মরার চেষ্টা করেছেন। কম ডাক্তার দেখানো হয়নি তাকে, কিন্তু কিছুতেই কিছু হয়নি। নিজেই মেয়ের গলা নকল করে যাতে বাইরের লোক বুঝতে না পারে। বাইরের লোক বুঝতে পেরেই পালিয়ে যায়। কেউ থাকে না। আপনিও চলে যাচ্ছেন তাই কথাগুলো বললাম।' – মিনতি বলে চলল।

কিছু যে একটা গন্ডগোল ছিল সায়ন্তন প্রথমেই আন্দাজ করেছিল। এটা শুনে তার ফেসবুকের একটা ভিডিওর কথা মনে পড়ে গেল। স্তম্ভিত হয়ে ফোনটা বের করে দেখল সেই ভদ্রলোক তমাল মুখার্জী। তারপর কিছুটা স্ক্রল করতেই দেখল ডামি নিয়ে তার একটা ভিডিও। এই ডামিগুলোকেই সে সেদিন ভদ্রমহিলার হাতে দেখেছিল। মৃতা মেয়ের গলা নকল করে তাকে জীবিত রেখেছে ভদ্রলোক।

সন্ধ্যা নেমেছে। গেটের বাইরে পা রাখতেই কানে এল আবার সেই আওয়াজ। সে ভালো করেই জানে কে করছে এসব, তবুও দাঁড়িয়ে রইল।

মরিচা

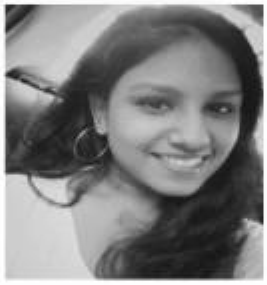

স্নেহা ব্যানার্জী
বি. এ. (প্রোগ্রাম), তৃতীয় বর্ষ।

হঠাৎ ঘুম ভেঙে রঞ্জন দেখল একদল লোক গ্রীলের কড়া নাড়ছে, ঘড়িতে তাকিয়ে দেখি রাত তিনটে পনের। ওরা তার বাবাকে নিয়ে যেতে এসেছে। কিন্তু কেন? ওরাই বা কারা? একজনের পরনে আবার খাকী পোশাক। একজন বলল, "চিরু বাগ কে আছে? আমরা তাকে নিয়ে যেতে এসেছি।" রঞ্জনদের মনে তখন অশান্তির নিঃশ্বাস। ভয়ে ভয়ে জিজ্ঞেস করল, "কেন

কী করেছে আমার বাবা? কেনই বা তাকে নিয়ে যাচ্ছেন?" জবাব আসল "তোর বাবা চুরি করেছে, তাকে আমরা থানাতে নিয়ে যাব।" মা নির্বাক, বোন কান্নায় ভেঙে পড়েছে, সে ভাবছে কাঁদব না কি করব। কিছু মুহূর্তের জন্য নির্বাক থাকার পর হঠাৎ যেন গোঙানোর স্বর তার কণ্ঠ হতে বাইরে বেরিয়ে এল। কী নিষ্ঠুর, কী ভয়ানক, এই সমাজ। দুর্বল, দরিদ্র, অসহায়ের উপর সবল, অর্থশালীর এই পেষণ যুগে যুগে, কালে কালে চলে এসেছে। এ যেন সভ্যতারূপ বিশাল ইমারতের একটি পীলাররূপে আজও অব্যাহত।

কয়েকদিন আগের কথা বলি। কয়েকদিন ধরে তার বাবার ইমিটেশনের কাজটাজ ভালো চলছিল না, সেকারণে বিষন্নতার সাথে দিন কাটছিল সকলের। একদিন কলকাতা থেকে ফোন আসে এক ভদ্রমহিলার।

একটা ছোটোখাটো ওর্ডার পেয়ে যান তিনি। কাজ শেষ করে সুন্দর সুন্দর নতুন ডিজাইনের অলঙ্কারগুলো ভদ্রমহিলাকে দিয়ে আসেন তিনি। জিনিসগুলি পেয়ে খুব খুশি হল ভদ্রমহিলা। এর পাঁচদিন পর একদিন ফোন করে গর্জন করে ভদ্রমহিলা বলেছিলেন, "আপনি আমার সোনা চুরি করেছেন। সোনা দিয়ে যান নয়তো আপনার বাড়ি পুলিশ পাঠাব।"

রঞ্জনের বাবা নির্বাক হয়ে কথাগুলো শুনেছিল, তারপর বলেছিল, "কোন সোনা? কোথাকার সোনা? আপনার কোথাও ভুল হচ্ছে ম্যাডাম। যে জিনিসটা চোখে দেখলামই না আপনি তারই চুরির অপবাদ দিচ্ছেন?" ততক্ষণে বাড়ির সকলে একজায়গায় জড় হয়ে গেছিল। মা বোন তারা ততক্ষণে কাঁদতে শুরু করে দিয়েছিল। সে বুঝতে পারছিল না যে, তার এখন কী করণীয়। এরমধ্যে কখন ভদ্রমহিলা ফোনটা রেখে দিয়েছেন সে তার কিচ্ছুটি টের পায়নি।

মা বলল, "রঞ্জন তোর বাবা তো কিছুই জানে না। তাহলে মহিলা অমন উচ্চবাচ্য করে কুৎসিৎ ব্যবহার করলেন কেন?" রঞ্জন শুধু বলল, "চিন্তা করো না সব ঠিক হয়ে যাবে।" পরে তিনি আবার ফোন করেন। তখন ফোনটা রিসিভ করে রঞ্জন। শুনতে পায়, "সোনা দিয়ে যাও নয়তো কপালে খুব কষ্ট আছে।" সে বলল, "দেখুন ম্যাডাম, আপনি কোথাও রেখে দিয়েছেন, ভালো করে খুঁজুন, বেকার বেকার নিরীহ মানুষকে অপবাদ দেবেন না। আমরা গরীব হতে পারি কিন্তু চোর নই।" তিনি বললেন, "অতসত জানি নে বাবা। আমার সোনা চাই, নয়ত একশ গ্রাম সোনার দাম হিসাবে তিন লক্ষ টাকা দিয়ে দাও সব নিজেদের মধ্যে মিটিয়ে নেব।" প্রচন্ড ক্ষোভ ও মিথ্যা অপবাদের জ্বালায় আবেগের বশে সে বলে দেয়, "আপনি যা পারেন করুন, আমার বাবা চুরি করেনি তাই দায়ও আমার বাবার না।" তারপর তিনি ফোনটা রেখে দিয়েছিলেন। উটকো ঝামেলার দাপটে সকাল থেকে রান্না বন্ধ, কারো গলা দিয়ে কিছু নামছিল না। সবাই যেন অপ্রত্যাশিত আতঙ্কে শিহরিত ও যথেষ্ট শঙ্কিত ছিল।

সকালে মহিলা নিজেই আবার ফোন করে বলেন, "আজ পাঁচটায় পুলিশ যাবে, তুলে নিয়ে আসবে। তখন দেখব কত ধানে কত চাল" বলেই হাওয়া। সকাল থেকে সকলে কেঁদে যাচ্ছে, রান্না পূর্বের দিনের মত সেদিনেও বন্ধ। কিন্তু কী অদ্ভুত দু'দিন ধরে কারও খিদেই পায়নি। তারা বেশ দিব্যি জল খেয়েই কাটিয়ে দিয়েছিল। সেদিন দুপুরে যখন সবাই একজায়গায় বসে ছিল তখন এক নিস্তব্ধতাবিরাজ করছিল। সেই শব্দহীন সময় যেন কত কিছুই ঈঙ্গিত করে চলছিল। সবাই যেন অজানা এক ঝড়ের আভাসের বার্তা পেয়ে গেছিল। হঠাৎ মা বলে উঠেছিল, "রঞ্জন একটু ছাতু করে দিই খা।" খেতে মন না চাইলেও মা যখন ছাতুর গ্লাস সামনে ধরল, তখন খিদেটা যেন হুট করে চলে এসেছিল তার। এক নিঃশ্বাসে খেয়ে নিয়েছিল সে। তবুও কারো দুঃশ্চিন্তা কমেনি। মামাকে ফোন করে বলতে মামা আশ্বস্ত করে বলেছিল, ভয় পাবার কিছু নেই। সকলের চক্ষু দেওয়াল ঘড়িতেই আটকে ছিল। সেদিন আর টিউশন পড়াতে গেল না কেউ। সন্ধ্যে গড়িয়ে রাত ঘনিয়ে এল কিন্তু কিছুই হয়নি। মনটা একটু হালকা হয়ে গিয়েছিল সবার।

কথায় আছে গরীবের বিপদ কি আর বলে কয়ে আসে! দু'দিন পর মাঝরাতে রঞ্জনের বাবাকে ধরে নিয়ে গেছিল ওরা। মনে হয়েছিল যেন ওরা শুধু তার বাবাকেই ধরে নিয়ে যাচ্ছে না, এ যেন সকল নিষ্পাপ, নিরপরাধ মানুষের দুর্বলতার সুযোগে শাসকের জয়ধ্বজার প্রতীক, রঞ্জনের বাবা কেবল উপলক্ষ মাত্র। বাড়িতে এক প্রচন্ড শোকের ছায়া নেমে এসেছিল। সকলে ভাবছিল লোক জিজ্ঞেস করলে কী জবাব দেবে তারা। পুলিশওয়ালাদের মধ্যে একজন আবার বলে গিয়েছিল যে "চিন্তার কোন কারণ নেই। আমরা ইনভেস্টিগেশন করতে নিয়ে যাচ্ছি, কালই ছেড়ে দেব।"

পরদিন সকালে থানাতে যায়, কিন্তু কী আজব, প্রমাণ হওয়ার আগে সবাই আসামী বলে ওনার সাথে খারাপ ব্যবহার করছিল। রঞ্জন দেখেছিল, নির্দোষ হয়ে অপরাধের বোঝা নিয়ে তার বাবা কুমড়ো গাছের মত নুইয়ে পড়েছে, চোখ দু'টো লাল টকটকে, মুখটা শুকিয়ে আমশি হয়ে গেছিল, ওদিকে আর তাকানো যাচ্ছিল না- যা সে কখনো ভুলতে পারবে বলে মনে হয় না। শুধু তাই নয়, তার বোন সকলের পায়ে পড়তেও দ্বিধা বোধ করে নি। কিন্তু কেই বা কার কথা শোনে, ভগবানও হয়ত তখন অন্য কাজে ব্যস্ত ছিলেন, তাই তাদের কান্নার ডাক তাঁর কাছে পৌঁছায়নি। মামা হাজার ফোন করে একজন উকিলের সাথে কথা বলায় তিনি পুনরায় সান্ত্বনা দিয়ে বলেছিলেন সব ঠিক হয়ে যাবে। কিন্তু ঠিক তো দূরের কথা, ব্যাপারটা বরং জটিল আকার ধারণ করেছিল। উকিল এসেছিলেন, বার্তালাপ হয়েছিল কিন্তু তার বাবাকে কোর্টেই তোলা হয়নি সেদিন। মহিলাটি ফোন করে প্রচন্ড ভয় দেখালেন। রঞ্জন বুঝতে পেরেছিল যে, তিনি নির্ঘাত পুলিশওয়ালাদের কিছু বকসিস্ দিয়ে প্রসন্ন করেছেন। যার কারণে তারা প্রমাণের অভাবেও অভিযুক্তকে মুক্ত করেনি। তবে জানি না রঞ্জনের বাবা কখনও তার যোগ্য সম্মান পেয়ে নিজেকে নির্দোষ প্রমাণ করতে

পারবে কিনা!

আজকের ভারতবর্ষে কত রঞ্জনের বাবারা আছে যারা বিনা দোষে অপরাধের বোঝা বহন করে চলছে। আর যারা সত্যিই অপরাধী তারা মাথা উঁচু করে উচ্চবাচ্য করে চলেছে। এ কেমন সাম্য, এ কেমন বিচার? যে দেশে বিনা প্রমাণে কাউকে কয়েদী বলা হচ্ছে, এদিকে যাদের উপর মানুষের নিরাপত্তার দায় দেওয়া হচ্ছে, তারাই আরও মানুষের জনজীবনে জটিলতার সৃষ্টি করছে- কখনো বা অর্থের লোভে, আবার কখনো বা স্বার্থ চরিতার্থ করতে। আসলে মনে হয় আমরাই এমন হয়ে গেছি যে, সমস্যা নিয়েই মাতামাতি করতে ভালোবাসি, তার সমাধানে নয়। এই তো কদিন আগে কোন রাজ্যে বেশ কয়েকটি ব্রিজ ভেঙে গেছে, কত মানুষ, কত সম্পদ নষ্ট হয়েছে। আমরা ব্রিজের দ্রুত সংস্করণ সম্পর্কে না ভেবে, কেন হয়েছে, কীভাবে হয়েছে, কখন হয়েছে ইত্যাদি বিষয়গুলি নিয়ে সময় অপব্যয় করে চলেছি। এর ফলে আমাদের নির্বুদ্ধিতা বেশি করে প্রকট হচ্ছে। এর পিছনে দায়ী কে? – আমরা নিজেই। কিছু লোক আছে যারা জনগণকে নিজের আয়ত্তে আনার জন্য করুন বাস্তবকে রাজনীতির হাতিয়ার হিসাবে ব্যবহার করছে তার কোনো সমাধান ছাড়াই। আর কিছু লোক আছে যারা নিজেদের 'ভুরি' অর্থকে 'ভুরিভুরি' অর্থে পরিবর্তন করতে যখন পারছে যেভাবে সেভাবে ধ্রুব সত্যকে বিকৃত করছে। ধিক্কার জানাই তাদের। আসলে আমরা ভাবি না যে আমরা কী করে চলেছি- সঠিক না বেঠিক। যখনই আমরা আমাদের নিজেদের কর্ম ও তার প্রতিক্রিয়া সম্পর্কে ভাববো তখনই, হলেও হয়ত ঠিক পথে এগতে পারি আমরা।

আমার রবি ঠাকুর

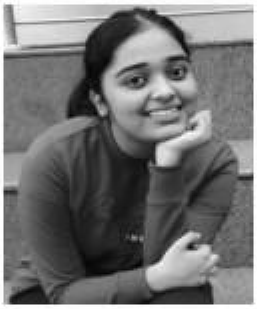

বিদিশা সরকার
বি. এ. (প্রোগ্রাম), প্রথম বর্ষ।

"মনে কর যেন বিদেশ ঘুরে, মাকে নিয়ে যাচ্ছি অনেক দূরে"— বীরপুরুষ, রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর।

কবিতাটি রাতের ঘন কালো স্তব্ধতাতেও আমার মনে শক্তি এবং সাহসের মশাল জ্বালিয়ে দিত। একঘেয়ে গরমের ছুটিগুলোকে সোনালী রঙে ভরিয়ে তুলতো। ওনার "মেঘের কোলে রোদ উঠেছে" গানটি এক আশা জাগাতেন নতুন করে আনন্দ খোঁজার। আবার যেদিন মা-বাবা সারা

দুপুর পড়াত তখন ওনার 'ছুটি' কবিতার লাইনগুলোই আমার একমাত্র ভরসা হয়ে দাঁড়াত। আমার মনে হয় এই কথাগুলো শুধু আমার নয়, হাজার হাজার আবাল বৃদ্ধ মানুষের, বাঙালী বললাম না, কারণ তাঁর প্রতিভা শুধু আমাদের বাঙালী জাতিতেই আবদ্ধ থাকেনি। পৌঁছেছে সারা পৃথিবী জুড়ে।

খুব অবাক লাগে এটা ভাবলে যে, ১৫০ বছর আগেও মানুষটা এত আধুনিক কীভাবে ছিলেন। তাঁর আধুনিকতার ছাপ তাঁর প্রায় সব লেখাতেই পাই। তবুও ওনার যে বইগুলি আমার খুব ভালো লাগে তা হল 'শেষের কবিতা', যেখানে উনি তাঁর মহিলা চরিত্রগুলিকেও সমানভাবে উপস্থাপন করেছেন। এই ধরনের নারীকেন্দ্রিক কাহিনি তিনি আমাদের অনেকগুলি উপহার দিয়েছেন। যেমন, 'স্ত্রীর পত্র', 'ঘরে বাইরে' 'সাধারণ মেয়ে' নামক প্রভৃতি রচনায়। এর মধ্যে থেকে কারও ব্যাপারে আলাদাভাবে কথা বলতে গেলে বলতে হয় 'স্ত্রীর পত্র'র ব্যাপারে। তিনি যেভাবে দুটি নারী চরিত্রকে উপস্থাপন করেছেন এবং তাঁদের গল্প বলেছেন তা সত্যিই অসাধারণ। গ্রাম-বাংলার সাধারণ কালো মেয়েরাও যে সুন্দর হতে পারে তা তিনি আমাদের 'কৃষ্ণকলি' গানটি দিয়ে বলেছেন। তাঁর পাঠকদের তিনি প্রায় সমস্ত গল্প দিয়ে এটাই বোঝানোর চেষ্টা করেছেন যে, মেয়েদেরও মন ভাঙ্গে, চোখে জল আসে আর অভিমান মেয়েদেরও হয়। তিনি আমাদের অচলসম শিক্ষা ব্যবস্থার কঠোর নিন্দুক ছিলেন। এবং তার প্রতিবাদে তিনি রচনা করেছেন 'গুরু' এবং 'ছুটি'।

বাংলার সমাজের অগ্রগতির পেছনে ঠাকুরবাড়ির অবদান অনস্বীকার্য। রবি ঠাকুর নিজেও সে সময়কার সমাজকে নিয়ে যথেষ্ট বাঁধনভাঙা কথা বলেছেন। আর নিজের সবটা দিয়ে তাদের যথাসম্ভব প্রতিবাদও করেছেন। যেমন তাঁর লেখা 'ক্ষুধিত পাষান'-এ সেই সময়কার ভূতেদের সম্পর্কে মানুষের যে ভুল এবং বদ্ধ ধারণা ছিল তা ভেঙেছিলেন। তাঁর উপন্যাস 'গোরা'তে তিনি আধুনিক সমাজে বেঁচে থাকা জাতপাত যে কতটা অযৌক্তিক তা দেখিয়েছেন। তিনি সমাজ সংস্কার করতে শুধু তাঁর লেখালিখিতেই নিজেকে আবদ্ধ না রেখে সম্পূর্ণ উজাড় করে দিয়েছিলেন। যেমন তাঁর ছোটছেলে সর্বেন্দ্রনাথের মৃত্যুর মাত্র তিন মাস পরে বঙ্গভঙ্গ আন্দোলনে নেতৃত্ব দিয়েছিলেন এবং বাঙালি সমাজে দোল এবং রাখির মাহাত্ম তিনি বৃদ্ধি করেন।

রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর তাঁর জীবনের সমস্ত রূপেই অনন্য ছিলেন। কিন্তু আমাদের যুব সমাজঅকে তাঁর যেটি সবথেকে বেশি আকৃষ্ট করে তা হল, তাঁর লেখা গান ও কবিতা। ১৫০ বছর পরেও এই সমাজ তাদের মধ্যে নিজেদের খুঁজে পায়। তাঁর প্রেম পর্যায়ের গানে তিনি প্রেমিকের উপলব্ধি করা সবকটা পর্যায়ের গভীর অনুভূতিগুলি সাবলীলভাবে নিজের গানে তুলে ধরেছেন। জীবনের শুরুর দিকে ভানু সিংহের পদাবলী নামে গান বেঁধেছেন। শ্রীকৃষ্ণ এবং রাধার লীলার কথা নিয়ে, যদিও আমরা তাতে ভক্তির আভাস পাই না। তাঁর লেখা পূজা পর্যায়ের গানেও আমি ভক্তির থেকে

বেশি খুঁজে পেয়েছি তাঁর ঈশ্বরের উদ্দেশ্যে জীবন উৎসর্গ করার ভাবনা এবং জীবনে পাওয়া আসমুদ্র দুঃখের কারণ। যা তাঁর ভাষায় হল 'আরও বেদনা, প্রভু দাও মোরে আরও চেতনা'। সুরকার রবীন্দ্রনাথও কিন্তু অসাধারণ, কারণ তিনি দেশ-বিদেশের সুরগুলি যত সহজভাবে নিজের গানে উওপস্থাপন করেছেন তা সত্যিই চমকপ্রদ।

তিনি খুব সুন্দর করে জীবনের ঘটে যাওয়া খুব সাধারণ কিছু ঘটনা, কিছু প্রশ্নকে কিছু মুহূর্তের মধ্যে ঢুকে তাদের ভেতরে লুকিয়ে থাকা অসাধারণতায় আলোকপাত করতে পারতেন। যেমন হঠাৎ দেখা কবিতাতে জীবনের দুটি আলাদা পথে হেঁটে যাওয়া দুই প্রচন্ড চেনা পথিকদের আবার দেখা হবার কথা বলেছেন। ঠাকুরদা এবং নাতনীর নিবিড় সম্পর্কের কথা বলেছেন 'ঠাকুরদা' গল্পে। বাবা-মায়ের নিবিড় সম্পর্কের কথা বলেছেন 'সম্পাদক' গল্পে।

মানুষটি এত গুণী এবং মহান হওয়া সত্ত্বেও অহংকারী ছিলেন না। 'শেষের কবিতা'য় অমিতের মধ্যে দিয়ে তিনি নিজের যত নিম্নভাবে সমালোচনা করেছেন তা সত্যিই আশ্চর্যজনক। মৃত্যুর আগে অবধি নিরন্তর রচনা করে গেছেন তিনি।

স্বাধীনতা সংগ্রামে পুরোপুরি যুক্ত থাকা সত্ত্বেও তিনি স্বাধীনতা সংগ্রামীদের কিছু আবেগপ্রবণ কাজের ঘোর নিন্দা করেছেন 'ঘরে বাইরে' উপন্যাসে। যেখানে তিনি নিখিলেশের মতবাদ দিয়ে সংগ্রামের সময় বিদেশী দ্রব্য জ্বালিয়ে দেওয়াতে সাধারণ মানুষ এবং ছোট ব্যবসায়ীদের কত ক্ষতি হয়েছিল তার কথা বলেছেন।

স্বাধীনতা সংগ্রামীদের মত তিনিও স্বপ্ন দেখেছিলেন এক সুন্দর-সুবর্ণ ভারতবর্ষের। "চিত্ত যেখানে ভয় শূন্য, উচ্চ যেথায় শির" হবে। যেখানে মানুষ নিজের আত্মমর্যাদা নিয়ে জাতপাত ও দারিদ্রতাহীন সমাজে বাস করবে। কিন্তু দূর্ভাগ্যের কথা হল এই যে, তাঁর স্বপ্ন দেখা 'ভয়শূন্য' দেশবাসী এখনও আমরা নই। আমাদের কিন্তু হাল ছাড়লে চলবে না। কবিগুরুর মতে আমরাই তো নতুন যৌবনের দূত। তাই আমাদের স্বপ্ন দেখা ছাড়লে চলবে না এবং কাঁধে কাঁধ মিলিয়ে একসাথে সেই শুভদিনের জন্য কাজ করে যেতে হবে। যদি এই দূর্গম পথে সহযাত্রী না পাই তবে একাই স্বপ্ন পূরণ করার রাস্তায় এগোতে হবে। যাতে দেশে প্রতিফলিত করতে পারি, যেখানে আলোয় আলোয় মুক্তি ভাসবে মনে নারীর প্রতি শ্রদ্ধা থাকবে।

মান-হুঁশ ও বর্তমান সমাজ

পিযুষ কান্তি আদক
বি. এ. (প্রোগ্রাম), তৃতীয় বর্ষ।

আমরা মানুষ। এই মানুষ শব্দটির একটি বিশেষ তাৎপর্য রয়েছে। মানুষ সবসময় নিজের মান নিয়ে হুঁশ থাকার জন্যই এই 'মানুষ' শব্দের উৎপত্তি। মানুষ মানে আমরা বুঝি দয়াশীল, উদার আচরণ বা যে লোকের কষ্ট বুঝতে পারে। তাই অন্যান্য সব জীব জন্তুর থেকে মানুষ প্রজাতিকে সর্বপ্রথমে রাখা হয়েছে এবং বুদ্ধিমান বলে মনে করা হয়েছে। তাই সময়ের সাথে সাথে বিভিন্ন প্রযুক্তি, বৈজ্ঞানিক গবেষণায় অনেক আগিয়ে রয়েছে এই মানুষরা।

কিন্তু এই সব সরিয়ে যদি আমরা নিজেদের বর্তমান সমাজ ও সভ্যতার উপর আমরা যদি নজর দিই তাহলে এই মানুষ শব্দটি আমাদের জন্য প্রয়োগ করা কলঙ্কিত বলে মনে হবে। প্রায় দিন আমরা খবরের কাগজে বা টিভির চ্যানেলে চোখ ফেললেই দেখতে পাই চুরি ডাকাতি লুঠপাট হত্যা নারী নির্যাতন সন্ত্রাসবাদী হামলা আরও অনেক কিছুই। এই অমানুষিক কাজ দিনের পর দিন বেড়েই চলেছে এবং এর চেয়েও বেশি দুঃখের বিষয় হল যে আমাদের দেশের শিক্ষিত যুবক যুবতীরা এই সব কুকর্মে জড়িয়ে আছে। অনেক ক্ষেত্রে দেখা গেছে শুধুমাত্র কিছু টাকার জন্য একে অপরকে হত্যা করে ফেলছে। এবং আমাদের সমাজে ধর্ষণ এতটাই বেড়ে চলেছে যে, সেইখানে একটা পাঁচ বছরের বা কিছু মাসের শিশুও রেহাই পাচ্ছে না। এই অপরাধ বেড়ে চলার দু'টি কারণ- মানুষের অন্যের প্রতি বিরূপ ভাব এবং পুলিশ তার বিধি ও নিয়ন্ত্রণের যথাযথ ব্যবহার না করা। এর ফলেই আমাদের মানুষের প্রতি মানুষের যে ভাব হওয়া দরকার সেটি পুরোপুরি সরে যাচ্ছে।

এই সব অমানুষিক কাজ আমাদের এই মানব সমাজে ঘটতে দেখে মনে খুব কষ্ট হয় এবং অনেক রকমের প্রশ্নই মনে জেগে ওঠে। যে মানুষ ও মানব সভ্যতা ভগবান তৈরি করে পাঠিয়েছিল সেটি আজ কোথায় গিয়ে পৌঁছেছে। এর ভবিষ্যতই বা কী হবে? এখন যেইভাবে আমাদের গুরুজনরা আমাদের বাইরে বেরনো নিয়ে ভয় পান, সেরকম কি আমাদের ভবিষ্যতের ছেলে মেয়েদেরকে নিয়ে কষ্ট পেতে হবে বা আগের মত বিশ্বাসযোগ্য হয়ে উঠবে মানুষরা। যদি আমরা আজ সকলে মিলে শপথ করি যে ভবিষ্যতে জীবনে আমরা সংযত ও পরস্পর মিলেমিশে মানবিক কর্মের মধ্যে দিয়ে অতিবাহিত করব তাহলে আমার দৃঢ় বিশ্বাস যে একদিন এই সমস্ত

অমানুষিক কাজ সমাজে বন্ধ হয়ে যাবে। সেদিন এই সুন্দর পৃথিবীটা আরও সুন্দর হয়ে উঠবে এবং সেইদিনই আমরা মান-হুঁশ আর 'মানুষ' শব্দের সঠিক মর্যাদা পাব।

নির্বাচিত কয়েকজন বাগ্মী ও তাঁদের উল্লেখযোগ্য বক্তৃতা

তামান্না এমি
সহকারী অধ্যাপিকা, বাংলা বিভাগ।

ভালো বাগ্মী হতে গেলেও বিশেষ কিছু গুণ থাকা দরকার; সহজ-সরল ভাষায়, শ্রোতার মানসিক অবস্থার কথা মাথায় রেখে, যথাযথ তথ্য প্রদানের মাধ্যমে একটি ভালো বাগ্মিতা জনপ্রিয়তা পেয়ে থাকে। প্রাচীন যুগ থেকেই বক্তৃতার প্রচলন চলে আসছে। গবেষকরা মনে করেন, হাজার বছর আগে মানুষ যখন মনের ভাব প্রকাশের জন্য একে অন্যের সঙ্গে কথা বলতে শুরু করে, সেই সময় থেকে বক্তৃতার প্রচলন।

পাশ্চাত্যের জ্ঞানের ইতিহাসে রেটোরিক বহুল আলোচিত শাস্ত্রধারা। রেটোরিক বলতে বোঝানো হয় বাগ্মিতা ও বিতর্কের শাস্ত্র। সক্রেটিস তার বিভিন্ন বক্তব্যে যে সকল জ্ঞানগর্ভ কথা বলতেন, সেগুলি পরবর্তী কালে ইতিহাসখ্যাত হয়েছে - 'নিজেকে জানো', 'মৃত্যুই হলো মানুষের সর্বাপেক্ষা বড় আশীর্বাদ', 'তুমি কিছুই জানো না- এটা জানাই জ্ঞানের আসল অর্থ', মৃত্যুর সময় তিনি বলেন- 'আমি মরছি, তুমি বেঁচে থাকবে। 'কোনটি বেশি ভালো, তা কেবল ঈশ্বরই জানেন।' সক্রেটিস তাঁর বক্তৃতায়- দর্শনের কথা বলতেন, সরকারের সমালোচনা করতেন। তিনি সমাজকে বিপথে চালিত করছিলেন সেই অপরাধে তাকে মৃত্যুদণ্ড দেওয়া হয় খ্রিষ্টপূর্ব ৩৯৯ সালে। গ্রিক ইতিহাসে বিতর্কের প্রক্রিয়ায় সবচেয়ে গুরুত্বপূর্ণ বিরোধী তাত্ত্বিক ছিলেন প্লেটো। তিনি বাচন দক্ষতাকে সম্পূর্ণ রূপে নস্যাৎ করে দিয়েছেন, তাঁর 'Gorgias' শীর্ষক ডায়লগে। বাগ্মিতা নিয়ে যাঁরা আলোচনা করতেন তাঁরা গণতন্ত্রের সঙ্গে বাগ্মিতার সম্পর্কের দিকটি উল্লেখ বা আলোচনা করেছেন। এ ক্ষেত্রে অ্যারিস্টটল লক্ষ করেছিলেন জ্ঞানী ব্যক্তি এবং গণসভার পার্থক্যের কথা। এথেন্সে মূলত দুটি প্রতিষ্ঠানে বক্তৃতা কেন্দ্রীয় ভূমিকা পালন করতো। একটি আদালত এবং অপরটি গণসভা। অ্যারিস্টটলের প্লেটোর দর্শন নিয়ে মতান্তর থাকায়, তিনি নিজে একটি ভিন্ন প্রতিষ্ঠান স্থাপন করেন। তিনি তাঁর নিজস্ব দর্শন প্রচার করতেন। তিনি দিনে তার ছাত্রদের জন্য

ও রাত্রে এথেন্সের সাধারণ জ্ঞানপিপাসু জনগণের জন্য বক্তৃতা দিতেন। অ্যারিস্টটল জ্ঞানী ব্যক্তির বক্তৃতা এবং গণসভায় উপযুক্ত বক্তৃতার মধ্যে যে পার্থক্য করেছেন তার পূর্বসূত্র যেন ইলিয়াডে রয়ে গেছে। তিনি সর্বদা বাগ্মিতাকে যথেষ্ট গুরুত্ব দিয়েছেন। তাঁর মতে, বাগ্মিতা হল বিভিন্ন ধরনের যুক্তি বিন্যাসকে ব্যবহার করে জনমতকে প্রভাবিত করার প্রক্রিয়া। তিনি মনে করতেন, রেটোরিকের মৌলিক বৈশিষ্ট্য হচ্ছে প্রমাণ করার একটি প্রক্রিয়া ।

প্রাচীন রোমের বিখ্যাত রাজনীতিবিদ মার্কাস সিসেরো বিখ্যাত বাগ্মী ছিলেন। সাধারণ জনগণকে প্রভাবিত করতে তিনি নিয়মিত সভা-জমায়েতে বক্তৃতা রাখতেন। বাগ্মিতা দিয়ে তিনি জনপ্রিয় হয়ে উঠেছিলেন। সেই সময়ে তিনি শ্রেষ্ঠ 'বাগ্মী' হিসেবে পরিচিতি লাভ করেন। আদালতে তাঁর বক্তৃতা মন্ত্রমুগ্ধের মতোই শুনতেন জুরিরা। অনেক ইতিহাসবিদের মনে করেন,পৃথিবীর ইতিহাসে তিনিই অন্যতম শ্রেষ্ঠ বাগ্মী। বাগ্মী হিসেবে তিনি খ্যাতির শিখরে পৌঁছেছিলেন, তাঁর নাম থেকেই ইংরেজি শব্দ 'সিসেরোনিয়ান' এর উৎপত্তি, যার অর্থ বাগ্মিতা। সিসেরো তাঁর বক্তৃতা লিখে রাখতেন, ফলে পরবর্তীকালে সেগুলি আমরা প্রবন্ধকারে পেয়েছি। সিসেরোর বক্তৃতাগুলো আইনজীবিদের জন্য অর্থবহ ভূমিকা পালন করে।

পাশ্চাত্যের ইতিহাসে উইলিয়াম পিট একটি অবস্মরণীয় নাম। ইংল্যান্ডের শ্রেষ্ঠ বক্তাদের মধ্যে পিট একজন। ব্রিটিশ সাম্রাজ্যের জন্য আমেরিকার উপনিবেশ গুলি রক্ষা করতে তিনি মহাসভায় পাঁচটি জোরালো বক্তৃতা করেছিলেন। এই পাঁচটি বক্তৃতা তাকে শ্রেষ্ঠ বাগ্মীর আসনে অধিষ্ঠিত করেছিল। আমেরিকার উপনিবেশিকদের সংগ্রাম, ইংল্যান্ডের বিরুদ্ধে তাদের বিরূপ মনোভাব এই দুটি বিষয় নিয়ে পার্লামেন্টে এডমন্ড বার্ক বক্তৃতা দিয়েছিলেন। এই দুটি বক্তৃতা স্মরণীয় হয়ে আছে। হেস্টিংসের বিচার সংক্রান্ত আলোচনা ১৭৮৬ সালের ১৫ এপ্রিল আরম্ভ করেন। বার্ক মোট চারদিন বক্তৃতা দেন। প্রতিদিন প্রায় একনাগাড়ে ছয় ঘন্টা করে বলতেন। হেস্টিংসের বিরুদ্ধে যে অভিযোগ আনা হয়েছিল, সেই চিত্রটি তিনি মর্মস্পর্শী ভাষায় তাঁর বক্তৃতায় তুলে ধরেছিলেন। জর্জ ক্লিমোন্সো ও জঁ জুরে এই দুই বাগ্মী একবার বাগযুদ্ধে নামেন। এই বাগযুদ্ধ খুব উপভোগ্য হয়েছিল।

পৃথিবীতে অনুপ্রেরণাদায়ী বক্তা হিসেবে যে বাগ্মীদের নাম আসে, তাদের মধ্যে অন্যতম হিটলার। হিটলার, তাঁর বক্তব্যের মাধ্যমে মানুষকে তার নাৎসি কর্মকাণ্ডে উদ্বুদ্ধ করতেন। বিজনেস ইনসাইডার তাদের এক প্রতিবেদনে জানায়, ২১ মিলিয়ন মানুষকে হত্যার দায়ে হিটলার ও তার অনুগত বাহিনী দায়ী। তবে এ অপকর্ম হিটলার একাই করেননি। এ জন্য প্রয়োজন হয়েছে বিশাল অনুগত বাহিনীর। এ বাহিনীকে বিভিন্ন সময়ে অনুপ্রাণিত করেন হিটলার, তার নানা জ্বালাময়ী বক্তৃতার মাধ্যমে।

হিটলার পাঁচ হাজারেরও বেশি বক্তৃতা দিয়েছেন এবং সমস্ত বক্তৃতায় তিনি শ্রোতাদের মোহাচ্ছন্ন করে ফেলতেন। শ্রোতাদের তিনি তাঁর প্রতিটি কথাই বিশ্বাস করাতেন। তিনি আদতে একজন কৌশলী বক্তা ছিলেন। প্রসঙ্গত, প্রফেসর ব্রুস লয়েবস যুক্তরাষ্ট্রের আইডাহো স্টেট ইউনিভার্সিটিতে বিগত ৪৬ বছর ধরে ক্লাস নিচ্ছেন। তার ভাষ্যমতে, 'তিনি (হিটলার) শিখেছিলেন কিভাবে কৌশলী বক্তা হওয়া যায়। যে কারণেই হোক, মানুষ তার বক্তৃতায় অনুপ্রাণিত হতো।'

তিনি আরও বলেন, 'মানুষ তাকে স্বেচ্ছায় অনুসরণ করত। কারণ দারুণ প্রতিকূল সময়েও তার কাছে সঠিক উত্তর ছিল।' গবেষকরা তার নানান সময়ে দেওয়া বক্তৃতাগুলোর আধেয় বিশ্লেষণ করে দেখেছেন-

১. হিটলার যে বিষয়ে বক্তব্য রাখতেন, সেই বিষয় সম্পর্কে তার মনে স্বচ্ছ ধারণা থাকতো। তিনি সেই বিষয় নিয়ে প্রচুর অনুশীলন করতেন।

২. একটি বক্তৃতা তৈরি করতে হিটলার প্রচুর পরিশ্রম করতেন। হিটলারের মন্ত্রী জোসেফ গোয়েবেলস ডায়েরিতে থেকে আমরা জানতে পারি- হিটলার যে বিষয়ে বলবেন, সেই বিষয় নিয়ে প্রথমে ভাল মতো জ্ঞাত হতেন এবং তিনি তাঁর নিজের বক্তৃতা নিজেই লিখতেন, কমপক্ষে পাঁচবার পর্যন্ত লিখিত বক্তৃতা সংশোধন করতেন। তিনি কারও লিখিত বক্তৃতার উপর ভরসা করতেন না। তিনি প্রতিদিন গভীর রাত পর্যন্ত তার সেক্রেটারিদের নিয়ে বক্তৃতা লিখতেন। লিখিত বক্তৃতাগুলো খুব মনযোগের সাথে সংশোধন করা হতো।

৩. বক্তৃতায় কণ্ঠস্বর বিশেষ ভুমিকা রাখে। হিটলারের কণ্ঠস্বর ছিল মুগ্ধকর। সম্মোহনীয় কণ্ঠস্বর দিয়ে হিটলার শ্রোতাকে আকৃষ্ট করতেন। তিনি আকর্ষণীয় ও জোরালো কণ্ঠস্বরের অধিকারী ছিলেন। শ্রোতারা মন্ত্রমুগ্ধ হয়ে তার বক্তৃতা শুনতেন।

৪. হিটলার বক্তৃতা চলাকালীন হাতের ব্যবহার করতেন। সুকণ্ঠ, সুলিখিত বক্তৃতা ছাড়াও তিনি মানুষকে সম্মোহিত করতে, তার হাতের এই কৌশল রপ্ত করেছিলেন। বক্তৃতা চলাকালীন তিনি হাতের বিভিন্ন অঙ্গভঙ্গি করতেন। হাতের কৌশল রপ্ত করার জন্য তিনি দীর্ঘসময় ব্যয় করেছিলেন। হিটলারের আলোকচিত্রকর তার অনুশীলনের ছবি তুলতেন। হিটলার সেই ছবি দেখে তার কৌশলের ভুল ত্রুটি ঠিক করতেন।

সুরেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায় একজন বিখ্যাত বাগ্মী ছিলেন। তাঁর সময়ে তিনি ভারতবর্ষের বিখ্যাত বাগ্মী হিসেবে পরিচিতি পেয়েছিলেন। তাকে বাংলার ডিসস্থেনিস বলা হতো। এদেশের জনসভায় জনমত সর্বপ্রথম সার্থকভাবে এবং ব্যাপকভাবে প্রতিফলিত হয় তাঁরই বক্তৃতায়। তাঁর বক্তৃতার এমন প্রভাব ছিল, তিনি শ্রোতাকে অত্যল্পকালে উদ্বুদ্ধ করে ফেলতে পারতেন। তাঁর

বক্তৃতা বাংলার তরুণ ছাত্রদের বিশেষ ভাবে প্রভাবিত করেছিল। জাতীয় কংগ্রেসে তিনি দুইবার সভাপতি নির্বাচিত হয়েছিলেন। এই দুইবার তাঁর বক্তৃতা খুব প্রশংসা পেয়েছিল। বিপিনচন্দ্র পাল সুবক্তা ছিলেন। সুরেন্দ্রনাথের মতো, তিনিও উচ্চ প্রশংসিত হয়েছেন তাঁর বাগ্মিতার জন্য। তাঁর বক্তৃতা শুনে শ্রোতারা মুগ্ধ হতেন। তিনি বাংলা ও ইংরেজিতে ঘন্টার পর ঘন্টা অনর্গল বক্তৃতা দিতে পারতেন। আধুনিক ভারতবর্ষে মহিলা বাগ্মীদের মধ্যে বিখ্যাত ছিলেন সরোজিনী নাইডু। তিনি দীর্ঘদিন নিখিল ভারত কংগ্রেস কমিটির সদস্য ছিলেন। তাঁর বক্তৃতাগুলিতে রাজনৈতিক চিন্তা ভাবনার সুন্দর মূল্যায়ন থাকতো। কেশবচন্দ্র সেন সারা জীবনে বহু বিষয়ে ভারতে ও ইংল্যান্ডে বক্তৃতা দিয়েছিলেন। তাঁর বক্তৃতাগুলিকে গ্লাডস্টোন ওব্রাইটের বক্তৃতার সাথে তুলনা করা হতো। কেশবচন্দ্রের যখন বাইশ বছর বয়স, তখন দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর তাকে ধর্মপ্রচারের জন্য কৃষ্ণনগর পাঠিয়েছিলেন। উনার এটি প্রথম ধর্মপ্রচার যাত্রা ছিল। কৃষ্ণনগরে শক্তিশালী খ্রিস্টান ধর্মের প্রচারক রেভারেন্ড ডাইসনের সংগে তার বাকযুদ্ধ হয়। সেখনে ডাইসন পরাজয় স্বীকার করেছিলেন। ডাক্তার ডফ কেশবচন্দ্রের বিস্ময়কর ক্ষমতা দেখে বলেছিলেন- The Brahmo Samaj is a power , a power of no mean order , in the midst of us. প্রসঙ্গত, শ্রীনাথ সেন 'ধর্মতত্ত্ব' তে কেশবচন্দ্রের বক্তৃতা সম্পর্কে লিখেছিলেন- "যদি বক্তৃতার সময় চারটা তবে দুইটার মধ্যেই বক্তৃতার প্রকোষ্ঠ লোকে পূর্ণ হইয়া গেল- কি হিন্দু, কি মুসলমান, কি খ্রিষ্টান কেহ তো আর বাকী রহে নাই। ইংরাজি, আরমানী, ইহুদিতে প্রকোষ্ঠ ভরা। এত বড় সভাতেকেশব যখন বক্তৃতা আরম্ভ করিতেন তখন শ্রোতাগণ স্তম্ভিত হইয়া যাইত।"

বিখ্যাত কিছু বক্তৃতা

মোহাম্মদের বিদায় হজের বক্তৃতা:

হে আমার প্রভু! আমি আমার পয়গাম (প্রস্তাব) পৌঁছে দিয়েছি, আমার কাজ সম্পূর্ণ করেছি হযরত মোহাম্মদের বিদায় হজের বক্তৃতা খুব তাৎপর্যপূর্ণ। ৬৩২ খ্রিস্টাব্দে হজ পালনের সময় ঐতিহাসিক আরাফাত ময়দানে ইসলাম ধর্মের সর্বশেষ নবী বা ঈশ্বরের দূত এই বক্তৃতা দিয়েছিলেন। আলোচ্য বক্তৃতাটি উনার দেওয়া শেষ বক্তৃতা। শ্রোতা হিসাবে সেদিন প্রায় সোয়া লাখ মানুষ আরাফাত পর্বতের পাদদেশে দাঁড়িয়ে বক্তৃতাটি শুনেছিলেন।

আরববাসী মোহাম্মদের কথায় উদ্বুদ্ধ হয়ে, দলে দলে ইসলাম ধর্ম গ্রহণ করেন। মোহাম্মদ সেই সময় অসুস্থ হয়ে পড়েন, তিনি উপলব্ধি করেন, তাঁর কাজ সাঙ্গ হয়েছে, অন্ধকার যুগের অবসান হয়েছ। তাঁর অন্তিম সময় প্রায় আসন্ন। সেই কারণে তিনি বিদায় হজে বক্তৃতার দেন।

তিনি বক্তৃতার প্রারম্ভে বলেন, 'হে মানবসমূহ, মনযোগ সহকারে আমার কথা শোনো।

হয়তো এ বছরের পর আমি আর তোমাদের সঙ্গে এইভাবে যোগ দিতে পারব না। জানিনা আবার দেখা হবে কিনা! তিনি বলেন, 'হে মানুষ সম্প্রদায়, তোমরা ভুলে যেও না, তোমাদের স্ত্রীদের ওপর যেমন তোমাদের অধিকার রয়েছে, তেমনি তোমাদের স্ত্রীদেরও তোমাদের ওপর অধিকার আছে। তাদের সম্মান করো, ভালোবাসো।' এই বক্তৃতাতে তিনি সুদকে অবৈধ বলে ঘোষণা করে দেন, ফলে এই বক্তৃতা গুরুত্ববহন করে। তিনি প্রতিশোধ নেওয়া হারাম করে দেন। তিনি বলেন, 'অন্ধকার যুগের মত খুন-জখম করা যাবে না, আজ থেকে সমস্তরকম অন্যায় কাজ থেকে দূরে থাকবে। ভৃত্যদের সঙ্গে ভালো ব্যবহার করার নির্দেশ দেন। সব মুসলিম ভাইভাই, তাই ভ্রাতৃত্ববন্ধনে আবদ্ধ হতে বলেন। তিনি এরপরে এই বক্তৃতার অত্যন্ত জরুরি কথা ঘোষণা করেন, 'তোমাদের কাছে আর কোনদিন আমার পর ঈশ্বরের দূত আসবে না, আমি ঈশ্বরের প্রেরিত শেষ দূত।'

ইসলাম ধর্মে মানুষের সঙ্গে মানুষের কোনো ভেদাভেদ নেই। এরপরে তিনি বলেন, সর্বদা মনে রাখবে, 'ইসলাম ধর্মে জাতিভেদ প্রথা নেই, শ্রেণিভেদ ও বর্ণবৈষম্যও নেই। কোন ধরনের কুসংস্কার কে প্রশয় দেবে না। ইসলাম ধর্মে কুসংস্কারের কোন জায়গা নেই।

এই বক্তৃতায় ইসলাম ধর্মের গুরুত্বপূর্ণ কিছু নিয়মাবলী মোহাম্মদ তুলে ধরেছিলেন। মুসলিম জাতির করনীয়, বর্জনীয় কাজের তালিকা তিনি প্রকাশ করেছিলেন। এই ঐতিহাসিক বক্তৃতায় আদেশ, উপদেশ, নির্দেশ ক্রমানুযায়ী উচ্চারিত হয়েছে। এই বক্তৃতা দেওয়ার সময় প্রতিটি বাক্য শেষে মোহাম্মদ বিরতি নিয়েছেন, সেই সময় উমাইয়া রাবিয়া নাম্নী একটি ছেলে উচ্চ স্বরে বক্তৃতার পুনরাবৃত্তি করেছেন, যেন উপস্থিত শ্রোতা প্রতিটি বাক্য শুনতে পান।

বিদায়ী বক্তৃতাটি মোহাম্মদ- এর অন্যান্য বক্তৃতার তুলনায় সাধারণ হলেও, এই বক্তৃতার গভীর তাৎপর্য ছিল। বক্তৃতার সমাপ্তির সময় আবেগে উদ্বেলিত শ্রোতার দিকে তাকিয়ে মোহাম্মদ নিজেও আবেগপ্রবণ হয়ে ঘোষনা করেন, 'হে আমার প্রভু! আমি আমার পয়গাম (প্রস্তাব) পৌঁছে দিয়েছি, আমার কাজ সম্পূর্ণ করেছি।' এরপর উক্ত সমাবেশের বিপুল সংখ্যক জনগণ সমস্বরে বলেন, 'হ্যাঁ, আল্লাহর প্রেরিত দূত, আপনি আপনার দায়িত্ব পালন করেছেন।'

পেট্রিক হেনরি:

'আমাকে স্বাধীনতা দাও, নয়তো মৃত্যু'। ১৭৭৫ সালের ২৩ মার্চ ভার্জিনিয়া রাজ্যের নেতা পেট্রিক হেনরি স্বাধীনতার ডাক দেন। তিনি এই বক্তৃতায় বলেন- 'আমাকে স্বাধীনতা দাও, নয়তো মৃত্যু'। যুদ্ধের ডাক দেওয়ার আগে তিনি বলেন- দীর্ঘসময় শান্তি বজায় রাখার বৃথা চেষ্টা করেছি, কোন কিছু কাজ করেনি, কাজ করছে না এবং ভবিষ্যতেও করবে না। তাই তিনি জানান

সমাধানের একটাই পথ দেখতে পাচ্ছি- তা হলো যুদ্ধ করা, সেই যুদ্ধ আজ, এখন থেকে শুরু করতে হবে। কারণ যুদ্ধ কে এড়িয়ে যাবার কোনো পথ নেই। তাই যুদ্ধকে সাহসিকতার সঙ্গে আলিঙ্গন করতে হবে। এই যুদ্ধে যদি আমরা পিছিয়ে যাই, তাহলে দাসত্বকে মেনে নিতে হবে। এরপর হেনরি পরাধীনতা কে শিকলের সঙ্গে তুলনা করে বলেন, আজ এই শিকলে মরিচা ধরে গেছে। শিকলের ঝনঝন শব্দ শুনতে পাওয়া যাচ্ছে। তিনি আসন্ন যুদ্ধের প্রতি ইঙ্গিত দিয়ে দুবার উচ্চারণ করেন, 'তাকে আসতে দাও, তাকে আসতে দাও।' তিনি জানান, 'আমাদের ভাইরা লড়াই শুরু করেছে। সুতরাং অলস হয়ে বসে থাকার সময় নেই। ভদ্রতা দেখানোর সময় শেষ। এরপর তিনি বক্তৃতায় ঐতিহাসিক প্রশ্ন উত্থাপন করেন, 'জীবন কি এতই প্রিয় আর শান্তি কী এতই মধুর, শিকল এবং দাসত্বের দামে তাকে কিনতে হবে?' এ প্রশ্নের স্বঘোষিত উত্তরই দিয়ে তিনি বলেন 'আমি জানি না সবাই কোন পথ বেছে নেবে। কিন্তু আমি আমার নিজের ক্ষেত্রে বলব- 'আমাকে স্বাধীনতা দাও, নয়তো মৃত্যু।' পেট্রিক হেনরির এই কথা শোনার পর উক্ত জনসভার শ্রোতারা আবেগে উদ্বেলিত হয়ে পড়েন।

এলিজাবেথ ক্যাডি স্ট্যান্টন

নারীর কণ্ঠে আজ তাই একটি কথাই সোচ্চার হয়ে উঠেছে-'অধিকার।'

যখন দাসত্ব প্রথার বিরুদ্ধে ইউরোপে আন্দোলন চলছিল সেই সময় নিউ ইয়র্কের মেনেকা ফলস গ্রামে আধুনিক নারী অধিকার আন্দোলন শুরু হয়েছিল। সেই সময় এলিজাবেথ পড়াশোনার অনুমতি পেয়েছিলেন। রক্ষণশীল পরিবারে বড় হলেও তিনি ছেলেদের স্কুলে গণিতশাস্ত্র ও ধ্রুপদী সাহিত্য পড়তেন। তাঁর বাবার আইন সংক্রান্ত ফাইলগুলোই তিনি সেইসময় পড়তেন। তাঁর বাবার আইনের বই পড়ে, এবং তার বাবার কাছে আইনি পরামর্শ নিতে যে নারীরা আসতেন তাদের অভিযোগ শুনে, এলিজাবেথ সমাজে মেয়েদের দুরবস্থার কথা জানতে পারেন। আইনের বই ব্ল্যাকস্টোন তিনি মন দিয়ে পড়েন। এই বইটি পড়ে তিনি বুঝতে পারেন, বিবাহ বন্ধনের ফলে স্বামী- স্ত্রী আইনত একটি সত্তায় পরিণত হয়। স্বামীর কর্তৃত্ব মেনে চলতে হয়, মহিলাদের স্বাধীন সত্তা বলে কিছু থাকে না। এলিজাবেথের স্বামী দাসত্বপ্রথা উচ্ছেদের একজন সমর্থক ছিলেন। এলিজাবেথ একবার তাঁর স্বামীর সঙ্গে লন্ডনে অনুষ্ঠিত দাসত্বপ্রথা বিলোপ সাধনের একটি সম্মেলনে যান। সেখানে গিয়ে তিনি লক্ষ্য করেন সেই সম্মেলনে মেয়েদের কোন স্থান নেই! এই সম্মেলনে উপস্থিত ছিলেন বিখ্যাত কোয়েকার প্রচারক লুক্রেসিয়া কার্বন মাট। এই দুজন নারীর পক্ষে সেদিনের সম্মেলনের বৈষম্য মেনে নেওয়া কষ্টকর হয়েছিল। এই অপমান তাদের কে মহৎ এক কাজের জন্য উদ্বুদ্ধ করেছিল। নারীর অধিকার নিয়ে তাঁরা আন্দোলন শুরু করেন। ১৮৪০ সালের জুলাই মাসে তাঁরা সেনেকা কালস গ্রামে একটি সম্মেলন করেন। মাত্রদুশো জন সাহসী নারী ও পুরুষ উক্ত সম্মেলনে উপস্থিত ছিলেন। সেই সম্মেলনে এলিজাবেথ 'নারীর

অধিকার' নিয়ে একটি বক্তৃতা করেন। বক্তৃতায় তিনি গুরুত্বপূর্ণ কিছু বিষয়ে আলোকপাত করেন। তিনি জানান, আমাদের সামজিক জীবনে অনেক সমস্যা রয়েছে, আমাদের রাজনৈতিক অধিকার নেই! পুরুষদের মতো আমরা বিধানসভায় আবেদন করতে পারিনা। আমরা স্বাধীন হতে চাই। তিনি এই বক্তৃতায় মূলত- ক) স্বাধীনতা খ) সাম্যতা গ) মর্যাদা ঘ) ভোটাধিকার ঙ) সমানাধিকার কথা বলেছেন। তিনি স্পষ্ট ভাষায় তার বক্তৃতায় জানিয়েছিলেন-নারীকে তার চিরন্তন অধিকার থেকে কিছুতেই কেউ বঞ্চিত করতে পারবে না। নারীর কণ্ঠে আজ তাই একটি কথাই সোচ্চার হয়ে উঠেছে-'অধিকার।'

আব্রাহাম লিঙ্কন

'জনগণের সরকার, জনগণের দ্বারা সরকার এবং জনগণের জন্য সরকার'

যুক্তরাষ্ট্রের পেনসেলভেনিয়ায় গেটিসবার্গ ১৮৬৩ সালে গৃহযুদ্ধে প্রায় আট হাজার মানুষ মারা যান। তাঁদের স্মরণে এই যুদ্ধের চার মাস পরে একটি স্মরণ সভার আয়োজন করা হয়। এই সভার মূল বক্তা ছিলেন অ্যাডওয়ার্ড এভার্ট, তিনি প্রায় ঘণ্টা দুয়েক বক্তৃতা করেন। লিঙ্কন মাত্র তিন মিনিটে ২৭২ শব্দের একটি বক্তৃতা দেন। এই ঐতিহাসিক বক্তৃতা দিয়ে লিঙ্কন অমর বক্তার স্বীকৃতি পেয়েছেন। এই বক্তৃতার শুরুতে তিনি স্মরণ করেন যাঁরা ৪৭ বছর আগে স্বাধীনতাসংগ্রাম করছেন তাঁদের, এরপর গৃহযুদ্ধে বিপুল পরিমাণ ক্ষতি হয়েছে সেই প্রসঙ্গে বলেন। তিনি বক্তৃতার শেষে বলেন- 'জনগণের সরকার, জনগণের দ্বারা সরকার এবং জনগণের জন্য সরকার পৃথিবী থেকে কখনো হারিয়ে যাবে না।' বিশেষজ্ঞরা মনে করেন শেষের এই লাইনটি গণতন্ত্রের শ্রেষ্ঠ সংজ্ঞা। এই বক্তৃতা শোনার পর শ্রোতারা আবেগে উদ্বেলিত হয়ে পড়েন। শ্রোতারা হাততালি দিতেও ভুলে যান। এই বক্তৃতা শুনে অ্যাডওয়ার্ড এভার্ট আক্ষেপ করে বলেন, আমি যদি আমার ঘণ্টা দুয়েকের বক্তৃতায় লিংকনের তিন মিনিটের বক্তৃতার মূল কথার কাছাকাছি কিছু বলতে পারতাম!

সুজান বি. অ্যান্থনি

যুক্তরাষ্ট্রের ম্যাসাচুসেটসে সুজান বি. অ্যান্থনি বেড়ে উঠেছেন। নিউ ইয়র্কের রচেস্টারে তিনি শিক্ষকতা করতেন। সেইসময় তিনি অবাক হয়ে যান একটি বিষয় লক্ষ্য করে। পুরুষ শিক্ষকরা প্রতি মাসে ১০ ডলার আয় করেন। অপরদিকে নারীদের জন্য বরাদ্দ মাত্র ২ দশমিক ৫০ ডলার। সেই সময় থেকে সুজান নারীর অধিকার সচেতন হয়ে ওঠেন। তিনি ১৮৫৩ সালে উইমেন্স প্রোপার্টি রাইট বা নারীর সম্পত্তির অধিকার নিয়ে একটি ক্যাম্পেইন করেন।

সুজান বুঝতে পেরেছিলেন, নারীদের ব্যাপারে শাসকরা কখনই সচেতন হবেন না। যদি নারীদের

ভোটাধিকার প্রচলন হয়, তবেই শাসকরা নারীদের প্রতি নজর দেবেন। সেই কারণে নিজের এই ভাবনাকে বাস্তবায়ন করতে, রাষ্ট্রের একজন নাগরিক হিসেবে স্বীকৃতি ও সম্মান পেতে নারীদের ভোটাধিকার নিয়ে কাজ করা শুরু করেন তিনি ১৯৬৯ সালে জাতীয় নারী ভোটাধিকার সংস্থা প্রতিষ্ঠা করেন। ১৮৭২ সালে রাষ্ট্রপতি নির্বাচনে নিয়ম অমান্য করে সুজান এবং তাঁর তিন বোন প্রথম নারী হিসেবে ভোট দেন। এর ফলে তাঁকে গ্রেপ্তার করা হয়। আদালতে তাকে ১০০ ডলার জরিমানা করা হলে তিনি জরিমানা দিতে অস্বীকার করেন। ১৮৭৩ সালে তাঁর বিখ্যাত বক্তৃতায় তিনি বলেন, 'আমি কোনো অপরাধ করিনি। আমি শুধু আমার অধিকার প্রয়োগ করেছি।' সেই বক্তৃতায় তিনি বলেন, 'কেবলমাত্র পুরুষেরা যুক্তরাষ্ট্র প্রতিষ্ঠা করেনি, আমরা সমস্ত মানুষ মিলে যুক্তরাষ্ট্র প্রতিষ্ঠা করেছি। শুধুমাত্র অর্ধেক জনগোষ্ঠী কিংবা অর্ধেক ভবিষ্যৎ প্রজন্মের জন্য এই প্রতিষ্ঠান গড়ে ওঠেনি। নারী-পুরুষ সকলের জন্য গড়ে তুলেছি।' প্রায় চার দশক পর সুজানের ভোটাধিকার প্রচারণা সফল হয়। ১৯২০ সালের ২ নভেম্বর মার্কিন নারীরা পুরুষদেরর পাশাপাশি ভোট দেওয়ার সমানাধিকার পান। সেই বছর প্রায় আট মিলিয়ন নারী ভোট দেন। এই ভোটাধিকার সংশোধনী নামকরণ করা হয়েছে সুজান বি. অ্যান্থনি সংশোধনী।

স্বামী বিবেকানন্দ

স্বামী বিবেকানন্দ চিকাগো ধর্ম মহাসভার বাগ্মিতা প্রসঙ্গে নিউইয়র্ক ক্রিটিকে লেখা হয়েছিল- কোনপ্রকার নোট প্রস্তুত করে তিনি বক্তৃতা করেন না। কিন্তু নিজ বক্তব্য বিষয়গুলি ধারাবাহিকভাবে প্রকাশ করে অপূর্ব কৌশলক ও ঐকান্তিকতা সহকারে তিনি মীমাংসায় উপনীত হন এবং অন্তরের গভীর প্রেরণা তার বাগ্মিতাকে অপূর্বভাবে সার্থক করে তোলা হয়েছিল। নিউইয়র্কের শ্রেষ্ঠ পত্রিকায় বিবেকানন্দের বাগ্মিতা প্রসঙ্গে লেখা হয়- ধর্ম মহাসভায় বিবেকানন্দ অবিসংবাদি রূপে সর্বশ্রেষ্ঠ ব্যক্তি। তার বক্তৃতা শুনে আমরা বুঝতে পারছি যে, এই শিক্ষিত জাতির মধ্যে ধর্মপ্রচারক প্রেরণা করা কত নির্বুদ্ধিতার কাজ।

স্বামী বিবেকানন্দ শিকাগো ধর্ম মহাসভায় মোট ছ'টি বক্তৃতা দিয়েছিলেন-

- অভ্যর্থনার উত্তর - (১১ /৯/১৮৯৩)
- ধর্মীয় ঐক্য ও ভ্রাতৃত্বভাব- (১৫/৯/১৮৯৩)
- হিন্দুধর্ম - (১৯/৯/১৮৯৩)
- খ্রীষ্টানগণ ভারতের জন্য কি করিতে পারেন? - (২০/৯/১৮৯৩)
- বৌদ্ধধর্মের সহিত হিন্দুধর্মের সম্বন্ধ - (২৬/৯/১৮৯৩)
- বিদায় - (২৭/৯/১৮৯৩)

১১ সেপ্টেম্বর, ১৮৯৩, শিকাগোতে প্রথম বিশ্ব ধর্ম মহাসম্মেলন হয়েছিল। সেই মহাসম্মেলনে বিবেকানন্দ সম্বোধন করেছিলেন- "হে আমার আমেরিকাবাসী ভগিনী ও ভ্রাতাগণ"! এই সম্বোধন শুনে শ্রোতারা মুগ্ধ হয়ে, করতালি দিতে শুরু করেন। বিবেকানন্দ কোন লিখিত নোট ছাড়া, সাবলীল ভাবে এই সংক্ষিপ্ত বক্তৃতাটি পেশ করেন। 'অভ্যর্থনার উত্তর' শীর্ষক এই বক্তৃতায়, বিবেকানন্দ হিন্দুধর্মের পরমতসহিষ্ণুতার কথা বলেছিলেন। 'বমহিমাস্তোত্র' ও গীতা'র উল্লেখ করে তিনি বলেছিলেন, "সব মানুষই সেই এক ঈশ্বরের পথে চলেছে"। এই বক্তৃতায় সাম্প্রদায়িকতা, গোঁড়ামি এবং এগুলির ভয়াবহ ফলস্বরূপ ধর্মোন্মত্ততা'র বিরুদ্ধে বিদ্রোহ ঘোষণা করেছিলেন।

১৫ সেপ্টেম্বরের বক্তৃতায় বিষয় ছিল, ধর্মীয় ঐক্য ও ভ্রাতৃত্বভাব। আলোচ্য বক্তৃতায় ছোট একটি গল্প উপস্থাপন করেছিলেন। সাগরতীরের ব্যাঙকে কুয়োর ব্যাঙের সেই বিখ্যাত প্রশ্ন 'সমুদ্র? সে কত বড়? তা কি আমার এই কুয়োর মতো বড়?' বিবেকানন্দ সুন্দর ভাবে এই গল্পের বিশ্লেষণ করেছিলেন। তিনি বলেছিলেন- "হে ভ্রাতৃগণ, এইরূপ সংকীর্ণভাবই আমাদের মতভেদের কারণ। আমি একজন হিন্দু। আমি আমার নিজের ক্ষুদ্র কূপে বসিয়া আছি এবং সেটিকেই সমগ্র জগৎ বলিয়া মনে করিতেছি! খ্রীষ্টধর্মাবলম্বী তাঁহার নিজের ক্ষুদ্র কূপে বসিয়া আছেন এবং সেটিকেই সমগ্র জগৎ মনে করিতেছেন! মুসলমানও নিজের ক্ষুদ্র কূপে বসিয়া আছেন এবং সেটিকেই সমগ্র জগৎ মনে করিতেছেন! হে আমেরিকাবাসীগণ, আপনারা যে আমাদের জগতের এই ক্ষুদ্র জগৎগুলির বেড়া ভাঙিবার জন্য বিশেষ যত্নশীল হইয়াছেন, সেজন্য আপনাদের ধন্যবাদ দিতে হবে। আশা করি, ভবিষ্যতে ঈশ্বর আপনাদের এই মহৎ উদ্দেশ্য-সম্পাদনে সহায়তা করিবেন।"

স্বামী বিবেকানন্দ ১৯ সেপ্টেম্বরে ধর্ম মহাসভায় 'হিন্দুধর্ম' সম্পর্কে একটি লিখিত বক্তৃতা পাঠ করেন। এই বক্তৃতাটি এই সম্মেলনের দীর্ঘতম বক্তৃতা ছিল। আলোচ্য বক্তৃতায় প্রথম ভাগে তিনি হিন্দুধর্ম ও দর্শনের বিভিন্ন দিক আলোচনা করেন, এবং তারপর, বেদান্তের মহোচ্চ আধ্যাত্মিক ভাব, বেদান্ত জ্ঞান, নিম্নস্তরের মূর্তিপূজা, বৌদ্ধদের আজ্ঞেয়বাদ, জৈনদের নিরীশ্বরবাদ নিয়ে বলেন। শেষ ভাগে ভারতের খ্রিস্টান পাদ্রিরা হিন্দুধর্মকে যে 'বহু-ঈশ্বরবাদী ধর্ম' অপবাদ দিয়েছিলেন, সেই বিষয় নিয়ে যুক্তিপূর্ণ আলোচনা করেন, এবং এই ধরনের নিন্দাবাদকে তিনি ধর্মোন্মত্ততা বলে চিহ্নিত করেন।

২০ সেপ্টেম্বর বক্তৃতায় স্বামী বিবেকানন্দ বলেন, "ক্ষুধার্ত মানুষকে ধর্মের কথা শোনানো বা দর্শনশাস্ত্র শেখানো, তাহাকে অপমান করা।" এই বক্তৃতায় তিনি ভারতবাসীর সঙ্গে খ্রিস্টান ধর্মাবলম্বীদের সম্পর্ক বিষয়ে আলোচনা করেন। তিনি এই বক্তৃতায় প্রশ্ন উত্থাপন করে জানতে চাইলেন, 'খ্রীষ্টানগণ ভারতের জন্য কি করিতে পারেন?' পূর্ব বক্তৃতার সূত্র ধরে তিনি খ্রিস্টান ধর্মযাজকদের কাছে তিনি এই বার্তা পৌঁছে দিলেন- 'ভারতে ধর্মের অভাব নেই, শুধু ব্রিটিশ শাসনে ভারতের প্রধান অভাব অন্নের।'

২৬ সেপ্টেম্বর 'বৌদ্ধধর্মের সহিত হিন্দুধর্মের সম্বন্ধ' বক্তৃতায় হিন্দুধর্ম ও বৌদ্ধ ধর্মের সম্পর্কের দিকটি তুলে ধরেন। এই বক্তৃতা থেকে জানা যায়- অতীতে হিন্দু ধর্ম ও বৌদ্ধ ধর্মের সুসম্পর্ক ছিল। কিন্তু বৌদ্ধরা একসময় হিন্দুদের থেকে নিজেদের সম্পর্ক বিচ্ছিন্ন করেছিল। তার ফলাফল যে ভাল হয়নি বিবেকানন্দের বক্তব্য থেকে সে বিষয় জানা যায়।

বিবেকানন্দ হিন্দুধর্মের সঙ্গে গৌতম বুদ্ধের প্রচারিত বাণীর সম্পর্কে বক্তৃতায় আলোচনা করেন। তিনি বৌদ্ধদের উদ্দেশ্যে বলেন, "হে বৌদ্ধগণ! বৌদ্ধধর্ম ছাড়া হিন্দুধর্ম বাঁচিতে পারে না। হিন্দুধর্ম ছাড়িয়া বৌদ্ধধর্মও বাঁচিতে পারে না। অতএব উপলব্ধি করুন, আমাদের এই বিচ্ছিন্নভাব স্পষ্টই দেখাইয়া দিতেছে যে, ব্রাহ্মণের ধীশক্তি ও দর্শনশাস্ত্রের সাহায্য না লইয়া বৌদ্ধরা দাঁড়াইতে পারে না এবং ব্রাহ্মণও বৌদ্ধের হৃদয় না পাইলে দাঁড়াইতে পারে না। বৌদ্ধ ও ব্রাহ্মণের এই বিচ্ছেদই ভারতবর্ষের অবনতির কারণ।"

২৭ সেপ্টেম্বরের বক্তৃতায়, আমেরিকার শ্রোতারা প্রতিবাদী বিবেকানন্দকে দেখেছিলেন। বিশ্বধর্ম মহাসভায় সেদিন বিবেকানন্দ গর্জে উঠেছিলেন- ধর্মীয় সন্ত্রাস ও মৌলবাদী সংকীর্ণতার বিরুদ্ধে। তিনি বলেছিলেন, সম্প্রীতি, উদারতাই একমাত্র পথ, যে পথ ধরে চললে ধর্মীয় সন্ত্রাস ধ্বংস হবে। 'বিদায়' সম্ভাষণেও বিবেকানন্দ তাঁর প্রথম বক্তৃতার সূত্র ধরে আলোচনা করেছিলেন। তিনি সমস্ত ধর্মের প্রতি শ্রদ্ধা জানিয়ে বক্তৃতায় বলেছিলেন, "যদি কেহ এরূপ স্বপ্ন দেখেন যে অন্যান্য ধর্ম লোপ পাইবে এবং তাঁহার ধর্মই টিকিয়া থাকিবে, তবে তিনি বাস্তবিকই কৃপার পাত্র। তাঁহার জন্য আমি আন্তরিক দুঃখিত। তাঁহাকে আমি স্পষ্টভাবে বলিয়া দিতেছি, তাঁহার ন্যায় ব্যক্তির বাধাপ্রদান সত্ত্বেও শীঘ্রই প্রত্যেক ধর্মের পতাকার উপর লিখিত হইবে। বিবাদ নয়, সহায়তা। বিনাশ নয়, পরস্পরের ভাবগ্রহণ। মতবিরোধ নয়, সমন্বয় ও শান্তি চাই এখন।"

সুভাষচন্দ্র বসু

'তোমরা আমাকে রক্ত দাও'

সুভাষচন্দ্র বসু গুজরাতের হরিপুরায় ১৯৩৮ সালের ১৯ থেকে ২১ ফেব্রুয়ারিতে অনুষ্ঠিত জাতীয় কংগ্রেসের ৫১তম অধিবেশনে যে ঐতিহাসিক অভিভাষণ পাঠ করেছিলেন সেই বক্তৃতাটি 'হরিপুরাঅভিভাষণ' নামে প্রসিদ্ধ। মূল বক্তৃতাটি বাংলায় অনুবাদ করেন ভবানীপ্রসাদ চট্টোপাধ্যায়। আলোচ্য বক্তৃতায় সাম্রাজ্যবাদীদের উদ্দেশ্যে কোন বিদ্বেষ প্রকাশ করেননি সুভাষচন্দ্র। তাদের কে তিনি চ্যালেঞ্জ জানিয়েছিলেন সাম্রাজ্যকে স্বাধীন জাতি সমূহের বন্ধনহীন সঙ্ঘে পরিণত করতে। এই বক্তৃতায় আমরা দেখেছি বামপন্থী শক্তির মনের কথা বলা হয়েছে। এই বক্তৃতায় কর্মসুচী নির্ধারণ করা হয়েছে। তিনি বক্তৃতায় বলেন প্রথম যে সমস্যা নিয়ে কাজ করতে হবে সেটি

জনসংখ্যা বৃদ্ধি। সম্ভবত ভারতের রাজনৈতিক নেতাদের মধ্যে তিনি প্রথম জনসংখ্যা নিয়ন্ত্রণের কথা ব্যক্ত করেছিলেন। এছাড়া তিনি একে একে যে বিষয়গুলি নিয়ে বলেছিলেন সেগুলি হল- জাতীয় পরিকল্পনা, দেশের দারিদ্র্য দূরীকরণ, ভূমিব্যবস্থার ব্যাপক সংস্কার, জমিদারি প্রথা বিলোপ, কৃষিঋণ মুকুব, গ্রামীণ অর্থনীতি মজবুত করতে সস্তা মূলধনের ব্যবস্থা, সমবায় প্রথার বিস্তার, বৈজ্ঞানিক কৃষির মাধ্যমে উৎপাদন বৃদ্ধি, শিল্পায়নের ওপর রাষ্ট্রীয় মালিকানা ও নিয়ন্ত্রণ, দেশের অর্থনৈতিক উন্নয়ন পরিকল্পনা ইত্যাদি। শিশির কুমার বসু ও সুগত বসু হরিপুরা ভাষণ সম্পর্কে বলেছেন- "এই ভাষণে পাওয়া যায় ব্রিটিশ সাম্রাজ্যের বিশ্বব্যাপী সংগঠনের বিবিধ শক্তি ও দুর্বলতম এক অন্তর্ভেদী বিশ্লেষণ ও স্বাধীন ভারতের আর্থ-সামাজিক পুর্নগঠনের একটি সাম্যতন্ত্রী মানচিত্র।"

১৯৪৩ সালের ৪ জুলাই ভারতীয় স্বাধীনতা সংঘের এক সাধারণ সভায় রাসবিহারী বসু তাঁর 'আজাদ হিন্দ বাহিনী' সুভাষের হাতে সমর্পণ করেন। সুভাষচন্দ্রকে আজাদ হিন্দ বাহিনীর সভাপতির পদে নিযুক্ত করা হয়। এই সভায় তাঁকে নেতাজি নামে আখ্যা দেওয়া হয়। সুভাষ বসু সভাপতির দায়িত্ব নিয়ে অভিবাদন গ্রহণ করেন। এসময় তিনি বলেন, 'সহজে স্বাধীনতা আসবে না- আসতে পারে না। আমাদের দাবি, স্বাধীনতার দাবি। রিক্ত আমি, সর্বহারা আমি, তোমাদের হয়তো আজ কিছুই দিতে পারবো না। তবে, তোমরা আমাকে রক্ত দাও, আমি স্বাধীনতা দেব।'

উইনস্টন চার্চিল

'দেওয়ার মতো কিছুই নেই আমার। আছে শুধু রক্ত, কষ্ট, অশ্রু আর ঘাম'

ইংল্যান্ডের প্রধানমন্ত্রী উইনস্টন চার্চিলের ঘটনাবহুল জীবন ছিল। তিনি স্কুল জীবনে কোনদিন সাফল্যের মুখ দেখেননি, সামরিক জীবনের প্রবেশিকা পরীক্ষায় তিনবার বিফল হন। তবে পরবর্তীকালে দেখা যায় তিনি বিখ্যাত ওয়াশিংটন পত্রিকার সার্থক সাংবাদিক হয়েছেন। তিনি সাহিত্য চর্চা করে নোবেল পেয়েছেন। চার্চিল প্রথম বিশ্বযুদ্ধ, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধে যোগদান করেছিলেন। সামরিক জীবনে তিনি-ভারত, সুদান, দক্ষিণ আফ্রিকা, কিউবা সহ বিভিন্ন দেশের সঙ্গে যুদ্ধ করেন। চার্চিল রাজনীতিতে যোগদান করে বিপুল সাফল্য পান। ১৯৪০ থেকে ১৯৪৫ এবং ১৯৫১ থেকে ১৯৫৫ ইংল্যান্ডের প্রধানমন্ত্রীর পদ সামলান চার্চিল। এইসময় তিনি তাঁর প্রায় সমস্ত বক্তৃতায় দুই আঙ্গুল উঁচু করে সিগনেচার সিম্বল 'V' ফর ভিক্টরি অর্থাৎ বিজয় চিহ্ন দেখিয়ে সমগ্র বিশ্বে ব্যাপক ভাবে জনপ্রিয় হয়েছিলেন। সামরিক জীবন এবং রাজনৈতিক জীবনে চার্চিল অসংখ্য বক্তৃতা দিয়েছেন, তবে তাঁর ১৯৪০ সালের ১৩ মে র বক্তৃতাটি অন্যান্য বক্তৃতার থেকে ভিন্ন। প্রসঙ্গত উল্লেখ্য, ১৯৩৯ সালের ৩ মে ইংল্যান্ড জার্মানির বিরুদ্ধে যুদ্ধ ঘোষণা করে। এই যুদ্ধ ইংল্যান্ডের রাজনীতিতে এক নাটকীয় পরিবর্তন আনে। এমনি এক নাটকীয় প্রেক্ষাপটে ১৯৪০

সালের ১২ মে উইনস্টন চার্চিল প্রধানমন্ত্রী হিসেবে শপথ গ্রহণ করেন। জনসাধারণ এই সময়ে দুটি কারণে ক্ষিপ্ত হয়ে ওঠেন- ১) তৎকালীন প্রধানমন্ত্রী নিভাইল চেম্বারলিকে প্রধান মন্ত্রীর পদ থেকে সরিয়ে যুদ্ধবাজ হিসেবে খ্যাত চার্চিলকে প্রধানমন্ত্রীর পদে নিযুক্তকরণ। ২) চার্চিল জার্মানির সঙ্গে কোনো আপসে না গিয়ে অনির্দিষ্টকালের জন্য যুদ্ধ চালিয়ে যাওয়ার পরিকল্পনা গ্রহণ।

১৩ মে প্রধানমন্ত্রী হিসেবে নিযুক্ত হবার পর ইংল্যান্ডের হাউস অব কমন্সে চার্চিল বক্তৃতা দেন। বক্তব্যের সূচনায় তিনি তার নিজের এবং যুদ্ধ পরিচালনার জন্য 'ওয়ার ক্যাবিনেট' এর দায়িত্ব গ্রহণের বর্ণনা দেন। এরপর, যুদ্ধ এবং যুদ্ধ প্রস্তুতির সম্পর্কে বিস্তারিত বর্ণনা দেন। অনিবার্য কারণে তিনি দীর্ঘ বক্তৃতা পেশ করতে পারবেন না বলে ক্ষমা চেয়ে নেন। যুদ্ধের জন্য সবার সমর্থন ও সহায়তা কামনা করেন। এরপর তিনি তাঁর বক্তৃতার উচ্চারণ করেন অমোঘ বাণী- এই সরকারে মন্ত্রী হিসেবে যাঁরা শপথ নিয়েছেন আমি তাঁদের এবং মহান সংসদকেও বলছি, 'আমার দেওয়ার মতো কিছুই নেই, আছে শুধু রক্ত, কষ্ট, অশ্রু আর ঘাম, আমাদের সামনে অগ্নিপরীক্ষা, আমাদের মাসের পর মাস যুদ্ধ করতে হবে আর কষ্ট সহ্য করতে হবে। তোমরা যদি জিজ্ঞেস কর আমাদের নীতিমালা কী, তাহলে আমি বলব আজ আমাদের একটাই নীতি; জল, স্থল ও আকাশপথে যুদ্ধ চালিয়ে যাওয়া, আমাদের সমস্ত সামর্থ্য আর ঈশ্বর-প্রদত্ত শক্তি নিয়ে আমাদের যুদ্ধ চালিয়ে যেতে হবে নিষ্ঠুরতার বিরুদ্ধে, আমাদের নীতি এটাই, আমাকে যদি প্রশ্ন কর আমাদের লক্ষ্য কী? আমি এক কথায় উত্তর দেব- বিজয়। রাস্তা যতই দীর্ঘ অথবা দুর্গম হোক, বিজয়কে ছাড়া আমাদের বাঁচার কোনো রাস্তা নেই।'

মহাত্মা গান্ধী

'করেঙ্গে ইয়ে মরেঙ্গে'

তখন দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ চলছে। যুদ্ধ শুরু হয়েছে বেশ অনেকদিন, প্রায় সব কিছুই ধ্বংস হয়ে গেছে, মানবসভ্যতা সংকটময়, চারিদিকে যুদ্ধ বিধ্বস্ত পরিস্থিতি, কেউ লড়ছে নিজের অস্তিত্ব রক্ষায়, কেউ বা নিজের দেশকে ভালবেসে, কেউ কেউ কেবলমাত্র দেশ জয়ের নেশায় লড়াই করছে, সেইসময় ভারতে দেখা গেল অদ্ভুত এক দৃশ্য!

এমন এক ভয়ানক পরিস্থিতিতে তৎকালীন ব্রিটিশ-শাসিত ভারতবর্ষে দেখা গেল মহাত্মা গান্ধী অহিংসা আন্দোলনের ডাক দিচ্ছেন। ভালোবাসাকে হাতিয়ার করে ব্রিটিশদের ভারত থেকে বিদায় করা এবং ভারতের স্বাধীনতা অর্জনের লক্ষ্যে এই সংগ্রামের ডাক দিয়েছিলেন মহাত্মা গান্ধী। সেই আন্দোলন 'ব্রিটিশ তাড়াও' বা 'কুউট ইন্ডিয়া' আন্দোলন নামে পরিচিত। ১৯৪২

সালের ৮ আগস্ট মহাত্মা বোম্বের গাওলিয়া ট্যাক ময়দানে ব্রিটিশদের ভারত ছেড়ে যেতে বলেন। তিনি এই বক্তৃতায় বলেন 'করেঙ্গে ইয়ে মরেঙ্গে'। এই বক্তৃতাটি ভারত ছাড়ো বা কুইট ইন্ডিয়া বক্তৃতা নামে বিখ্যাত।

নেলসন ম্যান্ডেলা

'স্বাধীনতা অর্জনের কোনো সহজ পথ নেই'

কৃষ্ণাঙ্গদের ওপর শ্বেতাঙ্গদের বর্ণবাদী আচরণের বিরুদ্ধে সারাজীবন সংগ্রাম চালিয়ে গেছেন। আজ তিনি নিপীড়িত, শোষিত সকল মানুষের পথ প্রদর্শক। ম্যান্ডেলা তার সংগ্রামী জীবনে, অনেক বক্তৃতা দিয়েছেন। তার অসাধারণ বক্তৃতা শুনে অসংখ্য সর্বহারা মানুষ উজ্জীবিত হয়েছেন। তাই ম্যান্ডেলা কেবল দক্ষিণ আফ্রিকারই নেতা হিসাবে সীমাবদ্ধ থাকেননি, তিনি সারা পৃথিবীর সংগ্রামী মানুষের প্রতিনিধি। ম্যান্ডেলা তার রাজনৈতিক জীবনে অনেক বক্তৃতা দিয়েছেন। তাঁর প্রায় সব বক্তৃতাগুলো প্রসিদ্ধ। তবে ১৯৫৩ সালের ২১ সেপ্টেম্বরের বক্তৃতাটি সর্বকালের সেরা বক্তৃতা হিসাবে পরিচিতি পেয়েছে। নেলসন ম্যান্ডেলার বিরুদ্ধে আইনি লড়াই চলার সময়, এই বক্তৃতার গুরুত্বপূর্ণ কিছু কথা পরবর্তী সময় তাঁর কণ্ঠে আবার কখন তাঁর আইনজীবীদের কণ্ঠে বারংবার শোনা গেছে। ম্যান্ডেলা ২১ সেপ্টেম্বরের এই বক্তৃতা অনেকটা নাটকীয় ভাবে শুরু করেন, তিনি বক্তৃতার শুরুতে জানান, সেই ১৯১২ সাল থেকে কৃষ্ণাঙ্গদের উপর শ্বেতাঙ্গদের নির্যাতন শুরু হয়েছে, এই অত্যাচার নিয়ে মানুষ আলোচনা করেছেন ঘরে-বাইরে, প্রাদেশিক ও জাতীয় সমাবেশে, ট্রেনে-বাসে, কল-কারখানায়, খেত-খামারে, গ্রামগঞ্জে, শহরে, স্কুলে এবং জেলখানায়। এই বক্তৃতায় ম্যান্ডেলা জনগণকে জানিয়েছিলেন যত বড় বিপদ আসুক না কেন রাজনৈতিক ভাবে সচেতন থাকতে হবে। এই বক্তৃতায় ম্যান্ডেলা ঘোষণা করেছিলেন -স্বাধীনতা অর্জনের কোনো সহজ পথ নেই।

মার্টিন লুথার কিং

'আমার একটি স্বপ্ন আছে'

১৯৬৩ সালের ২৮ আগস্ট মার্কিন যুক্তরাষ্ট্রের ওয়াশিংটন শহরে মার্টিন লুথার কিং একটি বক্তৃতা দেন, সেই বক্তৃতায় শ্রোতা হিসাবে যোগদান করেন কিং-এর সহকর্মী, বেকার যুবক, স্বাধীনতাকামী সাধারণ জনতা, ধর্মীয় নেতা, শ্রমিক নেতা এবং কৃষ্ণাঙ্গ নেতারা। লোকারণ্য হয়ে ওঠে ওয়াশিংটন স্মৃতিসৌধ লিংকন স্কোয়ার। মার্টিন লুথার কিং- এই সমাবেশের শেষ বক্তা ছিলেন। তিনি প্রথমে ধন্যবাদ জ্ঞাপন করেন স্বাধীনতার জন্য আয়োজিত মার্কিন ইতিহাসের সবচেয়ে বড় সমাবেশে যোগদানের সুযোগ পাওয়ার জন্য। এই বক্তৃতায় তিনি তুলে ধরলেন

শ্বেতাঙ্গদের বৈষম্যমূলক আচরণ আর কৃষ্ণাঙ্গদের ওপর নির্যাতন ও বঞ্চনার কথা। তিনি বলেন- আমাদের কাছে কোন কিছু প্রাপ্তি নেই ঠিক ততদিন পর্যন্ত, যতদিন নিগ্রোরা পুলিশের অসহনীয় নির্যাতনের শিকার হবে। ক্লান্ত শ্রান্ত নিগ্রোরা শহরের হোটেল বা মোটেলে বিশ্রামের অধিকার পাবে! যতদিন আমাদের শিশুরা 'কেবলমাত্র শ্বেতাঙ্গদের জন্য' লেখা সাইনবোর্ড দেখবে। আমি জানি, তোমরা অনেকেই দূরদূরান্ত থেকে এসেছ, তোমরা কেউ জেলের কুঠরী থেকে, কেউবা পুলিশের টর্চার সেল থেকে এসেছ, তোমরা নিজের ঘরে ফিরে যাও। কিন্তু কাদা জলে ডুবে থেকো না। হয়তো আজ বা আগামীকাল আমাদের জন্য সংকটময় সময়, তবুও আমি স্বপ্ন দেখি, আমেরিকার অস্তিত্বে এই স্বপ্নগাঁথা আছে। আমি স্বপ্ন দেখি, একদিন এই জাতির ঘুম ভাঙবে, এবং তারা বিশ্বাস করবে, সমস্ত মানুষ জন্মসূত্রে সমান।

বঙ্গবন্ধু শেখ মুজিবুর রহমান

'এবারের সংগ্রাম আমাদের মুক্তির সংগ্রাম, এবারের সংগ্রাম স্বাধীনতার সংগ্রাম'

শেখ মুজিবুর রহমান সেরা বাগ্মী হিসাবে পরিচিত। তিনি ১৯৭১ সালের ৭ মার্চ ঢাকার তৎকালীন রেসকোর্স ময়দানে ঐতিহাসিক বক্তৃতা প্রদান করেন। সেই বক্তৃতায় তিনি স্বাধীনতা সংগ্রামের ঘোষণা করেন। আলোচ্য বক্তৃতায় তিনি প্রথমে তুলে ধরেন তার দুঃখভরা হৃদয়ের কথা। কারণ তখন দেশের বিভিন্ন শহরের রাজপথ রক্তে রঞ্জিত, নির্দয় ভাবে পাকিস্তানী সেনারা বাংলাদেশের মানুষদের হত্যা করে চলেছে। এই বক্তৃতায় তিনি একে একে বর্ণনা করেছেন তাঁর প্রথম থেকে নেওয়া বিভিন্ন কর্মসূচি ও প্রস্তাব। শাসকগোষ্ঠী বাহান্ন সাল থেকে একে একে প্রায় প্রতিটি বছরে যে রক্তপাত ঘটিয়েছে তারও বর্ণনা দিলেন। এই বর্ণনায় তিনি ইয়াহিয়া ও ভুট্টোর ষড়যন্ত্রের কথাও ব্যক্ত করেছেন। নিজের অবস্থান ব্যাখ্যা করে তিনি বলেন, প্রধানমন্ত্রিত্ব নয়, জনগণের অধিকারই তার একান্ত কাম্য। এই অধিকার আদায়ের জন্য মুজিব হরতাল ও আন্দোলনের ডাক দেন। তিনি নির্দেশ দিয়ে বলেন ঘরে ঘরে দুর্গ গড়ে তোলো। তিনি বক্তৃতায় দৃঢ় কণ্ঠে ঘোষণা করেন তাঁর অবর্তমানে আন্দোলন যেন না থামে, সংগ্রাম চালিয়ে যেতে হবে, এবং যে কোন মূল্যে দেশের জন্য স্বাধীনতা নিয়ে আসতে হবে। বক্তৃতা শেষে এসে তিনি ঘোষণা করেন- 'এবারের সংগ্রাম আমাদের মুক্তির সংগ্রাম, এবারের সংগ্রাম স্বাধীনতার সংগ্রাম।' এই বক্তৃতা প্রসঙ্গে আরেফিন সিদ্দিকী বলেছেন- "বাংলাদেশের জন্মের প্রাক্কালে বাংলার জনগণের সাথে বাংলাদেশের অবিসংবদিত নেতার সংলাপ এই বক্তৃতা।"

শেখ মুজিবুর রহমানের ৭ই মার্চের বক্তৃতার সঙ্গে কয়েকটি জনপ্রিয় বক্তৃতার তুলনা করা হয়। সেই বক্তৃতাগুলি হল (১) উইনস্টন চার্চিলের We Shall Fight on the Beaches (২) আব্রাহাম লিংকনের The Gettysburg Address এবং (৩)মার্টিন লুথার কিং (জুনিয়র) এর I

Have a Dream।

'উই শ্যাল ফাইট অন্য দা বিচেস' বারো মিনিট ষোলো সেকেন্ডের এই বক্তৃতাটি ছিল তিন হাজার সাতশো আটষট্টি শব্দের। চার্চিলের বক্তৃতার এই অংশের সঙ্গে- '...we shall fight on the seas and oceans, we shall fight with growing confidence and growing strength in the air, we shall defend our island, whatever the cost may be. We shall fight on the beaches, we shall fight on the landing grounds, we shall fight in the fields and in the streets' মুজিবের বক্তৃতার এই অংশটুকু অনুপ্রাণিত বলে মনে করা হয়- 'প্রত্যেক ঘরে ঘরে দুর্গ গড়ে তোল। তোমাদের যা কিছু আছে তাই নিয়ে শত্রুর মোকাবেলা করতে হবে এবং জীবনের তরে রাস্তাঘাট যা যা আছে সবকিছু আমি যদি হুকুম দেবার নাও পারি, তোমরা বন্ধ করে দেবে। আমরা ভাতে মারবো, আমরা পানিতে মারবো'।

দুশো বাহাত্তর শব্দের 'গেটিসবার্গ অ্যাড্রেস' বক্তৃতাটি লিখিত ছিল। এই বক্তৃতায় লিংকন বলেছেন- 'of the people, by the people, for the people' সেই কথায় মুজিবের বক্তৃতায় আরও স্পষ্ট রূপে ধরা পড়েছে তিনি ৭ই মার্চের বক্তৃতায় অন্তত পক্ষে ২০ বার মানুষ শব্দটি উচ্চারণ করেছেন। উদাহরণ স্বরূপ; 'আজ বাংলার মানুষ মুক্তি চায়, বাংলার মানুষ বাঁচতে চায়, বাংলার মানুষ তার অধিকার চায়', 'এদেশের মানুষ অর্থনৈতিক, রাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক মুক্তি পাবে', 'বাংলার মানুষের রক্তের ইতিহাস', 'আমার বাংলার মানুষের বুকে উপর গুলি করা হয়েছে', 'কি করে মানুষকে হত্যা করা হয়েছে, মানুষের বুকের রক্ত নিয়েছে', 'আমরা এদেশের মানুষের অধিকার চাই' ইত্যাদি।

আব্রাহাম লিংকনের শব্দ চয়নের কারণে বিখ্যাত হয়েছে মূল বক্তৃতাটি। অপরদিকে বঙ্গবন্ধুর শব্দ চয়নের কারণে বিখ্যাত হয়েছে তাঁর বক্তৃতা। লিংকনের of the people, by the people, for the people এই তিনটি কথার বিপরীতে বঙ্গবন্ধুর ভাষণে একাধিক শব্দ ও বাক্য নিজস্ব প্যাটার্ন তৈরি করে নিয়েছে। 'ভাইয়েরা আমার' বলা মাত্রই বোঝা যায় এটা ৭ মার্চ বক্তৃতার অংশ। 'দাবায়া রাখতে পারবা না', 'কি পেলাম আমরা', 'আজ বাংলার মানুষ', কি 'অন্যায় করেছিলাম', 'মনে রাখবা', 'বাংলার মানুষ বাঁচতে চায়' এই সমস্ত কথা একান্ত বঙ্গবন্ধুর নিজস্ব হয়ে গেছে। প্রসঙ্গত আবদুল সামসের চৌধুরী বলেছেন- ''অনেকেই বঙ্গবন্ধুর এই ভাষণকে আমেরিকার গেটিসবাগে দেওয়া আব্রাহাম লিঙ্কনের বিশ্ববিখ্যাত ভাষণটির সঙ্গে তুলনা করেন। লিঙ্কনের বলা 'এ গভর্নমেন্ট অব দ্য পিপল, ফর দ্য পিপল, বাই দ্য পিপল' আজ যেমন সারা বিশ্বের গণতান্ত্রিক দলিল, মুজিবের বলা- এবারের সংগ্রাম মুক্তির সংগ্রাম, এবারের স্বাধীনতার সংগ্রাম কথাটিও আজ সারা দুনিয়ার নির্যাতিত মানুষের কাছে মুক্তিমন্ত্রতুল্য।

মার্টিন লুথার কিং ও মুজিবের দুজনের বক্তৃতা ছিল কাব্যময়। মার্টিন লুথার কিং এর বক্তৃতাটি ছিল পূর্বকল্পিত, বক্তৃতায় তিনি সুপরিকল্পিত ভাবে শব্দ চয়ন করেছিলেন। তাঁর বক্তৃতা পেশ করার কৌশল দেখে, বিশেষজ্ঞরা মনে করেন, এই বক্তৃতা ছিল অনুশীলন নির্ভর। মার্টিন লুথার কিং-এর সতেরো মিনিটের এই বক্তৃতার প্রথমাংশ লিখিত ছিল। বক্তৃতাটি ষোলশ ছেষট্টি শব্দের ছিল। অপরদিকে মুজিবের বক্তৃতা ছিল তাৎক্ষনিক। আঠারো মিনিটের এই বক্তৃতায় একহাজার পঁচানব্বই শব্দ ছিল। তাঁর গম্ভীর কণ্ঠস্বর সাবলীল ভাষা চয়ন শ্রোতাদেরকে মুগ্ধ করেছিল।

মার্টিন লুথার কিং তাঁর বক্তৃতায় সহিষ্ণু হবার বর্ণনা দিয়েছেন, তিনি একশো বছরের করুণ ইতিহাস তুলে ধরেছিলেন তাঁর বক্তব্যে। কিং বলেছেন- “But one hundred years later, the Negro still is not free. One hundred years later, the life of the Negro is still sadly crippled by the manacles of segregation and the chains of discrimination. One hundred years later, the Negro lives on a lonely island of poverty in the midst of a vast ocean of material prosperity. One hundred years later, the Negro is still languished in the corners of American society and finds himself an exile in his own land.”

মুজিব সেখানে তেইশ বছরের করুণ ইতিহাসের বর্ণনা দিয়েছেন- ‘আজ দুঃখের সঙ্গে বলতে হয় ২৩ বৎসরে করুণ ইতিহাস, বাংলার অত্যাচারের, বাংলার মানুষের রক্তের ইতিহাস। ২৩ বৎসরে ইতিহাস মুমূর্ষু নর-নারীর আর্তনাদের ইতিহাস’।

নিগ্রো শব্দটি কিং উচ্চারণ করেছেন পনেরো বার, অপরদিকে মুজিবুর বাংলা বলেছেন চোদ্দ বার (দুবার বলেছেন বাংলাদেশ)। দুজনের বক্তৃতার এই অংশটুকু দেখলে বোঝা যায় একজন নিগ্রোদের কথা বলতে এসেছিলেন অন্যজন বাংলার মানুষের। কিং বলেছেন- “black men as well as white men, would be guaranteed the “unalienable Rights” of “Life, Liberty and the pursuit of Happiness.”

বঙ্গবন্ধু বলেছেন, ‘এই বাংলায় হিন্দু-মুসলিম, বাঙালী-নন-বাঙালী যার আছে তারা আমাদের ভাই। তাদের রক্ষা করার দায়িত্ব আপনাদের ওপর, আমাদের যেন বদনাম না হয়’। এই বক্তব্য থেকে আমাদের কাছে স্পষ্ট হয়ে যায়, তিনি একজন অসাম্প্রদায়িক চেতনাসম্পন্ন মানুষ ছিলেন। তিনি সমতা, একতার কথা এখানে বলেছেন।

মার্টিন লুথার কিং ও মুজিবুর রহমানের বক্তৃতার মিল-অমিল হয়তো অনেকক্ষেত্রে আছে, মিল-অমিলের প্রশ্ন মুলতবি রেখে যদি আমরা তাঁদের বক্তৃতার বিশ্লেষণ করি তবে দেখতে পাব

তাঁদের দুজনের মানুষের প্রতি অগাধ ভালোবাসা ছিল। তাঁদের বক্তৃতায় সেটি বারবার প্রতিফলিত হয়েছে। মুজিবুর সহজ সাবলীল আঞ্চলিক ভাষায় তাঁর বক্তৃতা প্রদান করতেন। তাঁর এই আঞ্চলিক ভাষার উচ্চারণের সঙ্গে শ্রোতারা একাত্ম হয়ে যেতেন। মুজিবুর রহমানের অসাধারণ কাব্যময় বক্তৃতা প্রদান দেখে, আন্তর্জাতিক সাময়িকী নিউজউইক তাঁদের প্রচ্ছদ নিবন্ধে মুজিবকে রাজনীতির কবি বলে আখ্যায়িত করেছিল।

আমদের আলোচনার শুরুতে আমরা বলেছিলাম রেটোরিক পাশ্চাত্যের ইতিহাসে জনপ্রিয় একটি শাস্ত্রধারা। আমাদের মনে প্রশ্ন জাগতে পারে রেটোরিক আসলে কি? খুবই সহজে যদি আমরা এই প্রশ্নের উত্তর দিই, তাহলে দেখবো- সাধারণত আমরা রেটোরিক বলতে বুঝি কথা বলা বা লেখার একটি কৌশল। এই কৌশলকে অবলম্বন করে ভাষা বা লেখাকে বলিষ্ঠ ভাবে উপস্থাপন করা হয়। রেটোরিক ডিভাইস একজন বক্তার নির্দিষ্ট উদ্দেশ্য অর্জন করতে সহায়তা করে। রেটোরিক দ্বারা মানুষকে প্ররোচিত করা হয় বলে রেটোরিককে প্ররোচনা শিল্প বলা হয়। রেটোরিক ডিভাইস বক্তৃতার মধ্যে প্রয়োগ করে বক্তা, শ্রোতার আবেগকে উজ্জীবিত করে তোলে। আমরা আমাদের আলোচনায় মোট বারো জন বাগ্মীর আঠারোটি বক্তৃতার কথা বলেছি। এরমধ্যে এগারোটি রাজনৈতিক বক্তৃতা। সাতটি ধর্মীয় বক্তৃতা। বক্তৃতাগুলির আধেয় বিশ্লেষণ করে দেখা যায় প্রায় সমস্ত বক্তৃতায় রেটোরিক ডিভাইস প্রয়োগ করা হয়েছে। কয়েকটি বক্তৃতা থেকে দেখে নেব, সাধারণ তিনটি রেটোরিক্যাল উপাদান অর্থাৎ- Ethos, Pathos, Logos কি ভাবে বক্তৃতায় প্রয়োগ করা হয়েছে।

সাধারণত বক্তৃতায় ইথোস্ প্রয়োগ করে বক্তৃতায় বিশ্বাসস্থাপন করা হয়। শ্রোতার সঙ্গে বক্তার একটি যোগসূত্র তৈরি হয়। এই রীতিতে সর্বনামের ব্যবহার বেশি হয়, তবে বাক্য সহজ, সাবলীল থাকে। বক্তা তাঁর বক্তৃতাকে প্রাণবন্ত করে তুলতে এই রীতির আশ্রয় নেন। মার্টিন লুথার কিং-এর 'আই হ্যাভ আ ড্রিম' বক্তৃতায় আমরা দেখছি তিনি বলছেন- "যতদিন আমাদের শিশুরা 'কেবলমাত্র শ্বেতাঙ্গদের জন্য' লেখা সাইনবোর্ড দেখবে। আমি জানি, তোমরা অনেকেই দূরদূরান্ত থেকে এসেছ, তোমরা কেউ জেলের কুঠরী থেকে, কেউবা পুলিশের টর্চার সেল থেকে এসেছ, তোমরা নিজের ঘরে ফিরে যাও। কিন্তু কাদা জলে ডুবে থেকো না। হয়তো আজ বা আগামীকাল আমাদের জন্য সংকটময় সময়, তবুও আমি স্বপ্ন দেখি, আমেরিকার অস্তিত্বে এই স্বপ্নগাঁথা আছে। আমি স্বপ্ন দেখি, একদিন এই জাতির ঘুম ভাঙবে, এবং তারা বিশ্বাস করবে, সমস্ত মানুষ জন্মসূত্রে সমান।" অপূর্ব দক্ষতার সঙ্গে কিং এই বক্তৃতায় ইথোসের প্রয়োগ করেছেন। আবার আমরা মুজিবের ৭ই মার্চের বক্তৃতায় লক্ষ্য কঅর্চি- তিনি বক্তৃতায় পুরনো কথা উত্থাপন করে, বক্তৃতাকে বিশ্বাসযোগ্য করে তুলেছেন- "১৯৫২ সালে রক্ত দিয়েছি। ১৯৫৪ সালে নির্বাচনে জয়লাভ করেও আমরা গদিতে বসতে পারিনি। ১৯৫৮ সালে আইয়ুব খান মার্শাল ল জারি করে ১০ বছর পর্যন্ত

আমাদের গোলাম করে রেখেছে।"

বক্তৃতায় প্যাথোস প্রয়োগ করে শ্রোতাদের আবেগে উদ্বেলিত করে তোলা হয়। আমাদের আলোচ্য প্রত্যেকটি ধর্মীয় ও রাজনতিক বক্তৃতায় সুপ্রযুক্ত ভাবে এই রীতির প্রয়োগ ঘটেছে।

মুহাম্মদ বিদায় হজের বক্তৃতার শেষ ছত্রে এসে বলেছিলেন- 'হে আমার প্রভু! আমি আমার পয়গাম (প্রস্তাব) পৌঁছে দিয়েছি, আমার কাজ সম্পূর্ণ করেছি।' এরপর উক্ত সমাবেশের বিপুল সংখ্যক জনগণ আবেগে ভেসে গিয়ে মহম্মদকে প্রত্যুত্তরে সমস্বরে জানিয়েছিলেন- 'হ্যাঁ, আল্লাহর প্রেরিত দূত, আপনি আপনার দায়িত্ব পালন করেছেন।' আবার, সুভাষচন্দ্র বসু বলেছেন- "সহজে স্বাধীনতা আসবে না- আসতে পারে না, আমাদের দাবি, স্বাধীনতার দাবি। রিক্ত আমি, সর্বহারা আমি, তোমাদের হয়তো আজ কিছুই দিতে পারবো না। তবে, তোমরা আমাকে রক্ত দাও, আমি স্বাধীনতা দেব।" বক্তৃতায় লোগোস প্রয়োগ করে, যুক্তি, তথ্য প্রদান করা হয়। বক্তৃতায় তথ্যজ্ঞাপন করে মূল বক্তব্যকে বিশ্বস্ত করে তোলা হয়। নেলসন ম্যান্ডেলা তাঁর বক্তৃতায় জানাচ্ছেন- সেই ১৯১২ সাল থেকে কৃষ্ণাঙ্গদের উপর শ্বেতাঙ্গদের নির্যাতন শুরু হয়েছে, এই অত্যাচার নিয়ে মানুষ আলোচনা করেছেন ঘরে-বাইরে, প্রাদেশিক ও জাতীয় সমাবেশে, ট্রেনে-বাসে, কল-কারখানায়, খেত-খামারে, গ্রামগঞ্জে, শহরে, স্কুলে এবং জেলখানায়।"

অতীতের জনপ্রিয় বক্তৃতাগুলি বিশ্লেষণ করলে দেখা যায়, যে সমস্ত বক্তৃতায় মানুষের স্বাধীনতা, অধিকার, গণতন্ত্র, ঐক্য, সাম্যর আখ্যান পাওয়া যায়, সেই সকল বক্তৃতাগুলি সর্বকালের ইতিহাসে সেরা বক্তৃতার শিরোপা পেয়েছে। আমদের আলোচিত বক্তৃতাগুলি বিভিন্ন সময়ে একটি দেশ, কিংবা একটি জাতির ইতিহাসে সামগ্রিক পরিবর্তনের সাক্ষী; তাই আজকের এই যান্ত্রিক যুগেও বক্তৃতার আলোচনা প্রাসঙ্গিক ও প্রয়োজনীয়।

রবীন্দ্র সঙ্গীতের উৎস ও ক্রমবিকাশ

অঞ্জনা ব্যানার্জী
সহকারী অধ্যাপিকা, বাংলা বিভাগ।

রবীন্দ্রনাথের সঙ্গীত চিন্তার সম্পর্কে সকলেই জানেন। বর্তমান আলোচনায় রবীন্দ্রসঙ্গীতকে এক অন্য দৃষ্টিভঙ্গির মাধ্যমে দেখার চেষ্টা করছি, সে ক্ষেত্রে আলোচনার ধারাবাহিকতা বজায় রাখার জন্য রবীন্দ্রসঙ্গীত নিয়ে কয়েকটি তথ্য এখানে তুলে ধরছি। সঙ্গীত সম্বন্ধে রবীন্দ্রনাথের বিভিন্ন মতামতগুলি তাঁর প্রবন্ধ, বক্তৃতা, চিঠিপত্রের মাধ্যমে আমরা জানতে পেরেছি। সেগুলির ভিত্তিতে এই আলোচনা।

প্রাচীনযুগে আমাদের দেশে সঙ্গীত সভায় রাগ-রাগিণীর স্থানই প্রধান ছিল। এখানে ভাবের ও কথার অপেক্ষা রাগ-রাগিণীর সুরকেই অধিক গুরুত্ব দেওয়া হত। পণ্ডিতদের কানে দরদী গায়কের গান তেমন সাড়া পেত না, সুর-অনুকরণকারী গায়কের গান তাদের সন্তুষ্ট করত। এই বিষয় সম্পর্কে রবীন্দ্রনাথ বলেছেন, "কেহ যদি আজ গান করেন, তবে তানপুরার কর্ণপীড়ক খরজ সুরের জন্মদাতাগণ তাহাকে কী চক্ষে সমালোচনা করেন? তাহারা দেখেন একটা রাগ বা রাগিণী গাওয়া হইতেছে কি না; সে রাগ বা রাগিণীর বাদী সুরগুলিকে যথারীতি সমাদর ও বিসম্বাদী সুরগুলিকে যথারীতি অপমান করা হইতেছে কি না; এ পরীক্ষাতে যদি গানটি উত্তীর্ণ হয় তবেই তাঁহাদের বাহবাসুচক ঘাড় নড়ে"।

মধ্যযুগের শেষের দিকে (১৭৫৭) যখন কোম্পানি শাসন আরম্ভ হল তখন মধ্যযুগে সঙ্গীতের ধারা অনেকটাই বদলে গেল, তার অন্তরালে একাধিক কারণ রয়েছে। পূর্ব যুগের গানগুলি গাওয়া হত কোনো 'দেবালয়' অথবা 'মন্দির প্রাঙ্গণে' এবং 'রাজসভায়'। সে কারণে কবি তাঁর কৃতিগুলি উচ্চাদর্শে রচনা করতেন। তাই রচনাগুলির ভাব, ভাষা প্রভৃতি সকল দিক দিয়েই মার্জিত ও শ্রুতিমধুর ছিল। শ্রোতাগণ সুরুচিসম্পন্ন ছিলেন। অষ্টাদশ শতাব্দীর দ্বিতীয় ভাগে বাঙালি সমাজে এক অন্য স্তরের গান প্রাধান্য লাভ করল। কারণ সে সময় ইংরাজদের চাটুকারিতা করবার জন্য এক শ্রেণীর ধনী সম্প্রদায় বিশেষ ভাবে আগ্রহী হয়ে উঠেছিল, যাদের "বাবু" বলা হত। এঁদের অনেকের রুচি ছিল নিম্ন মানের, সে কারণে এঁরা যে কবিদের পৃষ্ঠপোষকতা করতেন, তারা ঐ বাবুদের আমোদ-বিলাসের জন্য তাদের রুচি অনুসারে, নিম্ন মানের গান রচনা করতেন।

এর ফলে আগের রচনাগুলি, যেমন 'গীতিকাব্য', 'গীতিকা' প্রভৃতি অবলুপ্ত হতে থাকে। সেকালে নতুন প্রচলিত হয়েছিল- যাত্রা, তরজা, খেউড়, পাঁচালি, ঝুমুর ও কবিগান। এইসব গানগুলির মধ্যে রাধাকৃষ্ণের লীলা-কাহিনীর অন্তরালে আদিরসাত্মক অশ্লীলতাই পরিবেশন করা হত। এই বিষয়ে রবীন্দ্রনাথের বক্তব্য- "বাংলার প্রাচীন কাব্যসাহিত্য এবং আধুনিক কাব্যসাহিত্যের মাঝখানে কবিওয়ালাদের গান। .... ইহাদের মধ্যে সেই ভাবের গাঢ়তা এবং গঠনের পরিপাঠ্য নাই"।

পণ্ডিতেরা কেবল রাগ-রাগিণীকেই সঙ্গীত বলে মান্য করতেন, কথা ও ভাবের স্থান সেখানে ছিল না। অন্যদিকে সুর ও ছন্দের মেল-বন্ধন থেকে বহু দূরে কেবল অশ্লীল ভাব ও আদিরসের ছড়াছড়ির ফলে সঙ্গীত একটি প্রাণহীন বস্তুতে পরিণত হয়ে গিয়েছিল। একদিকে সঙ্গীতের অন্তরালে কদর্য বিষয় পরিবেশন করা, অন্য দিকে কেবল সুর ও তালের বন্ধনরজ্জু দ্বারা তাকে আবদ্ধ করে রাখা হয়েছিল। এমন অবস্থায় তার প্রাণ ও শরীরের কিছুই অবশিষ্ঠ ছিল না। থাকবার কথাও নয়।

এমন সঙ্কটজনক পরিবেশে যাঁরা বাংলার সঙ্গীতে নবপ্রাণ সঞ্চার করলেন, তাঁদের মধ্যে সর্বাগ্রে রামনিধি গুপ্তের (১৭৪১-১৮৩৯) নাম উল্লেখযোগ্য। তিনি 'নিধুবাবু' নামে সর্বজন পরিচিত। তাঁকে আধুনিক কাব্যসঙ্গীতের জন্মদাতা বলা যায়। তিনি প্রথম বাংলাগানে 'টপ্পা'র গীতশৈলী আরম্ভ করলেন, যা 'নিধুবাবুর টপ্পা' নামে প্রসিদ্ধ। তাঁর গানগুলি অধিকাংশ প্রেমসঙ্গীত। কিন্তু সেই গানে কোনো অশ্লীলতা ছিল না, সেখানে ছিল রোমান্টিকতা। যা গানগুলিকে মর্যাদা সম্পন্ন করে তুলেছিল। এরপর যাঁদের নাম উল্লেখ করা যায় তাঁরা হলেন- বিষ্ণু চক্রবর্তী (১৮০৪-১৯০০) ও যদুনাথ ভট্টাচার্য (১৮০৪-১৮৪৮)। এঁরা দুজনেই বিষ্ণুপুরের রাজার স্থাপিত একটি অবৈতনিক সঙ্গীত বিদ্যালয় থেকে শিক্ষালাভ করেন এবং কলকাতায় এসে সঙ্গীতের শিক্ষা দান করতে থাকেন। শাস্ত্রীয় সঙ্গীত নিয়ে কয়েকটি পরিবার বিশেষ আগ্রহী ছিলেন। তখনকার দিনে উচ্চাঙ্গ সঙ্গীত ছিল সম্ভ্রান্ত এবং ধনী পরিবারের আত্মমর্যাদা প্রতিষ্ঠার একটি বিশেষ অঙ্গ। উচ্চাঙ্গ সঙ্গীত না জানা লজ্জাজনক ব্যাপার ছিল। সে সময় প্রতিটি খ্যাতনামা ধনী পরিবারের পুরুষেরা শাস্ত্রীয় সঙ্গীতের জ্ঞান অর্জন করতেন। শাস্ত্রীয় সঙ্গীত শিক্ষা করা আভিজাত্যপূর্ণ ছিল। সেকারণে সঙ্গীতের ওস্তাদগণ এই সকল পরিবারে আশ্রয় নিতেন এবং সমঝদার শ্রোতা পেয়ে মনের আনন্দে সঙ্গীত চর্চা করতেন, তার সঙ্গে সঙ্গীতের শিক্ষাও দিতেন। এই সময় এমন অনেক পরিবার ছিল যারা শাস্ত্রীয় সঙ্গীত নিয়ে চর্চা করতেন ও সঙ্গীতজ্ঞদের পৃষ্ঠপোষকতাও করতেন। জোড়াসাঁকোর ঠাকুরবাড়ির মধ্যেও এই রীতির প্রচলন ছিল। এখানে শাস্ত্রীয় সঙ্গীতের প্রতি প্রবল অনুরাগ ছিল। মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর (১৮১৭-১৯০৪) সঙ্গীতজ্ঞ ছিলেন। তাঁর সঙ্গীতের প্রতি সহৃদয়তার কারণেই তাঁদের বাড়ীতে বিভিন্ন সঙ্গীত শিল্পীরা সর্বসময় সঙ্গীত চর্চা করতেন। এছাড়া পরিবারের ছেলেমেয়েদের সঙ্গীত শিক্ষার জন্য একাধিক সঙ্গীত শিক্ষক নিযুক্ত ছিলেন। বিষ্ণু চক্রবর্তী প্রথম সঙ্গীত শিক্ষক ছিলেন। তিনি বিভিন্ন প্রকার উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের রীতিতে বাংলা ব্রহ্মসঙ্গীতের সুর দিতেন এবং বিভিন্ন উৎসবে তা পরিবেশন করতেন। তাঁর গান শুনে সকলেই

মুগ্ধ হতেন। সব সময় ধ্রুপদ ধামারের মন মাতান হৃদয়গ্রাহী সুর শুনে বাড়ীর সকলেই এমনকি বধূরাও সঙ্গীতে পারদর্শী হয়ে উঠেছিলেন। এ প্রসঙ্গক্রমে জোড়াসাঁকো ঠাকুরবাড়ীর সন্তান এবং বিশ্বনন্দিত প্রতিভা রবীন্দ্রনাথ (১৮৬১-১৯৪১) পৃথক আলোচনার দাবি রাখেন।

একথা সর্বজন বিদিত হলেও আমাদের মনে রাখা প্রয়োজন যে, "রবীন্দ্রনাথের জন্ম এমন এক যুগে যখন ভারতবর্ষে এক নতুন জীবন গড়ার একান্তই প্রয়োজন ছিল। পূর্ববর্তী জীবনধারাকে বিনষ্ট করে নতুন সম্ভাবনার মূর্তির স্থাপনা চলছে। সেই সকল সম্ভাবনারূপী মূর্তিকে জীবন্ত করে তুললেন রবীন্দ্রনাথ তাঁর কৃতিগুলির মাধ্যমে। সমাজের নতুন শরীরকে দিলেন প্রাণ। তাঁর প্রতিভার স্পর্শে সমাজের সকলদিকেই এক নতুন প্রাণবন্ত জীবনের সঞ্চরন ঘটেছিল।" অবশ্য কথাটি রবীন্দ্রনাথ স্বয়ং বলেছেন যে, বাংলাদেশে আধুনিক যুগের যখন সবে আরম্ভকাল তখন তিনি জন্মেছিলেন। পুরাতন যুগের আলো তখন ম্লান হয়ে আসছে কিন্তু একেবারে বিলীন হয়নি। তাঁর প্রতিভায় বাংলার সাহিত্য ও সঙ্গীত এক নতুন প্রাণ পেয়েছিল। একথাও অনেকেই স্বীকার করেন, যে, সকল কৃতিগুলির মধ্যে তাঁর গানগুলি অসাধারণ সৃষ্টি।

রবীন্দ্রনাথের জীবনে সঙ্গীতের প্রভাব

জোড়াসাঁকোর ঠাকুর বাড়িতে প্রাচ্য ও পাশ্চাত্য, এই দুই জাতীয় সঙ্গীতের ধারা রবীন্দ্রনাথের বাল্যকালে অজস্রধারে প্রবাহিত ছিল। যদুনাথ ভট্টাচার্য (যদু ভট্ট), শ্রীকণ্ঠ সিংহ (- ১২৯১), বিষ্ণু চক্রবর্তী প্রভৃতি গণ্যমান্য সঙ্গীতজ্ঞেরা এই বাড়ির বৈঠকখানায় আসর জমিয়েছেন।

রবীন্দ্রনাথের পিতা দেবেন্দ্রনাথ স্বয়ং একজন শাস্ত্রীয় সঙ্গীতের সমঝদার ছিলেন, একথা পূর্বেও বলেছি। তাঁর পুত্রেরা অর্থাৎ রবীন্দ্রনাথের অগ্রজেরাও সঙ্গীত নিয়ে যথেষ্ট চর্চা করতেন। হিন্দুস্থানি উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের অনুকরণে তাঁরা বহু ব্রহ্মসঙ্গীত রচনা করেন। তার মধ্যে ধ্রূপদের সংখ্যা ছিল অধিক। সেই যুগে এক সাঙ্গীতিক বায়ুমণ্ডল জোড়াসাঁকোর ঠাকুর বাড়িকে আবিষ্ট করে রেখেছিল। এমন সঙ্গীতময় পরিবেশের প্রভাবে বালকবয়সেই তাঁর (রবীন্দ্রনাথের) জীবন বাঁধা হয়ে গেল সুরের বন্ধনে। আত্মকথাতে তিনি বলেছেন, "কবে যে গান গাহিতে পারিতাম না মনে পড়ে না।

রবীন্দ্রনাথের সঙ্গীত শিক্ষা

প্রথম সঙ্গীত শিক্ষক বিষ্ণু চক্রবর্তী। শৈশবকালে রবীন্দ্রনাথ অত্যন্ত উদারচেতা এমন একজন সঙ্গীতগুরু পেয়েছিলেন, যা তখনকার দিনে আশা করা যায় না। ভারতীয় উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতবিদরা অত্যন্ত গোঁড়া ধরণের ব্যক্তি ছিলেন এবং তাঁরা বাংলা গান প্রায় পছন্দ করতেন না। অথচ বিষ্ণু চক্রবর্তী চলতি গ্রাম্য ভাষার ছড়াকে বিনা দ্বিধায় নিজে গেয়ে শেখাতেন। এই বিষয়ে রবীন্দ্রনাথ 'ছেলেবেলা'তে জানিয়েছেন, "এ দিকে বিষ্ণুর কাছে দিশি গান শুরু হয়েছে শিশুকাল থেকে। গানের এই পাঠশালায়

আমাকে ভর্তি হতে হল। বিষ্ণু যে গানে হাতেখড়ি দিলেন এখনকার কালের কোনো নামী বা বেনামী ওস্তাদ তাকে ছুঁতে ঘৃণা করবেন। সেগুলো পাড়াগেঁয়ে ছড়ার অত্যন্ত নীচের তলার।"

রবীন্দ্রনাথের বাড়ির সাঙ্গীতিক পরিবেশ

বাল্যকাল থেকে যে সাঙ্গীতিক পরিবেশে তিনি বেড়ে উঠেছিলেন, সেই বেড়ে ওঠার সময় সর্বক্ষণ উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের চর্চা ও সৃষ্টি দেখেছিলেন বলেই তাঁর আপন রচনার মধ্যেও সেই রাগ-রাগিণীর সুর আমরা শুনতে পাই। বাড়ির আবহাওয়া সম্বন্ধে তিনি বলেছেন, "আমাদের পরিবারে শিশুকাল হইতে গানচর্চার মধ্যেই আমরা বাড়িয়া উঠিয়াছি। আমার পক্ষে তাহার একটা সুবিধা এই হইয়াছিল, অতি সহজেই গান আমার সমস্ত প্রকৃতির মধ্যে প্রবেশ করিয়াছিল। তাহার অসুবিধাও ছিল। চেষ্টা করিয়া গান আয়ত্ত করিবার উপযুক্ত অভ্যাস না হওয়াতে, শিক্ষা পাকা হয় নাই। সঙ্গীতবিদ্যা বলিতে যাহা বোঝায় তাহার মধ্যে কোনো অধিকার লাভ করিতে পারি নাই।"

সঙ্গীত শিক্ষা পাকা না হওয়ার কারণ তিনি 'ছেলেবেলা'য় বলেছেন, "তারপরে যখন আমার কিছু বয়স হয়েছে তখন বাড়িতে খুব বড়ো ওস্তাদ এসে বসলেন যদুভট্ট। একটা মস্ত ভুল করলেন জেদ ধরলেন আমাকে গান শেখাবেনই। সেইজন্যে গান শেখাই হল না। কিন্তু কিছু সংগ্রহ করেছিলুম লুকিয়ে-চুরিয়ে।"

রবীন্দ্রনাথ ও শ্রীকণ্ঠ সিংহের সম্পর্ক সম্বন্ধে বলা যায় যে, শ্রীকণ্ঠ সিংহ রবীন্দ্রনাথকে অত্যন্ত স্নেহ করতেন এবং রবীন্দ্রনাথও তাঁকে আন্তরিক শ্রদ্ধা করতেন, ফলে দুজনের সম্পর্ক অতি ঘনিষ্ঠ ছিল। শ্রীকণ্ঠ সিংহের কাছে তিনি অনেক গান শুনে শিখেছেন, কারণ তিনি (শ্রীকণ্ঠ সিংহ) গান শেখাতেন না, গান তিনি দিতেন- এ কথা রবীন্দ্রনাথ স্বয়ং বলেছেন 'ছেলেবেলা' গ্রন্থটিতে।

রবীন্দ্রনাথ সঙ্গীত জগতে প্রথমে কথার সৃষ্টি করতে আরম্ভ করেছিলেন। তাঁর এই কাজে তাঁকে সাহায্য করতেন অক্ষয় চৌধুরী (১৮৫০-১৮৯৮)। অগ্রজ জ্যোতিরিন্দ্রনাথ (১৮৪৯-১৯২৫) পিয়ানো বাজিয়ে নতুন সুরের সৃষ্টি করতেন, সেই সুরগুলিকে কথা দিয়ে সাজাতেন রবীন্দ্রনাথ ও অক্ষয় চৌধুরী। 'জীবনস্মৃতি'তে রবীন্দ্রনাথ এই ঘটনাটির উল্লেখ করেছেন এই ভাবে, "এক সময়ে পিয়ানো বাজাইয়া জ্যোতিদাদা নূতন নূতন সুর তৈরি করায় মাতিয়াছিলেন। প্রত্যহই তাঁহার অঙ্গুলি নৃত্যের সঙ্গে সঙ্গে সুরবর্ষণ হইতে থাকিত। আমি এবং অক্ষয়বাবু তাঁহার সেই সদ্যোজাত সুরগুলিকে কথা দিয়া বাঁধিয়া রাখিবার চেষ্টায় নিযুক্ত ছিলাম। গান বাঁধিবার শিক্ষানবিশি এইরূপে আমার আরম্ভ হইয়াছিল।"

রবীন্দ্রনাথ সঙ্গীতকে শ্রদ্ধা করতেন কাব-দেবতার মত। তেরো বছর বয়স থেকে আরম্ভ করে আশি বছর বয়স পর্যন্ত তিনি গানের অর্ঘ্য দেবতার পদকমলে নিবেদন করে গেছেন। একটার পর

জীবন আলেখ্য এবং রবীন্দ্রনাথ বিভিন্ন স্মৃতিচারণে যা বলেছেন, সে সকল প্রবন্ধগুলি থেকে জানতে পারি যে রবীন্দ্রনাথ বালক অবস্থা থেকে সঙ্গীতময় পরিবেশের মধ্যে থেকেও গতানুগতিক ভাবে সঙ্গীত শিক্ষা করেননি। কিন্তু সঙ্গীত তাঁর হৃদয়ের একটি বড় অংশকে অধিকার করে নিয়েছিল। তাই তিনি গানের সৃষ্টি করতেন মনের আনন্দে। একটি প্রবন্ধে আমরা জেনেছি যে তিনি গান রচনা করতে সবচেয়ে অধিক আনন্দ পেতেন। তিনি অতি স্পষ্ট ভাষায় বলেছেন, "গান লিখতে যেমন আমার নিবিড় আনন্দ হয়, এমন আর কিছুতেই হয় না। এমন নেশায় ধরে যে, তখন গুরুতর কাজের গুরুত্ব একেবারে চলে যায়, বড়ো দায়িত্বের ভারাকর্ষণটা হঠাৎ লোপ পায়, কর্তব্যের দাবিগুলোকে মন এক ধার থেকে নামঞ্জুর করে দেয়।"

রবীন্দ্রনাথ সম্পর্কে শ্রদ্ধেয় শান্তিদেব ঘোষের মন্তব্য হল, "নূতন কিছু করতে হবে বলেই তিনি গান লিখতে বসেন নি। বাইরের তাগিদ নয়, আত্মপ্রকাশ বা সম্মানের আকাঙ্ক্ষা নয়, কেবল সংগীতের অন্তর্নিহিত প্রেরণা ও অন্তরের গভীর আনন্দানুভূতি থেকে তাঁর এই সংগীতের প্রকাশ। এইজন্যেই তাঁকে সাধক বলি। তাই তাঁর সংগীতে আমরা পাই সৃষ্টির পরিচয়।" রবীন্দ্রনাথের গানে আমরা বিভিন্ন প্রকারের সঙ্গীতের প্রভাব দেখি।

হিন্দী উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের প্রভাব

এক কালে সঙ্গীতচর্চায় ঠাকুরবাড়ি সর্বক্ষণ মুখরিত হয়ে থাকত। সেখানকার বাতাসেও যেন সঙ্গীতের সুর ভাসতো। বিভিন্ন ওস্তাদগণ ঠাকুরবাড়িতে বাস করতেন। তাঁরা সর্বক্ষণ উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের চর্চা করতেন, নতুন গানের সৃষ্টি করতেন। এই পরিবারের প্রত্যেক সদস্যরা সঙ্গীতের প্রতি অনুরক্ত ছিলেন বলেই ওস্তাদরাও সঙ্গীতচর্চা করে অসীম তৃপ্তি লাভ করতেন। বিভিন্ন উৎসবে ও উপাসনায় সদাসর্বদা সঙ্গীতচর্চায় ঠাকুরবাড়ি বিভোর হয়ে থাকত। বাড়িটাই যেন ছিল সঙ্গীতের সাগর। সেকারণেই পরিবারের প্রতিটি মানুষ স্বেচ্ছায় অথবা অনিচ্ছায় সঙ্গীতে কখন যে পারদর্শী হয়ে উঠেছিলেন তা তাঁরা নিজেরাই জানতেন না। এই বিষয়টি পূর্বেও আলোচিত করেছি।

সুতরাং বলা যায় যে ঠাকুর পরিবারের প্রত্যেকের দেহের শিরায় উপশিরায় সঙ্গীত প্রবাহিত হয়ে তাদের নিবিড় ভাবে প্রভাবিত করেছিল। রবীন্দ্রনাথ বাল্যকাল থেকেই এই প্রকারের সঙ্গীতময় পারিবারিক পরিবেশে বড় হওয়ায় স্বভাবতই তাঁর মধ্যেও সঙ্গীতের প্রতি একটি গভীর আকর্ষণ জন্মায়। এবিষয়ে তিনি বলেছেন, "বাল্যকালে স্বভাবদোষে আমি যথারীতি গান শিখিনি বটে, কিন্তু ভাগ্যক্রমে গানের রসে আমার মন রসিয়ে উঠেছিল। তখন আমাদের বাড়িতে গানের চর্চার বিরাম ছিল না। বিষ্ণু চক্রবর্তী ছিলন সংগীতের আচার্য, হিন্দুস্থানী সংগীতকলায় তিনি ওস্তাদ ছিলেন। অতএব ছেলেবেলায় যে-সব গান সর্বদা আমার শোনা অভ্যাস ছিল, সে শখের দলের গান নয়; তাই আমার মনে কালোয়াতি গানের একটা ঠাট আপনা - আপনি জমে উঠেছিল।" রাগরাগিণী সম্বন্ধে

তিনি বলেছেন, “আমাদের মতে রাগ-রাগিণী বিশ্বসৃষ্টির মধ্যে নিত্য আছে। সেই জন্য আমাদের কালোয়াতি গানটা ঠিক যেন মানুষের গান নয়, তাহা যেন সমস্ত জগতের।” আবার অন্যত্র বলেছেন, “ভারতবর্ষের সংগীত মানুষের মনে বিশেষ ভাবে এই বিশ্বরসটিকে রসাইয়া তুলিবার ভার লইয়াছে।”

বাল্যকাল থেকে তাঁরা সবসময় ধ্রুপদ, খেয়াল প্রভৃতি গান শুনেছেন তাই এই জাতীয় গানের রূপ, রস ও গাম্ভীর্য সম্পর্কে একটা সাধারণ সংস্কার তাঁর মনে পাকা হয়ে ওঠে। সে কারণে হিন্দুস্থানী গানের মহত্ত্ব ও মাধুর্য মনেপ্রাণে তিনি স্বীকার করতেন। এমনকি ভাল হিন্দুস্থানী গান তাঁকে গভীরভাবে মুগ্ধ করেছিল।

পদাবলী এবং কীর্তনের প্রভাব

রবীন্দ্রনাথের জন্মের অনেক আগেই শ্রীচৈতন্যদেবের সময় থেকে বাংলায় পদাবলী কীর্তনের প্রভাব প্রগাঢ় ছিল। বিদ্যাপতি চণ্ডীদাস প্রভৃতি কবিদের পদাবলী বাংলা সাহিত্যের অমূল্য সম্পদ। পদাবলীর এই প্রভাব রবীন্দ্রনাথের ওপরেও পড়েছিল এবং তিনি পদাবলীর অনুকরণে বহু গানের রচনা করেছিলেন। এই পর্যায়ের উল্লেখযোগ্য হল তাঁর প্রথম জীবনে রচনা ‘ভানুসিংহ ঠাকুরের পদাবলী’র কয়েকটি গান। যেমন,

সজনি সজনি রাধিকা লো,   দেখ অবহুঁ চাহিয়া

মৃদুলগমন শ্যাম আওয়ে   মৃদুল গান গাহিয়া ।।

এবং আরেকটি গান,

গহন কুসুমকুঞ্জ-মাঝে   মৃদুল মধুর বংশী বাজে,

বিসরি ত্রাস লোকলাজে   সজনি আও আও লো ।।

বেদ মন্ত্রের প্রভাব

উপনয়নের গায়ত্রীমন্ত্র উচ্চারণের মধ্য দিয়ে দ্বিতীয় এক ভুবনের সাক্ষাৎ তিনি পেয়েছিলেন। এই উপলব্ধিটি বেদ-বেদান্ত ও উপনিষদের প্রতিফলন রূপ তাঁর গানে লক্ষ্য করা যায়। তিনি বিভিন্ন রচনা এবং গানে ভারতবর্ষের আধ্যাত্মিকতাকে প্রস্ফুটিত করেছিলেন। প্রথম জীবনে তিনি একটি ব্রহ্মসঙ্গীত (নয়ন তোমারে পায় না দেখিতে রয়েছ নয়নে নয়নে) রচনা করার জন্য পিতার কাছে উৎসাহ ও পাঁচ শত টাকা পুরস্কার লাভ করেছিলেন। বেদ উপনিষদে নিরাকার ব্রহ্মের যে উপাসনা করা হয় তিনি সেই স্তোত্রগুলিকে বিভিন্ন গানে রূপায়িত করেছেন। বাল্যকাল থেকেই রবীন্দ্রনাথের অন্তরে বৈদিক ও ঔপনিষদিক চেতনার যে সূচনা হয়েছিল, তার থেকেই গীতাঞ্জলি, গীতিমাল্য,

গীতালির সৃষ্টি। বেদ উপনিষদের থেকে তিনি যে জ্ঞানের প্রকাশ দেখেছিলেন, সেই আলো তাঁকে তাঁর জীবনের নানান দুঃখ কষ্টের অন্ধকার থেকে বের করে এনেছে আলোকময় জগতে। তাই তিনি বেদমন্ত্রকে শাশ্বত বলে মনে করেছেন, তিনি বলেছেন, "আমাদের রামায়ণ মহাভারত সুরে গাওয়া হয়, তাহাতে বৈচিত্র্য নাই, তাহা রাগিণী নয়, তাহা সুর মাত্র। ....আমাদের বেদমন্ত্রগানেও ঐরূপ। তার সঙ্গে একটি সরল সুর, লাগিয়া থাকে, মহারণ্যের মর্মরধ্বনির মতো, মহাসমুদ্রের কলগর্জনের মতো। তাহাতে কেবল এই আভাস দিতে থাকে যে, এই কথাগুলি একদিন দুইদিনের নহে, ইহা অন্তহীন কালের, ইহা মানুষের ক্ষণিক সুখদুঃখের বাণী নহে, ইহা আত্মার নীরবতারই যেন আত্মগত নিবেদন।"

সীমার মাঝে অসীমকে তিনি উপলব্ধি করেছিলেন। সীমার ও অসীমের এই মিলনতত্ত্বের প্রতিফলন তাঁর বহু গানে আমরা দেখতে পাই। তিনি তাঁর রচনায় বলেছেন,

সীমার মাঝে, অসীম তুমি বাজাও আপন সুর -

আমার মধ্যে তোমার প্রকাশ তাই এত মধুর ।।

এবং অন্যত্র বলেছেন,

চোখের আলোয় দেখেছিলেম চোখের বাহিরে

অন্তরে আজ দেখব যখন আলোক নাহি রে ।।

কয়েকটি মন্ত্রকে তিনি নিজ প্রতিভা অনুসারে রাগ-রাগিণীর ছন্দে বেধেঁছেন। যেমন,

"যদেমি প্রস্ফুরান্নিব দৃতির্ণধমাতো

অদ্রিবঃ মুড়া সুক্ষত্র মৃড়থঃ"

অন্য আরেকটি - "সংগচ্ছধ্বং সংরদধ্বং

সং রো মনাংসি জানতাং"

প্রাচীনকাল থেকে আমাদের দেশে মাঙ্গলিক অনুষ্ঠানের প্রারম্ভে যে বেদ-উপনিষদের স্তোত্রগুলি উচ্চারিত হয়ে আসছে, সেগুলিকে পূর্বাপেক্ষা বেশি প্রাণস্পর্শী, সহজ ও সাবলীল রূপে আমাদের কাছে প্রস্তুত করেছেন তিনি। তাই বর্তমানে প্রায় তাঁর দেওয়া সুরে অধিকাংশ স্ত্রোত্রগুলি গীত হয়ে থাকে।

বাউলের প্রভাব

কবি ৩০ বছর বয়সের পর জমিদারীর কাজের জন্য ১২ বছর বাংলার গ্রামে অতিবাহিত করেছেন। সঙ্গীত জীবনে এই সময়টি তাঁর অত্যন্ত গুরুত্বপূর্ণ ছিল। এই সময় তিনি বাউল, সারি, কীর্তন প্রভৃতি সুরের সঙ্গে প্রত্যক্ষভাবে পরিচিত হন। বাউল গানের সুর ও বৈশিষ্ট্য এবং বাউলদের জীবনাদর্শ তাঁকে বিশেষভাবে প্রভাবিত করেছিল। কীর্তন সম্পর্কে তিনি বলেছেন, "কীর্তনসংগীত আমি অনেক কাল থেকেই ভালোবাসি। ওর মধ্যে ভাবপ্রকাশের যে নিবিড় ও গভীর নাট্যশক্তি আছে সে আর কোনো সংগীতে এমন সহজভাবে আছে বলে আমি জানি নে।" বাংলার গ্রাম ছিল তাঁর ঘরের মতন। বিভিন্ন প্রকারের লোকেদের সঙ্গে তিনি মিশেছিলেন। বিভিন্ন মানুষদের অনেক কাছের মানুষ হয়ে তাদের জীবনকে অনেক ভাল করে বুঝেছিলেন। বিশেষ করে পূর্ব বাংলার বিখ্যাত বাউল লালন ফকিরের মনোমুগ্ধকর নাচুনে ছন্দের গানে তিনি বিশেষ ভাবে আকৃষ্ট হন। বাউল গান ভাষার সরলতায় ভাবের গভীরতায় ও সুরের দরদে পুষ্ট বলে রবীন্দ্রনাথ এই সুরকে অবলম্বন করে অনেক গান রচনা করেন। বাউল সুরে তিনি অনেকখানি প্রভাবিত হয়েছিলেন। তাঁর রচিত রাগ-সম্মত সুরেও তাঁর জ্ঞাত অথবা অজ্ঞাতসারে বাউল সুর মিশে গেছে।

বিভিন্ন প্রাদেশিক গানের প্রভাব

রবীন্দ্রনাথ প্রকৃতি অনুরাগী ছিলেন। তাঁর মন বদ্ধ জলাশয়ের মত কোনো নির্দিষ্ট গণ্ডীর মধ্যে আবদ্ধ ছিল না। কোনো কিছুকে তিনি ছোট করে দূরে ঠেলে দিতেন না। যখন যে প্রদেশের অথবা যে অঞ্চলের যা ভাল সুর ও ভাব পেতেন তা তিনি স্বরচিত গানে নিয়ে এসে তাঁর সঙ্গীত ভাণ্ডারকে বৈচিত্র্যময় করে তুলেছিলেন। তিনি যখন মাত্র ১১ বছরের বালক ছিলেন, তখন তিনি তাঁর পিতার সঙ্গে বোলপুর হয়ে অমৃতসরে আসেন। সেই সময় গুরু-দরবারে অনেক শিখ 'ভজন' এবং 'শবদ' শুনেছিলেন, তার পরে একটি শবদের বঙ্গানুবাদ করে 'গগনের থালে রবি চন্দ্র দীপক জ্বলে' গানটির রচনা করেন ও মূল শবদটির সঙ্গে আরো কয়েকেটি পংক্তি যুক্ত করেন। গানটি নিয়ে বিতর্ক আছে যে গানটি গুরুনানকের বিখ্যাত 'গগনময়ী থাল, রবি চন্দ্র দীপক বনে' ভজনের প্রথমাংশের অনূদিত অংশ, যেটি জ্যোতিরিন্দ্রনাথ অনুবাদ করেছিলেনে। কিন্তু এই বিতর্কের শেষে আমরা পেয়েছি যে গানটি রবীন্দ্রনাথেরই সৃষ্টি।

এমন ভাবেই তিনি ভারতবর্ষের বিভিন্ন অঞ্চল থেকেই নানান গানের অনুকরণে বহু বিচিত্র গানের রচনা করেছেন। ইন্দীরা দেবীর কথা থেকে জানতে পারি যে, তার মধ্যে "কানাড়ী, মারাঠী, গুজরাটী, পাঞ্জাবী মাদ্রাজী ও মহীশূরী" প্রভৃতি সকল প্রদেশের গানের প্রভাব পড়েছে তাঁর গানে। এ ছাড়া হিন্দী গানের প্রভাব তো আছেই।

পাশ্চাত্য সঙ্গীতের প্রভাব

রবীন্দ্রনাথ ব্যারিস্টার হওয়ার জন্য ১৮৭৮ সালে বিলেতে প্রথম যাত্রা করেন। তিনি বহুবার বিদেশ ভ্রমণের সুযোগ পেয়েছিলেন এবং যখন যেখানে গিয়েছেন, তখন সেখানকার শ্রেষ্ঠ সঙ্গীত শোনার সুযোগও তাঁর হয়েছিল। পাশ্চাত্য সঙ্গীতের দ্বারা তিনি প্রভাবিত হয়ে পড়েছিলেন। এর মধ্যে যেগুলির অন্তর্নিহিত মাধুরী ও রসবৈভব তাঁর ভাল লেগেছে তার সুর সমূহকে নিজের গানে বেঁধে বাঙালি কে উপহার দিয়েছেন। পাশ্চাত্য সঙ্গীতের প্রভাব আমরা সর্বপ্রথম পেয়েছিলাম 'বাল্মীকিপ্রতিভা'-য়। ভারতীয় ও বিদেশী সুরের চর্চার মধ্যে এই বাল্মীকিপ্রতিভা রচিত হল। গানগুলি হল,

তবে আয় সবে আয়, তবে আয় সবে আয় -

তবে ঢাল সুরা, ঢাল সুরা, ঢাল ঢাল ঢাল !

আরেকটি অন্য গান-

কালী কালী বলো রে আজ

বলো হো, হো হো, বলো হো, হো হো, বলো হো !

নামের জোরে সাধিব কাজ।

রবীন্দ্রনাথ প্রাচ্য ও পাশ্চাত্যের বহু সঙ্গীত ধারার সুর ও ভাবকে মননশীল অনুশীলনের দ্বারা আপন সঙ্গীতরাজ্য সৃষ্টি করেছিলেন। একটি ছোট বীজ যেমন প্রথম থেকেই জল, মাটি, বায়ু, আলো-এ সকলের যথেষ্ট প্রয়াসে দিনে দিনে প্রস্ফুটিত হয়ে বীজ থেকে চারা, তারপর কলি, তারপরে ফুল এবং তারপরে বৃক্ষ রূপে ফল দেয়; রবীন্দ্রসঙ্গীতও ঠিক তেমনই বিশ্বকবির মনে বীজ রূপে বিদ্বমান ছিল, পিতা ও অগ্রজদের উৎসাহ, পারিবারিক পরিবেশ, বিভিন্ন স্থান পরিদর্শন, নানা ধরনের মানুষদের সঙ্গে আলাপ-আলোচনা, বেদ-উপনিষদের সম্যক জ্ঞান ইত্যাদি সবকিছুই একত্রে যুক্ত হয়ে একটি অদ্বিতীয় সৃষ্টি রূপে আমাদের সামনে দাঁড়িয়ে আছে। তাঁর গানে আমরা হৃদয়ের সকল অনুভূতি ও আবেগের কথা পাই। এই সকল কথাগুলি বিভিন্ন সুরে ব্যক্ত হয়েছে রবীন্দ্রসঙ্গীতে।

রবীন্দ্রসঙ্গীতের মধ্যে একটি ক্রমবিবর্তনের ধারা আমরা লক্ষ করতে পারি।

১) প্রথম স্তরে- রবীন্দ্রনাথ ভালো ভালো শাস্ত্রীয় উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের আশ্রয় নিয়ে গান রচনা করেন।

২) দ্বিতীয় স্তরে- শাস্ত্রীয় উচ্চাঙ্গ সঙ্গীতের কাঠামোর ভিতরে সুর ও তালের নূতনত্বের সঙ্গে ভাব

প্রকাশের ধারার পরিবর্তন ঘটান। সেই কাঠামোর উপর রঙটি বদল করে অলংকারগুলিকে একটু নূতন করে সাজালেন।

৩) তৃতীয় স্তরে- আমরা পাই ভাটিয়ালী, বাউল, কীর্তন প্রভৃতি। বিভিন্ন দরবারি সুরের সঙ্গে দেশী সুরের মিশ্রণ, অনেকটা প্রাচীনকালের আদর্শে।

৪) চতুর্থ স্তরে– এই সময়কার কৃতি অসীম। এই যুগের গানগুলির মধ্যে পাই সুসংযত রীতি নিয়ম এবং উদারতার মনোভাব। আমার মনে হয়েছে এই যুগের গানগুলি মূলত তাঁর আপন সৃষ্টি। কারণ এই সময় তিনি গানের বাণীগুলিকে আপন হৃদয়ের অনুভূতি থেকে সৃষ্টি করেছিলেন, এবং সুরগুলি ছিল বিভিন্ন রাগ-রাগিণীর থেকে নেওয়া, কেবল অনুভূতিগুলিকে ব্যক্ত করার জন্য।

এই সকল আলোচনা থেকে এই কথাটি স্পষ্ট বোঝা যায় যে, তিনি সব ধরণের সঙ্গীত থেকেই সারবস্তুটি নিয়ে তাকে আপন প্রতিভায় সুন্দর রূপ দিয়ে তাঁর সঙ্গীত জগতকে সুমধুর করে তুলেছিলেন। গানের মাধ্যমে প্রত্যেক দেশের ও বিদেশের সুরের সঙ্গে আমাদের পরিচয় করিয়ে দিয়েছেন। তাঁর কাছে কোনো কিছুই অশুচি ছিল না, তিনি যেকোনো বস্তু অথবা বিষয় কে তাঁর মৌলিক রূপেই গ্রহণ করতেন, এবং তার সৌন্দর্যকে আপন প্রতিভায় অনুপম অনবদ্য করে তুলতেন। তাঁর এই সৌন্দর্যবোধই ব্যক্ত করে তাঁর শিল্পী হৃদয়ের পরিচয়।

তিনি সঙ্গীতের মাধ্যমে সাধারণ মানুষের মনের ভিতরের প্রত্যেকটি সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম অনুভূতির কথা অতি সহজেই মনোরম সুরে ব্যক্ত করে গেছেন। তাঁর গানগুলি শুনলে অথবা গাইলে মনে হয়, ব্যক্তির আপন মনের অনুভূতির সুমধুর অভিব্যক্তি। বোধহয় সেই কারণেই রবীন্দ্রসঙ্গীতের ক্ষেত্র কেবল সঙ্গীতশিল্পীদের সীমার মধ্যেই আবদ্ধ নয়, সকল বাঙালির হৃদয়াবেগ প্রকাশের এক অদ্বিতীয় মাধ্যম রূপে প্রসিদ্ধি লাভ করেছে।

জীবনের প্রথমদিকে রবীন্দ্রনাথ সঙ্গীতের ক্ষেত্রে সুরের অপেক্ষা ভাবকে অধিক গুরুত্ব দিয়েছেন। তাঁর মতে সুর **'চেতনাহীন জড়'** এবং ভাব **'জীবন্ত অমর'**। তিনি বলতে চেয়েছেন যার মধ্যে প্রাণের সঞ্চার করা যায়, এমন ভাবই সঙ্গীতকে সচেতন রাখতে পারে এবং জনসাধারণের হৃদয়ে সহজেই প্রবেশ করে তাদের মধ্যে সেই ভাব জাগ্রত করতে পারে। তাঁর মতে উচ্চশ্রেণীর সঙ্গীত তখনই সম্পূর্ণ হয়, যখন তার মধ্যে সুরবিন্যাসের সঙ্গে হৃদয়ানুভব মিলিত হয়। তিনি নিজেই স্বীকার করেছেন যে গানে ভাবের প্রাধান্য অধিক। তাই তিনি বলেছিলেন যে, সঙ্গীত সুরের রাগ রাগিণী নয়, সঙ্গীত ভাবের রাগ রাগিণী।

রবীন্দ্রনাথ যখন তাঁর প্রথমজীবনে সঙ্গীত রচনা করেন, তখন কেবল কথার মাধুর্য ও সৌন্দর্য তাঁর গানে অধিক পরিমাণে দেখা গিয়েছিল, ভানুসিংহ ঠাকুরের পদাবলী তাঁর সবথেকে বড় দৃষ্টান্ত। এটির

প্রত্যেকটি গানের কথায় বৈষ্ণব পদাবলীর অনুকরণ থাকলেও তাতে ভাষার সৌন্দর্য কে আমরা অনুভব করতে পারি। যেমন,

সজনি সজনি রাধিকা লো, দেখ অবহুঁ চাহিয়া

মৃদুলগমন শ্যাম আওয়ে মৃদুল গান গাহিয়া ।।

গানগুলির মধ্যে কথার সৌন্দর্য অনুভব করা যায়। তিনি যখন গানের সৃষ্টি করতে আরম্ভ করলেন, সে সময় গানের **'কথা'** কে তিনি বড়ো করে দেখতেন, সে কারণে **'সুর'** কে কখনই তাচ্ছিল্য করেননি। ফলে তাঁর জীবনের প্রথম দিকের গানগুলির মধ্যে সুর ছিল প্রচলিত রীতি-নীতির অনুসারে এবং কথা ছিল তাঁর একান্ত আপন মনের সূক্ষ্ম অনুভূতি। সম্ভবত ১৮৭৬-৭৭ থেকে ১৮৮৭-৮৮ পর্যন্ত তিনি রাগরাগিণীকে প্রথাগত সুরের সীমা থেকে মুক্ত করে ভাবের ভুবনে প্রসারিত করেছেন।

'মায়ার খেলা'তে আমরা দেখতে পাই অন্য এক গানের ভুবন। এখানে সুর কথার কেবল অনুসরণ অথবা পশ্চাদ্গমন করেনা, সুরের নিজস্ব দাবি প্রতিষ্ঠিত হতে আরম্ভ হয়েছে এই সময় থেকে। রবীন্দ্রনাথ অনুভব করলেন যে এক একটি রাগরাগিণীর মধ্যে এক একটি বিশেষ মুহূর্ত আছে। ইন্দিরাদেবীকে তিনি বিভিন্ন চিঠির (ছিন্ন পত্রাবলী) মাধ্যমে জানিয়েছেন এই সকল কথা। "রামকেলি প্রভৃতি সকাল বেলাকার যে সমস্ত সুর কলকাতায় নিতান্ত অভ্যস্ত এবং প্রাণহীন বোধ হয়, ...তার মধ্যে এমন একটা অপূর্ব সত্য এবং নবীন সৌন্দর্য দেখা দেয়.... এই রাগিণীকে সমস্ত আকাশ এবং সমস্ত পৃথিবীর গান বলে মনে হতে থাকে।"

ভৈরবী রাগিণীর বিষয়ে বলেছেন, "কর্মক্লিষ্ট সন্দেহপীড়িত বিয়োগশোককাতর সংসারের ভিতরকার যে চিরস্থায়ী সুগভীর দুঃখটি, ভৈরবী রাগিণীতে সেইটিকে একেবারে বিগলিত করে বের করে নিয়ে আসে।" মুলতান রাগিণী সম্পর্কে তাঁর মত, "আমাদের মুলতান রাগিণীটা .... আজকের দিনটা কিছুই করা হয়নি।" অন্যত্র বলেছেন, "সংগীতের মতো এমন আশ্চর্য ইন্দ্রজালবিদ্যা জগতে আর কিছু নেই....গান প্রভৃতি কতগুলি জিনিস আছে যা মানুষকে এই কথা বলে যে, 'তোমরা জগতের সকল জিনিসকে যতই পরিষ্কার বোধগম্য করতে চেষ্টা কর না কেন আসল জিনিসটাই অনির্বচনীয়' এবং তারই সঙ্গে আমাদের মর্মের মর্মান্তিক যোগ- তারই জন্যে আমাদের এত দুঃখ, এত সুখ, এত ব্যাকুলতা"।

ভিন্ন একটি আলোচনা থেকে জানতে পারি যে রবীন্দ্রনাথ যে বয়সে যে বিষয়ে মুগ্ধ হয়েছেন, সে বয়সে সেই বিষয়টিকে তাঁর সঙ্গীতে স্থান দিয়েছেন। সময় অনুসারে আপন মত বদলেছেন, কোনো একটি বাঁধাধরা গন্ডীর মধ্যে নিজেকে আবদ্ধ রাখেননি। সারা জীবন সঙ্গীতকে নিয়ে সাধনা

করে গেছেন।

কথা, ভাব, সুর ও ছন্দকে তিনি তাঁর গানের পথের সহপথিক রূপে গ্রহণ করে তাঁর আপন সঙ্গীত জগতের ক্রমবিকাশের পথ স্বয়ং নির্মাণ করে গেছেন। সেই পথটি নিয়ে যায় হৃদয়ের সূক্ষ্ম ভাব ও অনুভূতির জগতে। তিনি সারা জীবন ধরে গান নিয়ে নানা প্রকারের পরীক্ষা-নিরীক্ষা করেছিলেন। তাঁর জীবনে একটিমাত্র সাধনা ছিল 'সঙ্গীত সাধনা'। জীবনের সকল পরিস্থিতির মধ্যে তিনি গানকেই আশ্রয় করেছিলেন। সাহিত্য সৃষ্টির সঙ্গে সঙ্গে তিনি তাঁর গানের জগতেও নিত্য নতুন সৃষ্টি করে গেছেন। এই ভাবেই তাঁর সঙ্গীতের উৎস ও ক্রমবিকাশের ধারাকে আমরা সরল ভাবে বুঝতে পারি।

প্রথম বাংলা বিজ্ঞান পত্রিকা কোন্‌টি?

দীপক মাইতি
সহকারী অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ।

সাধারণ পত্র-পত্রিকার পাশাপাশি বাংলা বিজ্ঞানসাহিত্যে বিজ্ঞান পত্রিকাগুলির গুরুত্ব সবচেয়ে বেশি। কিন্তু বাংলা ভাষায় লেখা প্রথম বিজ্ঞান পত্রিকা কোন্‌টি এবং কবে থেকে সেই পত্রিকার প্রকাশ শুরু হয় তা নিয়ে সমালোচক মহলে নানা মতভেদ রয়েছে। বিজ্ঞানসাহিত্যের এক প্রসিদ্ধ সমালোচক বিনয়ভূষণ রায়ের মতে, "১৮৩২ খ্রিস্টাব্দে সর্বপ্রথম বিজ্ঞান বিষয়ক পত্রিকা 'বিজ্ঞান সেবধি' প্রকাশিত হয়।" (বিনয়ভূষণ রায়, ২০০২, ২৪৮) সমালোচক রায়ের এই মতের পূর্ণ সমর্থন পাওয়া যায় জয়ন্ত বসুর 'বঙ্গীয় বিজ্ঞান পরিষদ পঞ্চাশ বছর পরিক্রমা' বইয়েও। সেখানে তিনি বলেছেন, "1832 খ্রিস্টাব্দে প্রকাশিত 'বিজ্ঞান সেবিধি' নামক যে পত্রিকার কথা বলা হয়েছে, তা ছিল বাংলাভাষায় সর্বপ্রথম বিজ্ঞান পত্রিকা।" (জয়ন্ত বসু, ২০০০, ১৫) অবশ্য বিজ্ঞানসাহিত্যের আর এক স্বনামধন্য সমালোচক বুদ্ধদেব ভট্টাচার্য বাংলা ভাষায় প্রথম বিজ্ঞান পত্রিকা নিয়ে এত সরাসরি স্পষ্টভাবে কোনো মন্তব্য করেননি। তিনি তাঁর গ্রন্থে 'সাময়িক-পত্র : দিগ্‌দর্শন থেকে বিদ্যাদর্শন' আলোচনা করতে গিয়ে 'পশ্বাবলী'র কথা উল্লেখ করেছেন এবং তিনি জানিয়েছেন, "প্রাণীবিজ্ঞানকে সহজ ও সরল করে সর্বসাধারণের কাছে প্রচারে সর্বপ্রথম উদ্যোগী হলেন

কলিকাতা স্কুল বুক সোসাইটি। সোসাইটি কর্তৃক প্রকাশিত 'পশ্বাবলী' নামক গ্রন্থটির বিভিন্ন সংখ্যা মাসিক-গ্রন্থ হিসাবে প্রকাশিত হয়েছিল।" (বুদ্ধদেব ভট্টাচার্য, ১৯৬০, ৪৫) অর্থাৎ এই আলোচনায় 'পশ্বাবলী'কে পত্রিকা না বলে গ্রন্থ বলা হয়েছে। কিন্তু বুদ্ধদেব ভট্টাচার্য তাঁর গ্রন্থের অন্যত্র 'পশ্বাবলী'কে আবার পত্রিকার আখ্যা দিয়ে জানিয়েছেন, "ইতিপূর্বে প্রকাশিত 'পশ্বাবলী'কে বালকপাঠ্য পত্রিকার পর্যায়ে ফেলা যায়।" (তদেব, ১১৬) কিংবা "অসম্পূর্ণ প্রকৃতির হলেও ঊনবিংশ শতাব্দীর প্রথমার্ধে প্রকাশিত 'পশ্বাবলী' ও 'পক্ষির বিবরণ'কে বিজ্ঞান পত্রিকার দলে ফেলা যায়।" (তদেব, ১৩৮) সুতরাং দেখা যাচ্ছে 'পশ্বাবলী' আসলে গ্রন্থ, না পত্রিকা- এবিষয়ে স্থির কোনো সিদ্ধান্তে পৌঁছাতে পারেননি সমালোচক ভট্টাচার্য।

তবে ব্রজেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায় তাঁর 'বাংলা সাময়িকপত্র' গ্রন্থে 'পশ্বাবলী'কে স্থান দিয়েছেন; আবার বাণী বসুর 'বাংলা শিশুসাহিত্য : গ্রন্থপঞ্জী' গ্রন্থেও 'পশ্বাবলী'র নাম নেই। এদিক থেকে বিচার করলে এঁদের মতে 'পশ্বাবলী' একটি সাময়িক পত্রিকা। 'জ্ঞান বিচিত্রা'র একটি প্রবন্ধে সমালোচক বিমলকান্তি সেন 'পশ্বাবলী'কে সাময়িক পত্রিকা বলতে চেয়েছেন। সাময়িক পত্রের প্রচলিত সংজ্ঞার উপর নির্ভর করে যুক্তি হিসাবে তিনি বলেছেন, "প্রথমতঃ এর প্রকাশের একটা নির্দিষ্ট পর্যায়কাল (Periodicity) ছিল। দ্বিতীয়তঃ এর কটি সংখ্যা প্রকাশিত হবে, তা পূর্ব-নির্ধারিত ছিল না এবং তৃতীয়তঃ এর সংখ্যাগুলি ধারাবাহিকভাবে সংখ্যায়িত হয়েছিল।" (বিমলকান্তি সেন, ১৯৭৯, ১৯) তাই সমালোচক সেন শেষপর্যন্ত 'পশ্বাবলী'কেই প্রথম বিজ্ঞান পত্রিকার মর্যাদা দিয়েছেন। যদিও পত্রিকাটি প্রথম কবে প্রকাশিত হয়েছিল সে সম্পর্কে তিনি কোনো স্থির সিদ্ধান্তে পৌঁছাতে পারেন নি। তিনি বলেছেন, "পশ্বাবলী ঠিক কবে থেকে প্রকাশিত হতে শুরু করে তা সঠিক বলা যায় না। একদিকে পশ্বাবলীর ১ম সংখ্যার উপর ফেব্রুয়ারী ১৮২২ মুদ্রিত দেখা যায়। আবার কলিকাতা স্কুল বুক সোসাইটির তৃতীয় রিপোর্ট যা ১৮২০ সালের ১১ই সেপ্টেম্বর পাঠ করা হয়, তাতে পশ্বাবলীর প্রশংসা করা হয়। এর থেকে অনুমিত হয় যে ১৮২০ সালের ১১ই সেপ্টেম্বরের পূর্বে কোনও সময় পশ্বাবলীর প্রকাশ ঘটে থাকবে।" (তদেব, ১৯) অবশ্য ব্রজেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায় 'বাংলা সাময়িকপত্র' গ্রন্থে 'পশ্বাবলী'র প্রকাশকাল ফেব্রুয়ারি, ১৮২২ খ্রিস্টাব্দ উল্লেখ করেছেন। (ব্রজেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায়, ১৩৫৪ বঙ্গাব্দ, ২০) অন্যান্য বেশিরভাগ সমালোচকরাও ব্রজেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায়ের উল্লিখিত এই প্রকাশকালকে মেনে নিয়েছেন। যেহেতু আমাদের কাছে কলিকাতা স্কুল বুক সোসাইটির তৃতীয় রিপোর্টটি ছাড়া 'পশ্বাবলী'র দ্বিতীয় প্রকাশকাল সম্বন্ধে অন্য কোনো তথ্যসূত্র নেই, তাই আমরা 'পশ্বাবলী'র প্রথম সংখ্যার উপরে লেখা সাল-তারিখটিকেই 'পশ্বাবলী'র আসল প্রকাশকাল হিসাবে ধরে নিচ্ছি। আর 'পশ্বাবলী' যেহেতু সাময়িক পত্রিকার শর্ত মেনেই প্রকাশিত হয়েছিল এবং এতে শুধুমাত্র প্রাণীবিজ্ঞানের আলোচনা থাকত, তাই এটিকে বাংলা ভাষায় লেখা প্রথম বিজ্ঞান বিষয়ক পত্রিকা বললে ভুল হবে না।

- জয়ন্ত বসু, ২০০০, *বাংলা ভাষায় বিজ্ঞানচর্চার পেক্ষাপটে বঙ্গীয় বিজ্ঞান পরিষদ পঞ্চাশ বছর পরিক্রমা,* কলকাতাঃ বঙ্গীয় বিজ্ঞান পরিষদ।
- বিনয়ভূষণ রায়, ২০০২, *উনিশ শতকে বাংলা ভাষায় বিজ্ঞানচর্চা,* কলকাতাঃ নয়া উদ্যোগ
- বিমলকান্তি সেন, ১৯৭৯, 'বিজ্ঞান সেবধি'র পূর্বে বাংলা সাময়িকপত্রে বিজ্ঞান চর্চা, দেবানন্দ দাম (সম্পাঃ), *জ্ঞান বিচিত্রা,* রজত জয়ন্তী সংখ্যা, আগরতলাঃ জ্ঞান বিচিত্রা, পৃঃ ১৯-২০।
- বুদ্ধদেব ভট্টাচার্য, ১৯৬০, *বঙ্গসাহিত্যে বিজ্ঞান,* কলকাতাঃ বঙ্গীয় বিজ্ঞান পরিষদ।
- ব্রজেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায়, ১৩৫৪ বঙ্গাব্দ, *বাংলা সাময়িক-পত্র,* ১ম খন্ড, কলকাতাঃ বঙ্গীয়-সাহিত্য-পরিষৎ।

خوار	ذلیل
اوجِ ثریا	بامِ عروج
سریرِ کے	ایران کے مشہور شاہی خاندان کے تخت
حمیت	شرم و غیرت
غیور	غیرت مند
اخوت	بھائی چارہ
مہجور	جدا
بند	فکر
بادیہ	جنگل
ایمن	بے خوف
نخل	گلستان
ہراساں	خوف زدہ
فرسِ عداء	دشمنوں کے گھوڑے
اتمام	مکمل
استادہ	قائم
تنک مایہ	بے حقیقت
رفعنا لک ذکرک	ارشاد باری۔ کہ ہم نے آپ کے ذکر کو رفعت بخشی
مہر	سورج
سپر	ڈھال

فرہنگ

قدسی الاصل	فرشتوں جیسی خصلت
رضواں	فرشتہ جونگہبانی جنت پر مامور ہے
تگ وتاز	رسائی
سکان زمین	زمین کے رہنے والے
مسجود ملائک	جسے فرشتوں نے سجدہ کیا ہو
رموز	اسرار، بھید
خوگر	عادی
آزر	حضرت ابراہیم کے والد
جذبِ باہم	آپسی کشش
نکونام	نیک نام
شعور	غور وفکر
فاطر ہستی	دنیا کو پیدا کرنے والا
منفعت	فائدہ
تارک	چھوڑنے والا
ملت بیضا	امت محمدﷺ
وضع	طور طریقہ
لوث	لالچ
فوق الادراک	سمجھ سے بالاتر
میراث پدر	باپ کا ترکہ

نبض ہستی تپش آمادہ اسی نام سے ہے
دشت میں، دامن کہسار میں، میدان میں ہے
بحر میں، موج کی آغوش میں، طوفان میں ہے
چین کے شہر، مراکش کے بیاباں میں ہے
اور پوشیدہ مسلماں کے ایمان میں ہے
چشم اقوام یہ نظارہ ابد تک دیکھے
رفعت شان رَفَعنَا لکَ ذِکرَک دیکھے
مردم چشم زمین یعنی وہ کالی دنیا
وہ تمہارے شہداء پالنے والی دنیا
گرمی مہر کی پروردہ ہلالی دنیا
عشق والے جسے کہتے ہیں بلالی دنیا
تپش اندوز ہے اس نام سے پارے کی طرح
غوطہ زن نور میں ہے آنکھ کے تارے کی طرح
عقل ہے تیری سپر، عشق ہے شمشیر تری
مرے درویش! خلافت ہے جہاں گیر تری
ماسوا اللہ کے لیے آگ ہے تکبیر تری
تو مسلماں ہو تو تقدیر ہے تدبیر تری
کی محمد سے وفا تو نے تو ہم تیرے ہیں
یہ جہاں چیز ہے کیا، لوح و قلم تیرے ہیں

امتحاں ہے ترے ایثار کا، خود داری کا
کیوں ہراساں ہے صہیل فرس اعدا سے
نور حق بجھ نہ سکے گا نفس اعدا سے
چشم اقوام سے مخفی ہے حقیقت تیری
ہے ابھی محفل ہستی کو ضرورت تیری
زندہ رکھتی ہے زمانے کو حرارت تیری
کوکب قسمت امکاں ہے خلافت تیری
وقت فرصت ہے کہاں، کام ابھی باقی ہے
نور توحید کا اتمام ابھی باقی ہے
مثل بو قید ہے غنچے میں، پریشاں ہو جا
رخت بردوش ہوائے چمنستاں ہو جا
ہے تنک مایہ تو ذرے سے بیاباں ہو جا
نغمہ موج سے ہنگامہ طوفاں ہو جا!
قوت عشق سے ہر پست کو بالا کر دے
دہر میں اسم محمد سے اجالا کر دے
ہو نہ یہ پھول تو بلبل کا ترنم بھی نہ ہو
چمن دہر میں کلیوں کا تبسم بھی نہ ہو
یہ نہ ساقی ہو تو پھر مے بھی نہ ہو، خم بھی نہ ہو
بزم توحید بھی دنیا میں نہ ہو، تم بھی نہ ہو
خیمہ افلاک کا استادہ اسی نام سے ہے

اور محروم ثمر بھی ہیں، خزاں دیدہ بھی ہیں
سینکڑوں نخل ہیں، کاہیدہ بھی، بالیدہ بھی ہیں
سینکڑوں بطنِ چمن میں ابھی پوشیدہ بھی ہیں
نخلِ اسلام نمونہ ہے برومندی کا
پھل ہے یہ سینکڑوں صدیوں کی چمن بندی کا
پاک ہے گرد وطن سے سرِ داماں تیرا
تو وہ یوسف ہے کہ ہر مصر ہے کنعاں تیرا
قافلہ ہو نہ سکے گا کبھی ویراں تیرا
غیر یک بانگ درا کچھ نہیں ساماں تیرا
نخل شمع استی و در شعلہ ریشۂ تو
عاقبت سوز بود سایۂ اندیشۂ تو
تو نہ مٹ جائے گا ایران کے مٹ جانے سے
نشۂ مے کو تعلق نہیں پیمانے سے
ہے عیاں یورش تاتار کے افسانے سے
پاسباں مل گئے کعبے کو صنم خانے سے
کشتیِ حق کا زمانے میں سہارا تو ہے
عصر نو رات ہے، دھندلا سا تارا تو ہے
ہے جو ہنگامہ بپا یورش بلغاری کا
غافلوں کے لیے پیغام ہے بیداری کا
تو سمجھتا ہے یہ ساماں ہے دل آزاری کا

لا کے کعبے سے صنم خانے میں آباد کیا
قیس زحمت کش تنہائی صحرا نہ رہے
شہر کی کھائے ہوا، بادیہ پیمانہ نہ رہے
وہ تو دیوانہ ہے، بستی میں رہے یا نہ رہے
یہ ضروری ہے حجاب رُخ لیلا نہ رہے
گلہ جور نہ ہو، شکوہ ٔ بیداد نہ ہو
عشق آزاد ہے، کیوں حسن بھی آزاد نہ ہو!
عہد نو برق ہے، آتش زن ہرخرمن ہے
ایمن اس سے کوئی صحرا نہ کوئی گلشن ہے
اس نئی آگ کا اقوام کہیں ایندھن ہے
ملت ختم رسل شعلہ بہ پیراہن ہے
آج بھی ہو جو براہیم کا ایماں پیدا
آگ کر سکتی ہے انداز گلستاں پیدا
دیکھ کر رنگ چمن ہو نہ پریشاں مالی
کوکب غنچہ سے شاخیں ہیں چمکنے والی
خس و خاشاک سے ہوتا ہے گلستاں خالی
گل بر انداز ہے خون شہداء کی لالی
رنگ گردوں کا ذرا دیکھ تو عنابی ہے
یہ نکلتے ہوئے سورج کی افق تابی ہے
امتیں گلشنِ ہستی میں ثمر چیدہ بھی ہیں

تم کو اسلاف سے کیا نسبت روحانی ہے؟
وہ زمانے میں معزز تھے مسلماں ہو کر
اور تم خوار ہوئے تارک قرآں ہو کر
تم ہو آپس میں غضبناک، وہ آپس میں رحیم
تم خطاکار و خطابیں، وہ خطا پوش و کریم
چاہتے سب ہیں کہ ہوں اوج ثریا پہ مقیم
پہلے ویسا کوئی پیدا تو کرے قلب سلیم
تخت فغور بھی ان کا تھا، سریر کے بھی
یونہی باتیں ہیں کہ تم میں وہ حمیت ہے بھی؟
خود کشی شیوہ تمہارا، وہ غیور و خوددار
تم اخوت سے گریزاں، وہ اخوت پہ نثار
تم ہو گفتار سراپا، وہ سراپا کردار
تم ترستے ہو کلی کو، وہ گلستاں بہ کنار
اب تلک یاد ہے قوموں کو حکایت ان کی
نقش ہے صفحۂ ہستی پہ صداقت ان کی
مثل انجم افق قوم پہ روشن بھی ہوئے
بت ہندی کی محبت میں برہمن بھی ہوئے
شوق پرواز میں مہجور نشیمن بھی ہوئے
بے عمل تھے ہی جواں، دین سے بدظن بھی ہوئے
ان کو تہذیب نے ہر بند سے آزاد کیا

ہم یہ کہتے ہیں کہ تھے بھی کہیں مسلم موجود!
وضع میں تم ہو نصاریٰ تو تمدن میں ہنود
یہ مسلماں ہیں! جنہیں دیکھ کر شرمائیں یہود
یوں تو سید بھی ہو، مرزا بھی ہو، افغان بھی ہو
تم سبھی کچھ ہو، بتاؤ مسلمان بھی ہو!
دم تقریر تھی مسلم کی صداقت بے باک
عدل اس کا تھا قوی، لوث مراعات سے پاک
شجر فطرت مسلم تھا حیا سے نم ناک
تھا شجاعت میں وہ اک ہستی فوق الادراک
خود گدازی نم کیفیت صہبایش بود
خالی از خویش شدن صورت مینایش بود
ہر مسلماں رگِ باطل کے لیے نشتر تھا
اس کے آئینہ ٔ ہستی میں عملِ جوہر تھا
جو بھروسا تھا اسے قوت بازو پر تھا
ہے تمہیں موت کا ڈر، اس کو خدا کا ڈر تھا
باپ کا علم نہ بیٹے کو اگر ازبر ہو
پھر پسر قابل میراث پدر کیونکر ہو!
ہر کوئی مست مہ ٔ ذوق تن آسانی ہے
تم مسلماں ہو! یہ انداز مسلمانی ہے؟
حیدری فقر ہے نہ دولت عثمانی ہے

کیا زمانے میں پنپنے کی یہی باتیں ہیں؟
کون ہے تارک آئینِ رسول مختار؟
مصلحت وقت کی ہے کس کے عمل کا معیار؟
کس کی آنکھوں میں سمایا ہے شعارِ اغیار؟
ہو گئی کس کی نگہ طرزِ سلف سے بیزار؟
قلب میں سوز نہیں، روح میں احساس نہیں
کچھ بھی پیغام محمد (ص) کا تمھیں پاس نہیں
جا کے ہوتے ہیں مساجد میں صف آراء تو غریب
زحمتِ روزہ جو کرتے ہیں گوارا، تو غریب
نام لیتا ہے اگر کوئی ہمارا، تو غریب
پردہ رکھتا ہے اگر کوئی تمہارا، تو غریب
امراء نشہ ٔ دولت میں ہیں غافل ہم سے
زندہ ہے ملت بیضا غربا کے دم سے
واعظ قوم کی وہ پختہ خیالی نہ رہی
برق طبعی نہ رہی، شعلہ مقالی نہ رہی
رہ گئی رسم اذان روح ہلالی نہ رہی
فلسفہ رہ گیا، تلقین غزالی نہ رہی
مسجدیں مرثیہ خوان ہیں کہ نمازی نہ رہے
یعنی وہ صاحب اوصاف حجازی نہ رہے
شور ہے، ہو گئے دنیا سے مسلماں نابود

بیچ کھاتے ہیں جو اسلاف کے مدفن، تُم ہو
ہو نکو نام جو قبروں کی تجارت کر کے
کیا نہ بیچو گے جو مل جائیں صنم پتھر کے؟
صفحۂ دہر سے باطل کو مٹایا کس نے؟
نوعِ انساں کو غلامی سے چُھڑایا کس نے؟
میرے کعبے کو جبینوں سے بسایا کس نے؟
میرے قرآن کو سینوں سے لگایا کس نے؟
تھے تو آباء وہ تمہارے ہی، مگر تم کیا ہو؟
ہاتھ پر ہاتھ دھرے منتظرِ فردا ہو!
کیا گیا؟ بہرِ مُسلماں ہے فقط وعدۂ حُور
شکوہ بیجا بھی کرے کوئی تو لازم ہے شعور!
عدل ہے فاطرِ ھستی کا ازل سے دستور
مُسلم آئیں ہوا کافر تو ملے حُور و قصور
تُم میں حُوروں کا کوئی چاہنے والا ہی نہیں
جلوۂ طُور تو موجُود ہے مُوسٰی ہی نہیں
منفعت ایک ہے اِس قوم کی، نقصان بھی ایک
ایک ہی سب کا نبی، دین بھی، ایمان بھی ایک
حرمِ پاک بھی، اللہ بھی، قُرآن بھی ایک
کچھ بڑی بات تھی ہوتے جو مُسلمان بھی ایک؟
فرقہ بندی ہے کہیں، اور کہیں ذاتیں ہیں!

اُمتی باعثِ رسوائی پیغمبر ہیں
بُت شکن اُٹھ گئے، باقی جو رہے بُت گر ہیں
تھا براہیم پدر اور پسر آذر ہیں
بادہ آشام نئے، بادہ نیا، خم بھی نئے
حرمِ کعبہ نیا، بُت بھی نئے، تم بھی نئے
وہ بھی دِن تھے کہ یہی مایہء رعنائی تھا!
نازشِ موسمِ گُل، لالہء صحرائی تھا!
جو مُسلمان تھا اللہ کا سَودائی تھا!
کبھی محبُوب تمہارا یہی ہرجائی تھا!
کسی یکجائی سے اَب عہدِ غُلامی کر لو
ملتِ احمدِ مُرسل کو مقامی کر لو
کِس قدر تُم پہ گراں صُبح کی بیداری ہے!
ہم سے کب پیار ہے؟ ہاں نیند تُمھیں پیاری ہے
طبعِ آزاد پہ قیدِ رمضاں بھاری ہے
تمھیں کہہ دو یہی آئینِ وفا داری ہے؟
قوم مذہب سے ہے، مذہب جو نہیں تم بھی نہیں
جذبِ باہم جو نہیں، محفلِ انجم بھی نہیں
جن کو آتا نہیں دُنیا میں کوئی فن، تُم ہو
نہیں جس قوم کو پروائے نشیمن، تُم ہو
بجلیاں جس میں ہوں آسُودہ وہ خرمن، تُم ہو

شوق و گستاخ یہ پستی کے مکیں کیسے ہیں !
اس قدر شوخ کہ اللہ سے بھی برہم ہے
تھا جو مسجودِ ملائک یہ وہی آدم ہے؟
عالمِ کیف ہے دانائے رموزِکم ہے
ہاں، مگر عجز کے اسرار سے نا محرم ہے
ناز ہے طاقتِ گُفتار پہ انسانوں کو
بات کرنے کا سلیقہ نہیں نادانوں کو
آئی آواز غم انگیز ہے افسانہ ترا
اشکِ بیتاب سے لبریز ہے پیمانہ ترا
آسماں گیر ہوا نعرہء مستانہ ترا
کس قدر شوخ زباں ہے دلِ دیوانہ ترا
شکر شکوے کو کیا حُسنِ ادا سے تُو نے
ہم سُخن کر دیا بندوں کو خدا سے تُو نے
ہم تو مائل بہ کرم ہیں کوئی سائل ہی نہیں
راہ دکھلائیں کسے؟ رہروِ منزل ہی نہیں
تربیت عام تو ہے، جوہرِ قابل ہی نہیں
جس سے تعمیر ہو آدم کی، یہ وہ گِل ہی نہیں
کوئی قابل ہو تو ہم شان کئی دیتے ہیں
ڈُھونڈنے والوں کو دُنیا بھی نئی دیتے ہیں

جوابِ شکوہ
علامہ اقبال

دل سے جو بات نکلتی ہے اثر رکھتی ہے
پر نہیں، طاقتِ پرواز مگر رکھتی ہے
قدسی الاصل ہے، رفعت پہ نظر رکھتی ہے
خاک سے اُٹھتی ہے، گردُوں پہ گذر رکھتی ہے
عشق تھا فتنہ گر و سرکش و چالاک مرا
آسماں چیرگیا نالہء فریاد مرا
پیر گردُوں نے کہا سُن کے، کہیں ہے کوئی!
بولے سیارے، سرِ عرشِ بریں ہے کوئی!
چاند کہتا تھا، نہیں اہلِ زمیں ہے کوئی!
کہکشاں کہتی تھی پوشیدہ یہیں ہے کوئی!
کُچھ جو سمجھا مرے شکوے کو تو رضواں سمجھا
مجھے جنت سے نکالا ہوا انساں سمجھا
تھی فرشتوں کو بھی حیرت کہ یہ آواز ہے کیا!
عرش والوں پہ بھی کھلتا نہیں یہ راز ہے کیا!
تا سرِ عرش بھی انساں کی تگ و تاز ہے کیا؟
آگئی خاک کی چٹکی کو بھی پرواز ہے کیا؟
غافل آداب سے سُکانِ زمیں کیسے ہیں!

DBT STAR COLLEGE

UNNAT BHARAT ABHIYAN

ENTREPRENEURSHIP AND STARTUP

UKIERI

INTERNAL QUALITY ASSURANCE CELL

هُوَ اللّٰہُ اَحَد	وہ اللہ ایک ہے۔
محفل کون ومکان	تمام دنیا۔
مست مئے پندار	مغرور
حُدی خواں	وہ گانا جس سے اونٹ مست ہو کر تیز چلتے ہیں۔
آشفتہ سری	پریشان حالی۔
قصور	قصر کی جمع محل سیلی زدہ
موج سراب	سراب کی لہر
آتش اندوز	عشق کی آگ بھڑکانے والا
سرفاراں	مکہ کے پہاڑ کی چوٹی
خودافروزی	فنا ہونا
عناب تاب ہونا	روانہ ہونا
تشنہ مضراب	مضراب کا پیاسا
عجمی خم	ہندی نسل

فرہنگ

قدسی الاصل	فرشتوں جیسی خصلت
رضواں	فرشتہ جو نگہبانی جنت پر مامور ہے
تگ وتاز	رسائی
سکان زمین	زمین کے رہنے والے
مسجود ملائک	جسے فرشتوں نے سجدہ کیا ہو
رموز	اسرار، بھید
خوگر	عادی
آزر	حضرت ابراہیم کے والد
جذبِ باہم	آپسی کشش
نکونام	نیک نام
شعور	غور وفکر
فاطر ہستی	دنیا کو پیدا کرنے والا
منفعت	فائدہ
تارک	چھوڑنے والا
ملت بیضا	امت محمد ﷺ
وضع	طور طریقہ
لوث	لالچ
فوق الادراک	سمجھ سے بالاتر
میراث پدر	باپ کا ترکہ

نبض ہستی تپش آمادہ اسی نام سے ہے
دشت میں، دامن کہسار میں، میدان میں ہے
بحر میں، موج کی آغوش میں، طوفان میں ہے
چین کے شہر، مراکش کے بیاباں میں ہے
اور پوشیدہ مسلماں کے ایمان میں ہے
چشم اقوام یہ نظارہ ابد تک دیکھے
رفعت شان رَفَعنَا لَکَ ذِکرَک دیکھے
مردم چشم زمین یعنی وہ کالی دنیا
وہ تمہارے شہداء پالنے والی دنیا
گرمی مہر کی پروردہ ہلالی دنیا
عشق والے جسے کہتے ہیں بلالی دنیا
تپش اندوز ہے اس نام سے پارے کی طرح
غوطہ زن نور میں ہے آنکھ کے تارے کی طرح
عقل ہے تیری سپر، عشق ہے شمشیر تری
مرے درویش! خلافت ہے جہاں گیر تری
ماسوا اللہ کے لیے آگ ہے تکبیر تری
تو مسلماں ہو تو تقدیر ہے تدبیر تری
کی محمد سے وفا تو نے تو ہم تیرے ہیں
یہ جہاں چیز ہے کیا، لوح و قلم تیرے ہیں

وہ پرانی روشیں باغ کو ویراں بھی ہوئیں
ڈالیاں پیرہن برگ سے عریاں بھی ہوئیں
قید موسم سے طبیعت رہی آزار اس کی
کاش گلشن میں سمجھتا کوئی فریاد اس کی
لطف مرنے میں ہے باقی، نہ مزا جینے میں
کچھ مزا ہے تو یہی خون جگر پینے میں!
کتنے بیتاب ہیں جو ہر مرے آئینے میں
کس قدر جلوے تڑپتے ہیں مرے سینے میں
اس گلستاں میں مگر دیکھنے والے ہی نہیں
داغ جو سینے میں رکھتے ہوں وہ لالے ہی نہیں
چاک اس بلبل تنہا کی نوا سے دل ہوں
جاگنے والے اسی بانگ درا سے دل ہوں
یعنی پھر زندہ نئے عہد وفا سے دل ہوں
پھر اسی بادہ دیرینہ کے پیاسے دل ہوں
عجمی خم ہے تو کیا، مے تو حجازی ہے مری
نغمہ ہندی ہے تو کیا، لے تو حجازی ہے مری

اور محروم ثمر بھی ہیں، خزاں دیدہ بھی ہیں
سینکڑوں نخل ہیں، کاہیدہ بھی، بالیدہ بھی ہیں
سینکڑوں بطنِ چمن میں ابھی پوشیدہ بھی ہیں
نخلِ اسلام نمونہ ہے برومندی کا
پھل ہے یہ سینکڑوں صدیوں کی چمن بندی کا
پاک ہے گردِ وطن سے سرِ داماں تیرا
تو وہ یوسف ہے کہ ہر مصر ہے کنعاں تیرا
قافلہ ہو نہ سکے گا کبھی ویراں تیرا
غیر یک بانگِ درا کچھ نہیں ساماں تیرا
نخلِ شمع استی و در شعلہ دود ریشۂ تو
عاقبت سوز بود سایۂ اندیشۂ تو
تو نہ مٹ جائے گا ایران کے مٹ جانے سے
نشۂ مے کو تعلق نہیں پیمانے سے
ہے عیاں یورشِ تاتار کے افسانے سے
پاسباں مل گئے کعبے کو صنم خانے سے
کشتیِ حق کا زمانے میں سہارا تو ہے
عصرِ نو رات ہے، دھندلا سا تارا تو ہے
ہے جو ہنگامہ بپا یورشِ بلغاری کا
غافلوں کے لیے پیغام ہے بیداری کا
تو سمجھتا ہے یہ ساماں ہے دل آزاری کا

لا کے کعبے سے صنم خانے میں آباد کیا
قیس زحمت کش تنہائی صحرا نہ رہے
شہر کی کھائے ہوا، بادیہ پیمانہ نہ رہے
وہ تو دیوانہ ہے، بستی میں رہے یا نہ رہے
یہ ضروری ہے حجاب رُخ لیلا نہ رہے
گلہ جور نہ ہو، شکوہ ٔ بیداد نہ ہو
عشق آزاد ہے، کیوں حسن بھی آزاد نہ ہو!
عہد نو برق ہے، آتش زن ہرخرمن ہے
ایمن اس سے کوئی صحرا نہ کوئی گلشن ہے
اس نئی آگ کا اقوام کہن ایندھن ہے
ملت ختم رسل شعلہ بہ پیراہن ہے
آج بھی ہو جو براہیم کا ایماں پیدا
آگ کر سکتی ہے انداز گلستاں پیدا
دیکھ کر رنگ چمن ہو نہ پریشاں مالی
کوکب غنچہ سے شاخیں ہیں چمکنے والی
خس و خاشاک سے ہوتا ہے گلستاں خالی
گل بر انداز ہے خون شہداء کی لالی
رنگ گردوں کا ذرا دیکھ تو عنابی ہے
یہ نکلتے ہوئے سورج کی افق تابی ہے
امتیں گلشنِ ہستی میں ثمر چیدہ بھی ہیں

تم کو اسلاف سے کیا نسبت روحانی ہے؟
وہ زمانے میں معزز تھے مسلماں ہو کر
اور تم خوار ہوئے تارک قرآں ہو کر
تم ہو آپس میں غضبناک، وہ آپس میں رحیم
تم خطاکار و خطابیں، وہ خطا پوش و کریم
چاہتے سب ہیں کہ ہوں اوج ثریا پہ مقیم
پہلے ویسا کوئی پیدا تو کرے قلب سلیم
تخت فغور بھی ان کا تھا، سریر کے بھی
یونہی باتیں ہیں کہ تم میں وہ حمیت ہے بھی؟
خود کشی شیوہ تمہارا، وہ غیور و خوددار
تم اخوت سے گریزاں، وہ اخوت پہ نثار
تم ہو گفتار سراپا، وہ سراپا کردار
تم ترستے ہو کلی کو، وہ گلستاں بہ کنار
اب تلک یاد ہے قوموں کو حکایت ان کی
نقش ہے صفحہ ٔ ہستی پہ صداقت ان کی
مثل انجم افق قوم پہ روشن بھی ہوئے
بت ہندی کی محبت میں برہمن بھی ہوئے
شوق پرواز میں مہجور نشیمن بھی ہوئے
بے عمل تھے ہی جواں، دین سے بدظن بھی ہوئے
ان کو تہذیب نے ہر بند سے آزاد کیا

ہم یہ کہتے ہیں کہ تھے بھی کہیں مسلم موجود!
وضع میں تم ہو نصاریٰ تو تمدن میں ہنود
یہ مسلماں ہیں! جنہیں دیکھ کر شرمائیں یہود
یوں تو سید بھی ہو، مرزا بھی ہو، افغان بھی ہو
تم سبھی کچھ ہو، بتاؤ مسلمان بھی ہو!
دم تقریر تھی مسلم کی صداقت بے باک
عدل اس کا تھا قوی، لوث مراعات سے پاک
شجر فطرت مسلم تھا حیا سے نم ناک
تھا شجاعت میں وہ اک ہستی فوق الادراک
خود گدازی نم کیفیت صہبایش بود
خالی از خویش شدن صورت مینایش بود
ہر مسلماں رگِ باطل کے لیے نشتر تھا
اس کے آئینہ ٔ ہستی میں عملِ جوہر تھا
جو بھروسا تھا اسے قوت بازو پر تھا
ہے تمہیں موت کا ڈر، اس کو خدا کا ڈر تھا
باپ کا علم نہ بیٹے کو اگر ازبر ہو
پھر پسر قابل میراث پدر کیونکر ہو!
ہر کوئی مست مۂ ذوق تن آسانی ہے
تم مسلماں ہو! یہ انداز مسلمانی ہے؟
حیدری فقر ہے نہ دولت عثمانی ہے

کیا زمانے میں پنپنے کی یہی باتیں ہیں؟
کون ہے تارک آئینِ رسول مختار؟
مصلحت وقت کی ہے کس کے عمل کا معیار؟
کس کی آنکھوں میں سمایا ہے شعارِ اغیار؟
ہو گئی کس کی نگہ طرزِ سلف سے بیزار؟
قلب میں سوز نہیں، روح میں احساس نہیں
کچھ بھی پیغام محمد (ص) کا تمہیں پاس نہیں
جا کے ہوتے ہیں مساجد میں صف آراء تو غریب
زحمتِ روزہ جو کرتے ہیں گوارا، تو غریب
نام لیتا ہے اگر کوئی ہمارا، تو غریب
پردہ رکھتا ہے اگر کوئی تمہارا، تو غریب
امراء نشہ ٔ دولت میں ہیں غافل ہم سے
زندہ ہے ملت بیضا غربا کے دم سے
واعظ قوم کی وہ پختہ خیالی نہ رہی
برق طبعی نہ رہی، شعلہ مقالی نہ رہی
رہ گئی رسم اذان روح ہلالی نہ رہی
فلسفہ رہ گیا، تلقین غزالی نہ رہی
مسجدیں مرثیہ خوان ہیں کہ نمازی نہ رہے
یعنی وہ صاحب اوصاف حجازی نہ رہے
شور ہے، ہو گئے دنیا سے مسلماں نابود

کس کی شمشیر جہانگیر جہاندار ہوئی؟
کس کی تکبیر سے دنیا تری بیدار ہوئی؟
کس کی ہیبت سے صنم سہمے ہوئے رہتے تھے؟
منہ کے بل گر کے ھو اللہ احد کہتے تھے!
آگیا عین لڑائی میں اگر وقت نماز
قبلہ رو ہو کے زمیں بوس ہوئی قوم حجاز
ایک ہی صف میں کھڑے ہو گئے محمود و ایاز
نہ کوئی بندہ رہا اور نہ کوئی بندہ نواز
بندہ و صاحب ومحتاج وغنی ایک ہوئے!
تیری سرکار میں پہنچے تو سبھی ایک ہوئے
محفل کون و مکاں میں سحر و شام پھرے
مئے توحید کو لیکر صفت جام پھرے
کوہ میں دشت میں لیکر ترا پیغام پھرے
اور معلوم ہے تجکو کبھی ناکام پھرے؟
دشت تو دشت ہیں، دریا بھی نہ چھوڑے ہم نے!
بحر ظلمات میں دوڑا دیئے گھوڑے ہم نے
صفحہ دہر سے باطل کو مٹایا ہم نے
نوع انساں کو غلامی سے چھڑایا ہم نے
تیرے کعبے کو جبینوں سے سجایا ہم نے

ہم جو جیتے تھے،تو جنگوں کی مصیبت کے لیے
اور مرتے تھے ترے نام کی عظمت کے لیے
تھی نہ کچھ تیغ زنی اپنی حکومت کے لیے
سر بکف پھرتے تھے کیا دہر میں دولت کے لیے؟
قو م اپنی جو زر و مال جہاں پر مرتی
بت فروشی کے عوض،بت شکنی کیوں کرتی
ٹل نہ سکتے تھے،اگر جنگ میں اڑ جاتے تھے
پاؤں شیروں کے بھی میداں سے اکھڑ جاتے تھے
تجھ سے سرکش ہوا کوئی،تو بگڑ جاتے تھے
تیغ کیا چیز ہے،ہم توپ سے لڑ جاتے تھے
نقش توحید کا ہر دل پہ بٹھایا ہم نے
زیر خنجر بھی یہ پیغام سنایا ہم نے
تو ہی کہہ دے کہ اکھاڑا در خیبر کس نے؟
شہر قیصر کا جو تھا اس کو کیا سر کس نے؟
توڑے مخلوق خداوندوں کے پیکر کس نے؟
کاٹ کر رکھ دیئے کفار کے لشکر کس نے؟
کس نے ٹھنڈا کیا آتش کد ہ ایراں کو؟
کس نے پھر زندہ کیا تذکرہ یزداں کو؟
کون سی قوم فقط تیری طلب گار ہوئی؟
اور تیرے لئے زحمت کش پیکار ہوئی؟

ورنہ امت ترے محبوب کی دیوانی تھی؟
ہم سے پہلے تھا عجب تیرے جہاں کا منظر
کہیں مسجود تھے پتھر، کہیں معبود شجر
خوگر پیکر محسوس تھی انساں کی نظر
مانتا پھر کوئی ان دیکھے خدا کو کیونکر؟
تجھ کو معلوم ہے لیتا تھا کوئی نام ترا؟
قوت بازوئے مسلم نے کیا کام ترا
بس رہے تھے یہیں سلجوق بھی، تورانی بھی
اہل چین چین میں، ایران میں ساسانی بھی
اسی معمورے میں آباد تھے یونانی بھی
اسی دنیا میں یہودی بھی تھے، نصرانی بھی
پر ترے نام پہ تلوار اٹھائی کس نے؟
بات جو بگڑی ہوئی تھی، بنائی کس نے؟
تھے ہمیں اک ترے معرکہ آراؤں میں!
خشکیوں میں کبھی لڑتے، کبھی دریاؤں میں
دیں اذانیں کبھی یورپ کے کلیساؤں میں
کبھی افریقہ کے تپتے ہوئے صحراؤں میں
شان آنکھوں میں نہ جچتی تھی جہانداروں کی
کلمہ پڑھتے تھے ہم چھاؤں میں تلواروں کی

شکوہ

علامہ اقبال

کیوں زیاں کار بنوں سود فراموش رہوں؟
فکر فردا نہ کروں،محو غم دوش رہوں
نالے بلبل کے سنوں،اور ہمہ تن گوش رہوں
ہمنوا! میں بھی کوئی گل ہوں کہ خاموش رہوں؟
جرآت آموز مری تاب سخن ہے مجھ کو
شکوہ اللہ سے،خاکم بدہن، ہے مجھ کو
ہے بجا شیوہ تسلیم میں مشہور ہیں ہم
قصہ درد سناتے ہیں کہ مجبور ہیں ہم
ساز خاموش ہیں،فریاد سے معمور ہیں ہم
نالہ آتا ہے اگر لب پہ تو معذور ہیں ہم
اے خدا! شکوہ ارباب وفا بھی سن لے
خوگر حمد سے تھوڑا سا گلا بھی سن لے
تھی تو موجود ازل سے ہی تری ذات قدیم
پھول تھا زیب چمن، پڑ نہ پریشاں تھی شمیم
شرط انصاف ہی اے صاحب الطاف عمیم
بوئے گل پھیلتی کس طرح جو ہوتی نہ نسیم؟
ہم کو جمعیت خاطر یہ پریشانی تھی

پوچھا۔ ''تو آپ میں کوئی بری عادت نہیں ہے؟'' مجاز نے اتنی ہی سنجیدگی سے جواب دیا: ''مجھ میں صرف ایک ہی بری عادت ہے... کہ میں جھوٹ بہت بولتا ہوں۔''

عورت نے جنم دیا مردوں کو مردوں نے اسے بازار دیا
جب جی چاہا مسلا کچلا جب جی چاہا دھتکار دیا
ساحرؔ لدھیانوی

کی محمد سے وفا تو نے تو ہم تیرے ہیں
یہ جہاں چیز ہے کیا لوح و قلم تیرے ہیں
اقبالؔ

توحید تو یہ ہے کہ خدا حشر میں کہہ دے
یہ بندہ زمانے سے خفا میرے لئے ہے
محمد علی جوہرؔ

سندرلال کی باتوں کے قائل ہو گئے۔ ادھر لاجونتی جو پہلے اپنے شوہر کی بدسلوکی کی وجہ سے خوفزدہ رہتی تھی اب اس کا بہت اچھا سلوک دیکھ کر خوش تھی۔ سندرلال نے صرف ایک بار لاجونتی سے پوچھا کہ وہ کون تھا جس نے تمہیں اغوا کیا اور اس نے آپ کے ساتھ کیا سلوک کیا تھا؟ اس پر جب لاجونتی نے کھل کر بات کرنی چاہی اور اپنے آپ پر بیتی ہوئی ساری کہانی سنانی چاہی تو سندرلال نے اس موضوع کو ہی ٹال دیا اور لاجونتی کی باتیں اس کے دل میں ہی رہ گئیں۔ سندرلال لاجونتی کو اب دیوی کہتا تھا۔ وہ اپنے جسم کو دیکھنے لگی جو تقسیم کے بعد دیوی کا جسم بن چکا تھا۔ کئی روز بعد لاجونتی کی خوشی شک میں تبدیل ہوگئی۔ شک کی وجہ یہ تھی کہ سندرلال اس سے بہت ہی اچھا سلوک کرتا تھا۔ وہ سندرلال کی وہی پرانی ''لاجو'' ہونا چاہتی تھی جو چھوٹی سی بات پر جھگڑ دیتی تھی اور پھر جلدی ہی پیار بھی کرنے لگتی تھی۔ لیکن اب سندرلال لڑائی کا نام بھی نہ لیتا تھا۔ وہ یہ محسوس کرنے لگی تھی کہ وہ کوئی کانچ کی چیز ہے جو چھونے سے ہی ٹوٹ جائے گی۔ لاجونتی آئینے میں دیکھ کر سوچتی ہے کہ وہ سب کچھ تو ہوسکتی ہے لیکن ''لاجو'' نہیں ہوسکتی۔ سندرلال اس کے دکھ سننے کے لئے تیار نہیں تھا۔ بہرحال سندرلال کی ریلیاں نکلتی رہیں اور سندرلال اور اس کے ساتھی مل کر وہی گانا گاتے رہے جس سے اس افسانے کی شروعات ہوتی ہے۔

☆☆☆

مجاز کا ایک لطیفہ

فلمی اخبار کے ایڈیٹر مجاز سے انٹرویو لینے کے لئے مجاز کے ہوٹل پہنچ گئے... انہوں نے مجاز سے ان کی پیدائش، عمر، تعلیم اور شاعری وغیرہ کے متعلق کئی سوالات کرنے کے بعد دبی زبان میں پوچھا: ''میں نے سنا ہے قبلہ، آپ شراب بہت زیادہ پیتے ہیں۔ آخر اس کی کیا وجہ ہے؟'' ''کس نامعقول نے آپ سے یہ کہا کہ میں شراب پیتا ہوں۔'' مجاز نے کہا۔ ''تو پھر آپ سگریٹ کثرت سے پیتے ہوں گے؟'' ''نہیں میں سگریٹ بھی نہیں پیتا، شراب نوشی اور سگریٹ نوشی دونوں ہی بری عادتیں ہیں اور میں ایسی کسی بری عادت کا شکار نہیں۔'' مجاز نے جواب دیا۔ ایڈیٹر نے سنجیدہ لہجہ میں

بھئی کی لائی ہوئی عورتوں میں لاجونتی شامل نہیں تھی جس پر سندر لال کو بہت دکھ ہوا تھا لیکن اس نے کمیٹی کے مشن کو جاری رکھا۔ صبح کی ریلی کے علاوہ وہ اور اس کے ساتھی اب شام کو بھی ریلی نکالنے لگے تھے۔ ایک بار صبح سویرے جب سندر لال اپنے ساتھیوں سمیت ریلی کے ساتھ جا رہا تھا کہ ریلی اس جگہ پہنچی جہاں نارائن بابا رامائن کی کتھا سنا رہے تھے۔ اس وقت بابا رامائن کا وہ حصہ سنا رہے تھے جس میں ایک دھوبی اپنی دھوبن کو گھر سے نکال دیتا ہے اور اس سے کہتا ہے کہ میں رام چندر جی نہیں ہوں جس نے اتنے سال راون کے ساتھ رہنے کے باوجود بھی سیتا کو اپنایا۔ رام چندر جی سیتا کو یہ سن کر گھر سے نکال دیتے ہیں حالانکہ وہ حاملہ ہوتی ہیں۔ نارئن بابا یہ واقعہ سناتے ہوئے کہتے ہیں کہ اسی کو رام راج کہتے ہیں۔ سندر لال ہمیں ایسا رام راج نہیں چاہئے جہاں اپنے آپ سے ناانصافی کرنے کو پاپ نہ سمجھا جائے۔ وہ اپنی بات کی وضاحت کرتے ہوئے کہتے ہیں کہ آج بھی ہم اغوا شدہ عورتوں کی شکل نہیں دیکھنا چاہتے۔ ہم کیوں نہیں سوچتے کہ سیتا کا کوئی قصور نہیں تھا وہ بھی ہماری اغواہ شدہ عورتوں کی طرح فریب کا شکار ہوئی تھی۔ سندر لال سیتا اور پھر لاجونتی کا نام لے کر رونے لگتا ہے۔ اس کے ساتھی سندر لال زندہ باد کے نعرے لگاتے ہوئے وہاں سے چلے جاتے ہیں۔ اسی صبح لال چند نام کا ایک آدمی خوشخبری سناتا ہے کہ اسی نے لاجونتی کو واگا سرحد پر دیکھا ہے۔ وہ کہتا ہے کے عورتوں کے تبادلے کے دوران ہندستان اور پاکستان کے ولینٹرز کے درمیان جھگڑا ہوا۔ جھگڑا اس بات پر ہوا کہ ہندوستانی ولینٹرز کہتے تھے کہ پاکستانیوں نے جو عورتیں بدلے میں دیں ہیں وہ عمر رسیدہ اور بیکار ہیں۔ اس پر پاکستانی لاجونتی کو سامنے لاکر کہتے ہیں کہ یہ تمہیں بوڑھی لگتی ہے؟ تکرار بڑھنے کی وجہ سے دونوں فریق ایسی عورتوں کو واپس لے جاتے ہیں۔ بیدی اس واقعے کو انسانی واخلاقی طور پر عورتوں کی توہین تعبیر کرتے ہیں۔ سندر لال واگا سرحد پر جانے کی تیاری کر رہا تھا کہ اسے لاجونتی کے آنے کی خبر ملی تو وہ فوراً اس سے ملنے گیا۔ لاجونتی سندر لال کو دیکھ کر بہت ڈر گئی کہ وہ تو اسے پہلے ہی اس قدر مارتا تھا اور اب جبکہ وہ ایک پرائے مرد کے ساتھ رہ کر آئی ہے اب وہ اس کا کیا حشر کرے گا۔ سندر لال اس کی اچھی صحت دیکھ کر سوچنے لگا کہ وہ پاکستان میں خوش رہی ہے۔ لیکن پھر وہ خود سے سوال کرنے لگا کہ اگر وہ، اس قدر خوش تھی تو پھر وہ واپس اس کے پاس کیوں آئی؟ پھر اس نے سوچا کے شاید وہ غم کی وجہ سے موٹی ہوگئی ہے اور وہ صحت مند نظر آرہی ہے۔ وہاں اور بھی کئی لوگ موجود تھے ان میں سے کسی نے کہا کہ وہ مسلمان کی جھوٹی عورت نہیں لیں گے۔ لیکن یہ آواز سنتے ہی سندر لال کے ساتھیوں نے نعرے بلند کیے جن کی گونج میں یہ آواز بند کر دی گئی۔ سندر لال اپنی بیوی لاجونتی کے ساتھ گھر کی طرف روانہ ہوا۔ لاجونتی کے واپس آجانے کے بعد بھی سندر لال نے ''دل میں بساؤ'' تحریک کو پوری شدت کے ساتھ جاری رکھا۔ پہلے جن لوگوں کو سندر لال کی باتیں اچھی نہیں لگتی تھیں وہ اب لاجونتی کو عزت سے گھر لے جانے کے بعد

عرشی ناز
B.A(H) 1st Year

افسانہ ''لاجونتی'' کا خلاصہ

افسانہ ''لاجونتی'' کی شروعات بیدی نے ایک پنجابی جملے سے کی ہے.جس کے معنی کہانی کے اصل مفہوم کو واضح کرتے ہیں ۔تقسیم ہند کے دوران دیگر مظالم کے ساتھ ساتھ ایک معاملہ اغوا شدہ عورتوں کا بھی تھا جو اس افسانے کا موضوع ہے۔ ملاشکور محلے میں ''پھر بساؤ'' کے نام سے ایک کمیٹی بنائی جاتی ہے.جس کا سکریٹری سندرلال ہوتا ہے۔ یہ وہ شخص ہے.جس کی اپنی بیوی ''لاجونتی'' بھی اغوا ہو چکی ہے کمیٹی کا مقصد لوگوں میں اغوا شدہ عورتوں کے تیئں ہمدردی کا جذبہ پیدا کرنا ہے اس کمیٹی کے ممبران پربھات پھیری صبح کے وقت نکالتے ہوئے وہی پنجابی مصرعہ ''ہتھ لائیاں کملاں نی لاجونتی دے بوٹے'' گنگناتے ہیں اور لوگوں میں جا گرتی پھیلاتے ہیں۔

سندرلال کو اپنی بیوی ''لاجونتی'' یاد آتی رہتی ہے۔ وہ اس کے بارے میں سوچتا رہتا ہے کہ اغوا ہونے سے پہلے وہ کس طرح اس کو ستایا کرتا تھا۔اسے مارتا تھا اور بدسلوکی کی کوئی کسر باقی نہیں رکھتا تھا۔لاجونتی سب کچھ سہہ لیتی تھی وہ بہت سی نازک ہی عورت تھی جو دیر تک سندرلال سے ناراض نہیں رہ سکتی تھی۔ وہ سمجھتی تھی کہ سبھی مردوں کا یہی طریقہ ہوتا ہے اس لئے وہ اسے عام سی بات سمجھتی تھی۔ ۔سندرلال کو اس نے پہلی بار اپنی بہن کی شادی میں دیکھا تھا۔سندرلال کو یہ تمام باتیں یاد آتی ہیں اور اسے بہت تکلیف ہوتی ہے۔ وہ اپنے دل میں سوچتا ہے کہ اغوا ہونے والی عورتوں کا کیا قصور ہے۔قصور تو ظالم سماج کا ہے۔ چناچہ وہ ریلی کے دوران لوگوں کو سمجھانے کی کوشش کرتا ہے کہ وہ اغوا شدہ عورتوں کے واپس آنے پر انہیں اپنائیں اور عزت دیں۔اسی دوران سردولا سارا بھائی خاتون چند اغوا شدہ عورتوں کو تبادلے میں لاتی ہے۔

عورتوں کو کچھ تو ان کے گھر والوں نے اپنایا لیکن کچھ ایسی بھی تھیں جنہیں ان کے اپنوں نے جان بوجھ کر پہچاننے سے انکار کر دیا۔ان کا خیال تھا کہ ان عورتوں کو اپنی عصمت کی حفاظت کے لئے اپنی جان دے دینی چاہئے تھی۔ سارا

ہوئے۔

۴) پریم چند کے شاہکار افسانوں میں گلی ڈنڈا، سوا سیر گیہوں، نمک کا داروغہ، سوتیلی ماں، زیور کا ڈبہ، خون سفید، ستہ گرہ، بڑے گھر کی بیٹی، نوک جھوک، پوس کی رات، کفن، نجات، وغیرہ شامل ہیں۔

پریم چند کی افسانہ نگاری:

اردو دنیائے ادب میں جن اہلِ قلم کی جنبش میں مختصر افسانے کا آغاز ہوا اور جن کی نظروں نے دیکھتے ہی دیکھتے اس صنف نوفن کو بلندیوں تک پہنچایا ان میں پریم چند کا نام سب سے نمایاں ہے۔

پریم چند نے شروع میں جو افسانے لکھے ان میں پرانی داستانوں کا رنگ دکھائی دیتا تھا اور ان افسانوں میں زندگی کی حقیقتوں سے نظریں چرانے کا انداز، واقفیت، رنگین ماحول، جذباتی اندازِ بیان اور ان کی شاعرانہ زبان جیسی خصوصیات نظر آتی تھیں۔

بالآخر پریم چند نے اپنے افسانوں میں دیہات کی زندگی کی کامیاب تصویر کشی کی اور سماج کے مسائل کو اپنی کہانیوں اور افسانوں کا موضوع بنایا۔ پریم چند کی تخلیقات کا جو تصور ہے وہ دراصل اس طرح ہے، جیسے انسان سے دوستی کرنا اور یہ بات بھی جان لینے کی ہے کہ پریم چند کے صرف موضوع ہی اہم نہیں ہیں بلکہ اردو ادب میں ان کا فن بھی اتنا ہی اہم ہے۔

حقیقت نگاری پریم چند کے افسانوں کی سب سے بڑی اور اہم خصوصیت ہے وہ زندگی کی سچائی کو پوری طرح واضح کرتے ہیں اور اسے اپنی سادہ وسلیس زبان میں پیش کرنے کی صلاحیت رکھتے تھے۔ ان کے بیشتر پلاٹ منظم ہوتے ہیں اور وہ کہانی کی تعمیر پر سب سے زیادہ توجہ کرتے ہیں۔ ان کی کہانی کے کردار اصلی اور فطری ہوتے ہیں۔ اس لئے ان کے کردار ہمیں یہ محسوس کراتے ہیں کہ ہم ان سے کہیں نہ کہیں ملے ہیں کیونکہ پریم چند انسانی زندگی کا گہرا مطالعہ کرنے میں ماہر تھے اور ان کی پہلی دین انسانی ذہن کی مہارت ان کے افسانوں کو حقیقی زندگی کے بالکل قریب کر دیتی ہے۔ اس لئے ان کے فسانے سے لوگوں کو کوئی قصہ کہانی نہیں بلکہ اصل زندگی کے سچے واقعات معلوم ہوتے ہیں۔

☆☆☆

رضوانہ
B.A(H) 2nd Year

پریم چند کی افسانہ نگاری

پریم چند ہماری دنیائے ادب کے ایک بڑے اور مشہور ناول نگار اور افسانہ نگار ہیں۔ پریم چند کا اصل نام دھنپت رائے تھا مگر دنیا ان کو پہلے نواب رائے اور پھر پریم چند کے نام سے جانتی اور پہچانتی ہے۔ پریم چند کے والد صاحب کا نام عجایب لال تھا۔ وہ ۱۸۸۰ء میں بنارس کے قریب ایک گاؤں لمہی پاندے میں ایک غریب گھرانے میں پیدا ہوئے۔ اس لیے ان کا پورا بچپن بہت تنگدستی میں گزرا۔ انہوں نے ۸ سال کی عمر تک فارسی کی تعلیم حاصل کی اور اس کے بعد انہوں نے انگریزی تعلیم شروع کی۔ جب پریم چند آٹھویں جماعت میں پڑھتے تھے تب ان کی عمر پندرہ سال تھی اور ان کی اسی عمر میں شادی کرا دی گئی۔ ان کی شادی کے ایک سال بعد ان کے والد صاحب کا انتقال ہو گیا۔ انہوں نے دسویں جماعت کا امتحان بھی مشکل سے پاس کیا تھا اور حساب کتاب میں بھی بالکل کچے تھے۔ پریم چند کے گھر کی مالی حالت بھی خراب تھی اس لیے ان کی تعلیم جاری نہ رہی۔ کچھ عرصہ بعد پریم چند نے پرائیویٹ طور پر بی۔ اے پاس کیا اور اس کے بعد پریم چند جب بیس برس کے ہوئے تو وہ ایک اسکول میں مدرس ہوئے اور مدرسی کی ٹریننگ پوری کرنے کے بعد وہ ایک ٹریننگ اسکول کے ماسٹر ہو گئے۔ اس کے بعد وہ ترقی کر کے مدراس میں ایک ڈپٹی انسپکٹر ہو گئے۔ پریم چند مہاتما گاندھی کے خیالات سے بہت متاثر ہوئے تھے۔ انہوں نے عدم تعاون کی تحریک کے دوران اپنی ملازمت ترک کر دی اور اس کے بعد وہ ایک کے بعد ایک اخبار نکالنے لگے لیکن کوئی بھی اخبار ان کے خرچ کو پورا نہیں کر پاتا تھا۔ پریم چند نے دنیائے ادب میں اپنی ادبی زندگی کا آغاز ناول سے کیا اور اس کے بعد افسانے لکھے۔ پریم چند نے اپنی پوری زندگی ناول اور افسانے کے نام کر دی اور آخر میں ۱۹۳۶ء کو وفات پا کر وہ اس دنیا سے رخصت ہو گئے۔

پریم چند کے مختصر افسانے:

۱) پریم چند کا پہلا افسانہ ''دنیا کا سب سے انمول رتن'' ہے جو ۱۹۰۸ء میں ''رسالہ زمانہ'' کانپور سے شائع ہوا۔
۲) پریم چند نے پانچ افسانوں کا مجموعہ لکھا جو کہ ''سوزِ وطن'' کے نام سے شائع ہوا۔
۳) اس کے بعد پریم چند کہ افسانوں کے مجموعے ''پریم پچیسی''، ''کاک پروانہ''، ''آخری تمغہ'' کے نام سے شائع

شمالی ہندستان میں اردو کی پہلی اور باقاعدہ نثری داستان جو ہمیں ملتی ہے وہ عطا حسین تحسین کی ''نوطرزِ مرصع'' ہے۔ جس کا سنِ تصنیف ۱۷۶۸ء تا ۱۷۷۵ء ہے۔ وہی قصہ چہار درویش ہے۔ جس کو بعد میں فورٹ ولیم کالج کی فرمائش پر میر امنؔ نے سادہ زبان میں ''باغ و بہار'' کے نام سے داستان کے فن پر پوری اترتی ہے اور اس میں وہ تمام عناصر موجود ہیں جو ایک داستان کے لئے ضروری ہیں۔

جب فورٹ ولیم کالج کے ذریعہ داستانیں چھپ کر منظر عام پر آئیں تو دوسرے ادیب بھی اس طرف متوجہ ہو گئے۔ اور پھر رجب علی بیگ سرور نے باغ و بہار کے جواب میں ''فسانہ عجائب'' ۱۸۲۴ء میں لکھی۔ اس کے علاوہ دوسرے مصنفین محمد بخش مہجوری کی داستان نورتن، الف لیلیٰ، بوستان خیال وغیرہ کے تراجم بھی ہوئے۔

اٹھارہویں صدی کے ہندستان میں داستانوں کا عام رواج تھا۔ اور فورٹ ولیم کالج کے بعد اس صنف کو خاص مقبولیت حاصل ہوئی اور انیسویں صدی کے آخر تک کئی داستانیں لکھی گئی۔ جیسا کہ ہم پہلے یہ ذکر کر چکے ہیں کہ اردو میں زیادہ تر داستانیں ترجمہ ہو کر آئیں ہیں۔ ان میں فکر کی وہ گہرائی کہیں نظر نہیں آتی جو ادب میں خاص وصف رکھتی ہے۔ اب داستان پڑھنے والوں میں دلچسپی اس لئے نہیں ملتی کیونکہ اب داستانوں میں کسی طرح کی مسرت نہیں ملتی۔ اس کے پڑھنے کے بعد بھی قاری اس کے اصل مقصد سے محروم رہتا ہے۔ انسانی زندگی کے حقوق، مسائل کو سمجھنے میں اس سے کوئی مدد نہیں ملتی۔ داستانیں الفاظ کا ایک بحر ذخار ہیں اور اس بحر میں محاوروں، کہاوتوں، تشبیہوں، استعاروں، ممثلوں کے بیش بہا جوہرات پوشیدہ ہیں۔ جاگیردارانہ دور میں ادیبوں نے داستان کو فروغ بخشا۔

☆☆☆

داغؔ دہلوی کا ایک لطیفہ

بشیؔر رامپوری حضرت داغؔ دہلوی سے ملاقات کے لیے پہنچے تو وہ اپنے ماتحت سے گفتگو بھی کر رہے تھے اور اپنے ایک شاگرد کو اپنی نئی غزل کے اشعار بھی لکھوا رہے تھے۔ بشیؔر صاحب نے سخن گوئی کے اس طریقہ پر تعجب کا اظہار کیا تو داغؔ صاحب نے پوچھا ''خاں صاحب آپ شعر کس طرح کہتے ہیں؟ بشیؔر صاحب نے بتایا کہ حقہ بھروا کر الگ تھلگ ایک کمرے میں لیٹ جاتا ہوں۔ تڑپ تڑپ کر کروٹیں بدلتا ہوں، تب کوئی شعر موزوں ہوتا ہے۔'' یہ سن کر داغ مسکرائے اور بولے ''بشیر صاحب! آپ شعر کہتے نہیں، شعر جنتے ہیں۔''

ثنا

B.A(H) 2nd Year

داستان: ایک تعارف

کہانی انسانی سماج کی ارتقائی تاریخ ہے، جیسے جیسے انسان کی سماجی زندگی ترقی کرتی گئی ویسے ویسے کہانی کی حدیں بھی بڑھتی گئی اور موضوعات بھی بدلتے گئے۔ کہانی آہستہ آہستہ ترقی کرتی ہوئی حکایت، تمثیل، داستان، ناول اور افسانے کی منزل تک پہنچ گئی۔

بیتی ہوئی زندگی کے واقعات اور تجربات کو دوسروں تک پہنچانا ہی کہانی کا اصل مقصد ہے۔ انسان جب اپنی باتوں اور تجربوں کو دوسروں کو بتاتا ہے تو اس کا مقصد یہی رہتا ہے کہ سننے والے کے دل و دماغ پر ویسے ہی اثرات ثبت ہوں جو خود اس نے محسوس کئے تھے۔ واقعات کو دلچسپ اور پر اثر ڈھنگ سے پیش کرنا ہی کہانی کے فن کا جوہر ہے۔ پرانے زمانے سے لے کر اب تک کہانی نے مختلف صورتیں اختیار کی ہیں۔ داستان ایسی رومانی کہانی کو کہتے ہیں جس میں خیالی واقعات کا بیان، حسن و عشق کی رنگینی، واقعات وحادثات کی بہتات اور پیچیدگی اور بیان کی لطافت ہو اور اس کا مقصد اپنے قاری کو فرحت و مسرت کا سامان فراہم کرنا ہو۔

ہندوستان ہمیشہ سے قصہ کہانیوں کا ملک رہا ہے۔ یہاں رامائن، مہابھارت، جیسے قصے کہانیوں نے جنم لیا ہے۔ شاہی درباروں اور عوام میں ان کا رواج عام رہا ہے۔ درباروں میں بادشاہ علم وفن کے ماہرین کو ملازم رکھتے تھے جو بادشاہوں کو داستانیں سنایا کرتے تھے۔

ہماری بہت سی داستانیں ایسی ہیں جو پہلے سنسکرت میں لکھی گئی اور یہاں سے وہ عرب وایران گئیں۔ عربی وفارسی میں ان کے ترجمے ہوئے اور عربی وفارسی کے ذریعے وہ اردو میں آئیں مثلاً؛ ''بیتال پچیسی'' کچھ داستانیں ایسی ہیں جو عرب وایران میں تصنیف ہوئیں اور مسلمانوں کے ساتھ ہندوستان میں آئیں اور یہاں ان کے تراجم ہوئے جیسے؛ ''سب رس'' ''الف لیلہ'' وغیرہ اس کے علاوہ کچھ داستانیں ایسی بھی ہیں جو پہلے پہل ہندوستان ہی میں فارسی میں لکھی گئیں اور بعد میں ان کے اردو ترجمے ہوئے مثلاً ''باغ و بہار''۔

تقسیم کی تشدد کے اشتراکی انداز کو بخوبی بے چین اور پریشان کیا کرتے تھے۔ اپنی کہانی 'تیقن' میں منٹو نے ان دونو آبادیاتی ریاستوں کی ان کوششوں کی خدمت کی ہے جو فرقہ وارانہ جنون کے دوران اغوا کی گئی خواتین کی بحالی کر کے، بکھرے ہوے ٹکڑوں کی سلائی کی کوشش کر رہی تھیں۔ یہ کہانی ایک تباہ حال اور پاگل عورت کے گرد گھومتی ہے، جو شدت سے اپنی بیٹی تلاش کر رہی ہے۔ کہانی جس افسر کی زبانی سنائی جارہی ہے وہ بوڑھی عورت سے کہتا ہے کہ اس کی بیٹی کو مار دیا گیا تھا اور اب اسے واپس پاکستان چلا جانا چاہیے۔ بوڑھی عورت یہ ماننے سے انکار کر دیتی ہے کہ کوئی اس کی خوبصورت بیٹی کو مار بھی سکتا ہے۔ ایک نوجوان سکھ کے ساتھ سڑک پر دیکھتی ہے، اسے دیکھ کر وہ سکھ اس لڑکی سے کہتا ہے 'تمہاری ماں'۔ جوان لڑکی اپنی ماں کی طرف ایک نگاہ دیکھتی ہے اور چلی جاتی ہے۔ پریشان کن والدہ اپنی بیٹی کو پکارتی رہ جاتی ہے اور افسر خدا کی قسم کھا کر قاری کو بتاتا ہے کہ اس کی بیٹی مر گئی تھی۔

منٹو نے یہ بات کہانی میں واضح نہیں کی ہے کے وہ لڑکی، نوجوان سکھ کے ساتھ بھاگ گئی تھی یا اغوا کیا گیا تھا، مگر دونوں ہی صورت میں وہ اپنی ماں سے نہیں ملنا چاہتی تھی۔

اپنے حقیقت پسند افسانوی عناصر کو پناہ گزین کیمپوں کے سچ کے ساتھ جوڑ کر منٹو ان دستاویز کو پیش کرتے ہیں جنہیں پیشہ وارانہ مورخ اپنے ہنر کی حدود کی وجہ سے خارج کر دیتے ہیں۔ دونوں آبادیاتی ریاستوں کے قومی نشریات پیش کرنے کے بجائے منٹو انسانیت کے احساس سے سمجھوتا کئے بغیر تشدد کے متاثرین کی روح میں جھانکتے ہیں۔ منٹو اس وقت کے ایک بہترین مورخ اور وہ ادیب تھے جن کی قلم کو بیان کرنے کی صلاحیت حاصل تھی اور وقت کے امتحان کا مقابلہ بھی کرتے رہے اور آج بھی تاریخ ساز کے ساتھ ساتھ گواہ کا کردار بھی ادا کر رہی ہے۔

☆☆☆

غالبؔ کا ایک لطیفہ

مارہرے کی خانقاہ کے بزرگ سید صاحب عالم نے غالبؔ کو ایک خط لکھا۔ ان کی تحریر نہایت شکستہ تھی۔ اسے پڑھنا جوئے شیر لانے کے مترادف تھا۔ غالبؔ نے انہیں جواب دیا:

''پیرومرشد، خط ملا چوما چاٹا، آنکھوں سے لگایا، آنکھیں پھوٹیں جو ایک حرف بھی پڑھا ہو۔ تعویذ بنا کر تکیہ میں رکھ لیا۔''

نجات کا طالب؛ غالبؔ

میں نے پوچھا تھا کہ کیا وہ مسلمان ہونے کی وجہ سے مجھے مارسکتا ہے،!جس کا شیام نے جواب دیا کہ؛ 'اب نہیں۔۔۔۔لیکن جب میں مسلمانوں کے مظالم کے بارے میں سن رہا تھا تب میں تمہیں مارسکتا تھا'۔ وہ کہتے ہیں کہ اس نے کسی مسلمان یا اسلام کو نہیں بلکہ ایک انسان کو مارڈالا تھا۔

ایک طویل انتظار کی آزادی کے بعد، ان کے اپنے آبائی صوبہ پنجاب میں ہوئے خونی تشدد کو سمجھنے کے لئے منٹو نے انسانی جذبات کے اندرونی حصوں میں جھانکا اور ۱۹۴۷ء میں ہونے والے ظلم و بربریت اور اس کے اثر کو دیکھنے کے بعد یہ نتیجہ اخذ کیا کہ یہ نہ تو مذہبی جوش تھا اور نہ ہی تقویٰ بلکہ انسانی لالچ کی وہ حیرت انگیز صلاحیت ہے جس نے برصغیر کو اس طرح کے افسوسناک انجام تک پہنچایا تھا۔

اگر چہ یہ تخلیقی مصنفین نے پیشہ وارانہ مورخین کی نسبت تقسیم کے انسانی تجربے پر زیادہ بہتر طریقے سے کام کیا ہے لیکن منٹو نے اسی موضوع کو، روزمرہ کی افراتفری کے ماحول کو، اپنے بے روک ٹوک طریقے، زبان کی سادگی اور کہانی کی تیز رفتاری کے ساتھ پیش کیا ہے۔

منٹو تشدد کے مظالم کو بھی اتنی ہی توجہ دیتے ہیں جتنی کہ مظلوم کو اور اس کی سب سے بہترین مثال ہے ان کا افسانہ ٹھنڈا گوشت۔ پاکستان کی سرزمین پر لکھی گئی وہ پہلی کہانی جس کے لئے منٹو پر نوتشکیل شدہ مسلم ریاست نے الزام عائد کئے تھے۔ اس کہانی میں ایک سکھ کردار ہے جو کہ یہ جاننے کے بعد زیادہ بیمار ہو گیا تھا، کہ اس نے جس جوان لڑکی کو آبروریزی کی نیت سے اغوا کیا تھا۔ وہ پہلے سے ہی مری ہوئی تھی۔ ایسی کہانیاں لکھنے کا حوصلہ ان میں کسی بدکاری کی وجہ سے نہیں آیا تھا بلکہ انہوں نے جو دیکھا وہ لکھا۔ کس مذہب نے اس طرح کے سلوک کو منظوری دی؟ لاکھوں بے گناہ لوگوں کے قتل کا ذمہ دار کون تھا؟

ان سوالات نے ۱۹۴۷ء سے ہی مورخوں کو داغ دار کیا ہوا ہے۔ حقیقت اور تخیل کی ملاوٹ کے ہنر کے ساتھ ساتھ منٹو تاریخی بیان کی حدوں کو دھندلا دیتے ہیں اور اپنے ادبی خزانے میں بدل دیتے ہیں۔ وہ تاریخ دانوں کے ساتھ اس موڑ پر ملتے نظر آتے ہیں جہاں وہ تقسیم کو ایک نقطِ نظر کے بجائے اس عمل کے طور پر دیکھتے ہیں جس کا نہ تو کوئی آغاز ہے اور نہ ہی انجام۔

تقسیم منٹو کے لئے ایک ایسا اجتماعی پاگل پن تھا جس کی ہردم کھلتی پرتیں انہیں انسانیت کی بہترین اور بدترین جھلکیاں دکھاتی تھیں۔ منٹو نے اپنی مختصر بیانی کے ہنر کے ذریعے اپنے افسانوی کرداروں کے دل و دماغ کو قاری کے سامنے کھول کر رکھ دیا۔ وہ تقسیم ہند کی کہانیوں کے بہترین تجربہ کاروں میں شامل ہیں کیونکہ انہوں نے اس کی دانشمندی پر سوال اٹھایا تھا جیسا کہ افسانہ ''ٹوبا ٹیک سنگھ''۔

منٹو کی کہانیاں مورخین کے لئے اہم وسیلہ ہیں کیونکہ وہ ایسے فنکار ہیں جو بنیادی مدعوں پر چوٹ کرنا جانتے تھے، اور

مباع نور
B.A(H) 3rd Year

سعادت حسن منٹو: ایک جائزہ

وہ شخص جو خود ایک انسان ہے، ہر دوسرے انسان کی طرح، گوشت کا پتلا، جس کے سینے میں بھی دل ہے، اور شخصیت و کردار میں وہ سبھی خوبیاں و خامیاں ہیں جو عموماً انسانی فطرت میں ہوتی ہی ہیں۔ مگر جب اس شخص نے تقسیم ہند کے دوران انسانوں کے ہاتھوں ہی انسانیت کو بے آبرو ہوتے دیکھا تو اس کی روح تڑپ اٹھی، مختصر کہانی یعنی کے افسانے کے ماہر ادیب سعادت حسن منٹو کے لئے یہ کوئی آسان کام نہیں تھا۔ وہ خود اس کا اظہار کرتے ہوئے کہتے ہیں کہ 'جو دوست، ہمسایہ اور ہم وطن تھے ان کی انسانیت کیوں کر ختم ہوگئی۔

انسانیت کی نوعیت پر اعتماد کے ساتھ منٹو نے ۱۹۴۷ء کے انسانی المیے کے بارے میں پر جوش کہانیاں لکھیں جن کا بین القوامی سطح پر اعتراف کیا گیا کہ یہ تقسیم کے تشدد کی سچی تصویر پیش کرتی ہیں۔ تقسیم پر مبنی یہ کہانیاں ہر اس شخص کے لئے پڑھنا ضروری ہیں جو ہندوستان کی تقسیم اور پاکستان کی تشکیل کی ذاتی جہتوں میں دلچسپی رکھتا ہو۔ ان کی کہانیاں نہ صرف ادبی معیار کا نمونہ ہیں بلکہ نایاب تاریخی ریکارڈ بھی ہیں۔ منٹو کی تخلیقات بلاشبہ صرف تقسیم کے موضوع تک محدود نہیں ہیں۔ مگر اس موضوع پر وہ انسانی نفسیات کے گہرے اندھیروں کی جو تصویر پیش کرتے ہیں وہ اپنے اندر بہت ہی سنجیدگی اور گہرائی رکھتی ہے۔

منٹو تقسیم کے تشدد کی ذمہ داری سے بچنے کے لئے کسی دوسری جماعت یا انسان پر تہمت نہیں لگاتے اور تنگ نظری کو پیچھے چھوڑتے ہوئے مذہب کی بنیاد پر دوستوں کا امتیاز نہیں کرتے۔ ایک مختصر سی ۴۳ سال کی زندگی جو انہوں نے امرتسر، ممبئی، دہلی اور لاہور میں گزاری، اس میں انہوں نے جو دوستیاں قائم کیں وہ ۱۹۴۷ء کے تشدد سے بچ گئیں۔ ہندوستان میں جن دوست واحباب کو وہ چھوڑ گئے تھے ان میں ترقی پسند اردو، ہندی ادب کے ادیب راجندر سنگھ بیدی، کرشن چندر، عصمت چغتائی اور علی سردار جعفری کے ساتھ ساتھ بمبئی فلم انڈسٹری سے اشوک کمار شیام جیسی شخصیتیں بھی شامل تھیں۔

واضح طور پر انہیں معاشرتی تعلقات میں رکاوٹ کا سامنا کرنا پڑا تھا، اپنی سوانح عمری میں لکھتے ہیں کہ راول پنڈی میں مسلمانوں کے تشدد سے فرار ہونے والے سکھ مہاجر کنبے کی افسوس ناک کہانی سننے کے بعد شیام سے تبادلہِ خیال کرتے ہوئے

ڈاکٹر جمیل جالبی کے مطابق 'اختر الایمان کے یہاں نظم کو نثر سے ملانے کی شعوری کوشش کی گئی ہے۔ یہ شعوری تجربہ فیض کے مجموعہ کلام 'زنداں نامہ' میں جگہ جگہ پایا جاتا ہے۔ اختر الایمان کی نظموں میں یادوں کا ایک ہلکا سا رنگ ہے، اور ان کی نظموں کے ایک مجموعے کا نام بھی 'یادیں' ہے۔ اگر ماضی کا شعور ان کی نظموں سے الگ کر دیا جائے تو جیسے ایک خلاسی پیدا ہو جاتی ہے۔ ایک جانب ان کا ذہن جدید ہے، فکر جدید تر ہے، تکنیک نئی ہے، تو جانب دیگر ان کی زبان کلاسیکی ہے۔ ان کے یہاں مشکل سے مشکل تر فارسی و عربی تراکیب کا استعمال جا بجا نظر آتا ہے۔ عہد حاضر کے شعراء میں جوش اور فیض بعد اختر الایمان ہی ایسے شاعر ہیں جن کے یہاں زورِ بیان نظر آتا ہے۔ اگر یہ کہا جائے کہ غالب اور اقبال کے بعد، اگر کسی شاعر کا کلام گنجینہ معنی کے طلسم کے مماثل ہے تو ان میں اختر الایمان سرفہرست ہیں، یہ کہنا شاید مبالغہ نہ ہوگا۔ اختر الایمان کے یہاں ایک جانب اساطیری و تاریخی تلمیحات کا عالمانہ و پر جمال استعمال ہے، تو دوسری جانب داستانوی انداز بھی استعمال کیا گیا ہے۔ اختر الایمان کی فکر اور تخیل میں وقت کی بڑی اہمیت ہے۔

وہ کہتے ہیں 'میری نظموں میں وقت کا تصور اس طرح ملتا ہے جیسے یہ بھی میری ذات کا ایک حصہ ہے، اور طرح طرح سے میری نظموں میں میرے ساتھ رہتا ہے۔ کبھی یہ گزرتے وقت کا المیہ بن جاتا ہے، کبھی خدا بن جاتا ہے، تو کبھی نظم کا ایک کردار۔ ان کی نظم 'جب گھڑی بند تھی' کے ان مصروں کو دیکھئے:

جب گھڑی بند ہوگی تو کیا کیا بیتنے والے پل
چھاؤں پا کر سب ٹہر جائیں گے
وقت سے پہلے مر جائیں گے
یہاں گھڑی تو وقت کی میزان ہے نیز وقت
صبح اور شام یہ تمام وقت کے کے علامیے ہیں

اس طرح سے ہم دیکھتے ہیں کہ ان کی شاعری میں ماضی کی یادیں، احساس وفکر نمایاں طور پر نظر آتی ہیں۔

خدا کو ڈھونڈھتا رہتا ہے، کیوں دنیا میں آکر بھی
نہ تھا کچھ تو خدا تھا، کچھ نہ ہوگا تو خدا ہوگا

اس شعر میں ان کا فلسفیانہ انداز نظر آتا ہے۔ اس طرح ہم دیکھتے ہیں کہ واقعی ان کی شاعری، انسان کی روح کا کرب ہے۔

☆☆☆

واجد علی
B.A(H) 2nd Year

اختر الایمان کی نظم نگاری

اردو شاعری کی تیسری آواز کہے جانے والے، ہمارے عہد کے روشن فکر اور اردو نظم کے ممتاز شاعر تسلیم کیے جانے والے اختر الایمان، نجیب آباد، ضلع بجنور میں ۱۹۱۵ پیدا ہوئے۔ اختر الایمان کی نظموں کے چھ مجموعے 'گرداب' ۱۹۴۳ء 'تاریک سیارہ' ۱۹۴۶ء ایک منظوم تمثیل 'سب رنگ' ۱۹۴۸ء 'آب جو' ۱۹۵۹ء 'یادیں' ۱۹۶۱ء 'بنت لمحات' ۱۹۶۱ء 'نیا آہنگ' ۱۹۷۷ء میں شائع ہوئے ہیں۔ ان کے چوتھے مجموعے 'یادیں' پر انہیں ساہتیہ اکادمی ایوارڈ دیا گیا۔

اختر الایمان کی نظموں میں ایک فلسفانہ تجسس کی کیفیت ملتی ہے۔ نظم نگاری میں انہوں نے اپنی راہ الگ نکالی، نیکی اور بدی کی کشمکش، وقت کی اہمیت، خواب اور حقیقت کا تصادم اور انسانی رشتوں کی دھوپ چھاؤں ان کے پسندیدہ موضوعات ہیں۔ وہ براہ راست انداز کے بجائے رزمیہ انداز کے شاعر ہیں۔ ان کے یہاں خود کلامی اور مکالمے کی کیفیت ملتی ہے۔ ان کی نظم 'ایک لڑکا' میں خود کلامی کی کیفیت پائی جاتی ہے۔

انہوں نے اپنی شاعری کو انسان کی روح کا کرب کہا ہے۔ ان کی بیشتر نظمیں مختصر اور اشاراتی ہیں۔ جس میں نظم 'قلو پطرہ' کو بطور مثال پیش کیا جا سکتا ہے۔ جس کا پس منظر دوسری جنگ عظیم ہے۔ اور اسی طرح کی کچھ نظمیں اور ہیں جن کی ہئیت اسی ضمن میں پائی جاتی ہے۔ جن میں 'مسجد' 'فیصلہ' 'پرانی فصیل' اور 'ایک لڑکا' وغیرہ قابلِ ذکر ہیں۔

نظم معریٰ کی ہیئت میں سب سے زیادہ کامیاب نظمیں اختر الایمان نے لکھیں اور ساتھ ہی ان کو غزل کا باغی شاعر بھی کہا جاتا ہے۔ ان کے پہلے مجموعے 'گرداب' پر تبصرہ کرتے ہوئے فراق گورکھپوری نے کہا تھا؛ 'نئے شاعروں میں سب سے گھائل آواز اختر الایمان کی ہے' جس طرح فیض کی شاعری پر ایک مخصوص نظریے کی مہر لگی ہوئی ہے، اختر الایمان کے یہاں ایسا نہیں ہے۔ انہوں نے ترقی پسند تحریک اور حلقہ ارباب ذوق سے تعلق نہ رکھتے ہوئے بھی وہ دونوں سے کہیں نہ کہیں وابستہ رہے۔ جس طرح میراجی اور ن۔م۔ راشد کے یہاں جنسیات کی عکاسی بہ دستور ملتی ہے اس اعتبار سے اختر الایمان کے یہاں جنسیات کا فقدان پایا جاتا ہے۔

ایماں مجھے روکے ہے تو کھینچے ہے مجھے کفر
کعبہ میرے پیچھے ہے، کلیسہ میرے آگے

اسی بنا پر مرزا غالبؔ کو اردو کا عظیم شاعر تسلیم کیا جاتا ہے۔ کیونکہ ان کی فکر جدید تھی، لیکن شاعری کے علاوہ خطوط بھی نہایت ہی اہم ہیں۔

کلاسیکی شاعری کا آخری بڑا نام نواب مرزا داغؔ دہلوی کا ہے۔ داغؔ کی پرورش لال قلعہ میں ہوئی تھی۔ داغ کا زیادہ تر کلام عشق و عاشقی پر معمور ہے اور چونکہ ان کا کلام کوٹھوں پر بہت زیادہ گایا جاتا تھا۔ اس لیے انہیں طوائفوں کا شاعر بھی کہا جاتا تھا۔ ان کے مقبول ترین اشعار، ملاحظہ ہوں؛

اردو کا ہے جس کا نام ہمیں جانتے ہیں داغ
سارے جہاں میں دھوم ہماری زبان کی ہے

نہیں کھیل اے داغ یارو سے کہہ دو
کہ آتی ہے اردو زبان آتے آتے

خاطر سے یا لحاظ سے میں مان تو گیا
جھوٹی قسم سے آپ کا ایمان تو گیا
غضب کیا ترے وعدے پہ اعتبار کیا
تمام رات قیامت کا انتظار کیا

ان شعراء کے بعد میرؔ، غالبؔ، مومنؔ اور داغؔ کے طرز کی اردو شاعری تقریباً ختم ہوگئی اور جدید رنگ میں غزل کہی جانے لگی۔ اس طرح ہم دیکھتے ہیں کہ اردو کی کلاسیکی غزل کا سرمایہ بہت اہم ہے۔

☆☆☆

اردو کے بڑے فلسفی شاعر مرزا اسداللہ خان غالبؔ ۱۷۹۷ء میں پیدا ہوئے تھے۔ مرزا غالبؔ کا کوئی استاد نہیں تھا صرف مطالعے کے زور پر شعر کہتے تھے اور انتہائی مشکل شعر کہتے تھے۔ غالب ابتدا میں بیدلؔ کی تقلید کرتے تھے اور روایتی قسم کی شاعری کرتے تھے۔ لیکن آہستہ آہستہ وہ فارسی مضامین سے آزاد ہوتے ہوئے جدید قسم کے مضامین کو نظم کرنے لگے۔ مرزا غالبؔ نے اپنی آنکھوں سے مغلیا سلطنت کا زوال ۱۸۵۷ء کا غدر دیکھا تھا۔ اس غدر میں ان کے بہت سے دل عزیز اجڑ گئے تھے۔ انہی واقعات سے متاثر ہو کر غالب نے کہا تھا:

ہے موجزن اک قلزم خوں کاش یہی ہو
آتا ہے ابھی دیکھیے کیا کیا مرے آگے

غالب کا رویہ عشق اور زندگی کے بارے میں غیر روایتی تھا۔ مثلاً؛

درد منت کش دوا نہ ہوا
میں نہ اچھا ہوا برا نہ ہوا

تیرے وعدے پر جیے ہم تو یہ جان جھوٹ جانا
کہ خوشی سے مر نہ جاتے اگر اعتبار ہوتا

اسی طرح خدا کے بارے میں بھی غالبؔ کا رویہ نہایت ہی غیر روایتی اور جدید انداز کا تھا۔ مثلاً وہ کہتے ہیں؛

ہم کو معلوم ہے جنت کی حقیقت لیکن
دل کے خوش رکھنے کو غالبؔ یہ خیال اچھا ہے

لیکن کبھی کبھی وہ ایسے اشعار بھی کہتے تھے جن سے مذہب کے بارے میں ان کی شوخی اور ظرافت کا پہلو بھی سامنے آتا ہے۔ مثال کے طور پر؛

کیا ہی رضواں سے لڑائی ہو گی
خلد میں گر تیرا گھر یاد آیا

چونکہ غالبؔ دیکھ رہے تھے انگریزوں کا لایا ہوا جدید نظام، وہ پرانے نظام کو ترک کر کہ نئے نظام کی طرف بڑھ رہے تھے۔ چنانچہ کہتے ہیں؛

لکھنؤ میں شیخ امام بخش ناسخ اردو کے بہت بڑے شاعر اور لکھنوی طرز کے موجد تھے۔ ناسخ کا کوئی استاد نہیں تھا خود ہی اپنی اصلاح کرتے تھے، اور استاد کے مقام پر فائز تھے:

رو کے جانے کا تصور میں جو نظارہ ہوا
دل میں تھا جو داغ حسرت عرش کا تارہ ہوا

دوستوں جلدی خبر لینا کہیں ناسخ نہ ہو
قتل اس کی گلی میں آج ایک بیچارہ ہوا

ناسخ کے ہم عصر خواجہ حیدر علی آتش دلی کے معزز خاندان سے تعلق رکھتے تھے۔ آتش سادگی سے زندگی بسر کرتے تھے مگر حسن کے عاشق تھے:

یہ آرزو تھی تجھے گل کے رو برو کرتے
ہم اور بلبل بے تاب گفتگو کرتے

نہ پوچھ عالمِ برگشتہ طالعی آتش
برستی اگ جو باراں کی آرزو کرتے

انیسویں صدی کی دلی میں اردو غزل نے وہ عروج حاصل کیا جو اس سے پہلے نہ تھا۔ یہ زمانہ غالبؔ، ذوقؔ اور مومنؔ کا زمانہ تھا۔ ان شاعروں میں حکیم مومن خان مومنؔ انہیں اپنے کلام کی فصاحت و بلاغت پر بڑا ناز تھا:

تم میرے پاس ہوتے ہو گویا
جب کوئی دوسرا نہیں ہوتا

شیخ ابراہیم ذوقؔ دلی کے ایک غریب خاندان میں پیدا ہوئے تھے۔ ذوقؔ غزل اور قصیدہ دونوں کے استاد تھے۔ ان کے سینکڑوں شاگرد تھے جن میں بہادر شاہ ظفرؔ، داغؔ دہلوی، محمد حسین آزادؔ مشہور ہوئے۔ ذوقؔ کے کلام با محاورہ الفاظ اور ضرب المثل اشعار بڑی تعداد میں پائے جاتے ہیں:

اب تو گھبرا کے یہ کہتے ہیں مر جائیں گے
مر کے بھی نہ پایا تو کدھر جائیں گے

وَلّی دکنی ۱۷۰۰ء میں دلی آئے تھے۔ یہاں ان کی ملاقات سعد اللہ گلشن سے ہوئی۔ جنہوں نے فرمایا کہ:

''یہ سب مضامین جو فارسی میں بیکار بھرے پڑے ہیں۔ انہیں زبانِ ریختہ میں منتقل کرو''

وَلّی دکنی کا دیوان ۱۷۱۹ء میں دلی آیا تھا۔ جس کی بڑی قدردانی کی گئی۔ ان کے اشعار کو سن کر دلی کے شاعروں نے اس طرز پہ شعر کہنے شروع کیے اور ریختہ میں شاعری کا شوق پیدا ہوا۔ اردو شاعری کی ترقی کے لئے خان آرزو نے بہت کام کیا۔ وہ اردو اور فارسی دونوں کے استاد تھے۔ اس زمانے کے نوجوان شعراء نے آرزو سے گہرے اثرات قبول کیے۔

دلی میں یہ زمانہ میر و سودا کا عہد کہلاتا تھا۔ اس دور میں میر حسن نے مثنوی میں، سودا نے قصائد میں، غزل میں میر اور خواجہ میر درد نے آئندہ نسلوں کے لیے یادگار نمونے چھوڑے ہیں۔ اسی لیے آنے والے شعراء بھی انھیں احترام کی نظر سے دیکھتے ہیں:

غالبؔ اپنا یہ عقیدہ ہے بقول ناسخؔ

آپ بے بہرہ ہیں جو معتقد میر نہیں

محمد حسین آزاد کہ مطابق میر و سودا کے بعد زبان کا اعلیٰ معیار قائم ہو گیا اور بہت سے پرانے ہندی کے الفاظ متروک ہو گئے اور شاعری اب زیادہ تر دربار سے وابستہ ہوگئی۔ جبکہ انشاؔء اور مصحفیؔ کے دور تک آتے آتے شاعروں کی قدردانی تو بڑھ گئی مگر ان کی عزت و آبرو کم ہوگئی۔ ان درباری شاعروں میں سب سے اول نام انشاؔء اللہ انشاء کا ہے، ان کے چند اشعار ملاحظہ ہوں:

کمر باندھے ہوئے چلنے کو یاں سب یار بیٹھے ہیں

بہت آگے گئے باقی جو ہیں تیار بیٹھے ہیں

بھلا گردش فلک کی چین دیتی ہے کسے انشاؔء

غنیمت ہے کہ ہم صورت دو چار، بیٹھے ہیں

شیخ غلام ہمدانی مصحفیؔ نے اردو شاعری کے آٹھ دیوان چھوڑے ہیں۔ وہ بنیادی طور پر زبان کی اصلاح کے ناصح تھے۔ ان کے کلام میں زبان کا کوئی بھی عیب نہیں ملتا۔ ان کا سب سے بڑا کمال یہ ہے کہ جتنے استادان کے شاگردوں میں سے نکلے اتنے اور کسی کو نصیب نہیں ہوئے:

اے مصحفیؔ تو ان سے محبت نہ کیجیو

ظالم غضب کی ہوتی ہیں یہ دلی والیاں

عثمان انصاری

B.A(H) 2nd Year

اردو غزل کی روایت

اردو شاعری ہندستان کی پیداوار نہیں ہے بلکہ یہ فارسی سے مستعار لی گئی ہے:

تھا مستعار حسن سے اس کے جو نور تھا

خورشید میں بھی اس کا ہی ذرہ ظہور تھا

چونکہ فارسی شاعری میں بلخصوص، غزل وہ پہلی صنف تھی جس میں قافیہ اور ردیف کی پابندی لازم قرار دی گئی۔ ان پابندیوں کے خلاف تحریکیں بھی چلیں لیکن کامیاب نہ ہوسکیں۔ مثال کے طور پر عظمت اللہ خان نے کہا تھا کہ:

''اب وہ وقت آ گیا ہے کے خیال کے گلے سے قافیے کے پھندے

کو نکالا جانا چاہیے اور غزل کی گردن بے تکلف اڑا دینی چاہیے''

لیکن تاریخ نے ثابت کیا کہ لاکھ مخالفت کے باوجود غزل کی ترقی میں کوئی کمی نہیں آئی۔ اردو شعراء نے سب سے پہلے مشقِ غزل سے ہی شاعری کا آغاز کیا۔ تحقیق کے مطابق ہندستان میں اردو غزل کا آغاز شمالی میں ہوا۔ جب کہ پرورش دکن میں ہوئی۔ دکن کی زبان پر سنسکرت اور تیلگو زبانوں کے اثرات بہت تھے اور آج اس زبان کے بہت سے الفاظ متروک ہو گئے ہیں۔

ولی دکنی کے زمانے میں باقاعدہ اردو شاعری کا آغاز ہوا۔ ان کے کلام میں فارسی الفاظ اور خیالات موجود ہیں۔ لیکن ہندی کے اثرات بھی جا بجا ملتے ہیں؛

تجھ لب کی صفت لعل بدخشاں سوں کہوں گا

جادو ہیں تیرے نین غزالاں سوں کہوں گا

مت غصے کے شعلے سوں جلتے کوں جلاتی جا

ٹک مہر کے پانی سوں تو آگ بجھاتی جا

اس میں 'زندگانی'، اور 'ٹھانی' قافیے ہیں اور ردیف 'اور ہے' ہیں۔

قافیہ:۔ کسی بھی غزل کے پہلے دونوں مصرعے اور باقی اشعار کے دوسرے مصرعے ردیف سے پہلے استعمال ہونے والے ہم الفاظ کو قافیہ کہتے ہیں۔ غزل میں لے پیدا کرنے کے لئے قافیہ کا استعمال کیا جاتا ہے۔ اگر غزل چھوٹی لکھی جائے تو اس کے قافیہ فطری لگتے ہیں۔ جیسے غالب کی غزلوں میں غزلوں میں قافیہ اس طرح سے ہوتے ہیں۔ زندگانی، ٹھانی، نہانی، سرگانی، زبانی اور آسمانی۔

ردیف:۔ غزل کے اشعار میں مطلع کے دونوں مصرعے اور باقی اشعار کے دوسرے مصرعے میں قافیے کے بعد استعمال ہونے والے لفظ کو ردیف کہتے ہیں، جیسے غالب کی اس غزل میں ردیف 'اور ہے'، کسی بھی غزل میں ایک ہی ردیف ہوتا ہے اور قافیے بدلتے رہتے ہیں۔ یہ غزل کی خاصیت ہے ردیف اور قافیے کے استعمال سے ہی غزل میں لے پیدا ہوتی ہے۔

مقطع:۔ مقطع لفظ 'قطع' سے نکلا ہے جس کے معنی ترک کرنا یا چھوڑنا ہوتا ہے۔ شاعری کی اصطلاح میں غزل کا جو آخری شعر ہوتا ہے جس میں شاعر اپنی ایک پہچان یا تخلص استعمال کرتا ہے اسے مقطع کہتے ہیں۔ جیسے غالبؔ کی غزل میں اس طرح کا مقطع ملتا ہے۔

ہو چکی غالبؔ بلائیں سب تمام
اک مرگِ ناگہانی اور ہے

تخلص:۔ تخلص وہ ہے جس میں شاعر اپنے اصل نام کے بجائے کوئی دوسرا خاص لفظ اپنے لئے مقرر کرتا ہے۔ جو ایک سے زائد بھی ہو سکتے ہیں اور جسے شاعر مقطع کے اندر استعمال کرتا ہے۔ عموماً تخلص میں 'علامتِ بت' کا استعمال کیا جاتا ہے۔

☆☆☆

بتان وخوں کو توڑ کر ملت میں گم ہو جا
نہ تورانی رہے باقی نہ ایرانی نہ افغانی

اقبالؔ

سارا

B.A(H) 3rd Year

غزل کی ہیئت

غزل اردو شاعری کی سب سے زیادہ مقبول صنف ہے۔ غزل کے معنی لغت میں عورتوں سے باتیں کرنا ہوتا ہے۔ لیکن شاعری کے نظریے سے غزل ایسی نظم ہے جس میں الگ الگ اشعار میں زندگی کے مختلف موضوعات جیسے؛ عشق، غم، خوشی، تصوف، اور زندگی کے تمام مسائل بیان کیے جاتے ہوں۔ بعض ناقدین کا کہنا ہے کہ غزل ایسی ہوتی ہے جیسے سمندر کے پانی کو کسی کوزے میں سمونا۔ غزل کے پہلے شعر کو مطلع کہا جاتا ہے، جس کہ دونوں مصرعے ہم قافیہ اور ہم ردیف ہوتے ہیں اور غزل کے باقی اشعار کے دوسرے مصرعوں میں قافیہ اور ردیف کی پابندی ہوتی ہے یعنی ایسے الفاظ جن کا ہر شعر میں تکرار ہوتا ہے قافیہ و ردیف کہلاتے ہیں۔ غزل کا سب سے آخری شعر جس میں شاعر اپنا تخلص استعمال کرتا ہے، مقطع کہلاتا ہے۔ غزل میں پانچ یا اس سے زیادہ اشعار ہوتے ہیں۔ غزل میں ایک شعر اپنی جگہ ایک مکمل اکائی ہوتا ہے اور دوسرے اشعار سے اس کا کوئی تعلق نہیں ہوتا۔ غزل میں عام طور پر عشق و عاشقی کی باتیں ہوتی ہیں اور اس کا خیال اتنا وسیع ہوتا ہے کہ اس میں زندگی کے تمام موضوعات؛ اخلاق، تصوف سے لے کر سیاسی سماجی خیالات اور تعریف بھی پیش کی جا سکتی ہے۔ اکثر ایک ہی غزل میں مختلف قسم کہ مضامین اور خیالات ملتے ہیں۔

اردو میں فارسی کے اثر سے غزل کا آغاز ہوا ہے۔ غالبؔ، قلی قطب شاہ، ولیؔ، میرؔ، آتشؔ، مومنؔ، حسرتؔ، دردؔ، ناصرؔ کاظمی وغیرہ اردو غزل کے مشہور شاعر ہیں۔

مطلع:۔ مطلع لفظ 'طلوع' سے نکلا ہے، جس کے معنی ظاہر ہونا یا نکلنے کے ہیں۔ شاعری کی شروعات میں جس شعر سے غزل شروع ہوتی ہے اسے مطلع کہتے ہیں۔ اور مطلع کے دونوں مصرعے ہم قافیہ اور ہم ردیف ہوتے ہیں جیسے غالبؔ کی غزل کا مطلع یوں ہے:

کوئی دن گر زندگانی اور ہے
اپنے جی میں ہم نے ٹھانی اور ہے
غالبؔ

لاجو، کو پہلے کی طرح پیٹتا بھی نہیں تھا۔ لاجونتی اسے اپنی پوری کہانی سنانا چاہتی تھی لیکن وہ کسی نہ کسی طرح ٹال دیتا تھا۔ چھوڑو بیتی باتوں میں کیا رکھا ہے۔ لیکن سنارلال کا یہی رویہ اب لاجونتی کے دل میں کھٹکتا رہتا تھا، وہ خوش تھی لیکن مشکوک، 'لاجونتی' سندرلال کی وہی پرانی 'لاجو' بننا چاہتی تھی جو کبھی لڑتی تھی اور تھوڑی دیر کے بعد مان بھی جاتی تھی، وہ یہ جانتی تھی کے اب اگر اسے سندرلال مارتا پیٹتا نہیں، تو وہ کوئی اس کی عزت نہیں کرتا بلکہ، اب وہ سندرلال کے لئے کوئی کانچ کی چیز بن گئی ہے جو چھونے سے ٹوٹ جائے گی، وہ یہ سوچتی تھی کہ اب اگر ہم خوشی سے رہ رہے ہیں لیکن اس میں وہ پیار نہیں جو پہلے کی ڈانٹ ڈپٹ میں تھا، وہ یہ سوچتی تھی کے اب اس کا گھر اجڑ گیا۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔ پربھات پھیریاں اسی طرح نکلتی رہیں۔۔۔۔۔۔۔

اس افسانے میں شروع سے آخر تک ایک جملہ ایسا ہے جو بار بار دہرایا گیا ہے؛

'ہتھ لائیاں کملاں نی، لاجونتی دے بوٹے۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔۔'

کبھی اس کو لاجونتی گاتی ہے کبھی سندرلال گاتا ہے پورے افسانے کا نچوڑ اسی جملے میں لاکر رکھ دیا ہے اور یہی وجہ ہے کہ جس سیراجندر سنگھ بیدی کی افسانہ نگاری کا خاص فن نظر آتا ہے، جس کے سب لوگ قائل ہیں۔ اور اس افسانے میں جو لاجونتی کا کردار ہے وہ انسانی ذہین پر ایک ایسی چھاپ چھوڑ جاتا ہے جس سے ہر انسان کا ذہن ابھر نہیں سکتا۔ اس افسانے کی کردار نگاری میں وہ خصوصیت ہے جو ڈھونڈنے سے بھی نہیں ملتی۔ لاجونتی کا کردار ایسا ہے کہ اگر انسان اس کو بھولنا بھی چاہے لیکن پھر بھی بھول نہیں سکتا۔ راجندر سنگھ بیدی نے اس ایک ہی افسانے میں اس وقت کے تمام موضوعات، چاہے وہ سیاسی، سماجی، معاشی، اقتصادی، کسی بھی نوعیت کا کیوں نہ ہو بیدی نے اس میں چار چاند لگا دیے ہیں۔ اس افسانے میں انہوں نے، ان تمام مشکلات کا بھی ذکر کیا ہے جو تقسیمِ ہند کے وقت درپیش آئی تھیں۔ اور یہی ان کا خاص موضوع بھی رہا ہے۔ لیکن اس کے علاوہ بھی انہوں نے جس میدان میں قدم رکھا ہے وہ اس میں بھی کامیاب ہوئے ہیں۔ چاہے وہ افسانہ، ڈرامہ، مکالمہ نگاری، منظر نگاری، وہ ہر میدان میں کامیاب نظر آتے ہیں۔ انہوں نے اپنی پوری زندگی میں صرف ایک ہی ناول بعنوان 'ایک چادر میلی سی' لکھا ہے، لیکن جو کامیابی اور شہرت اس ناول کو نصیب ہوئی وہ اردو میں بہت کم کتابوں کو نصیب ہوئی ہے۔ یہی تمام وجوہات ہیں جو بیدی کو اردو ادب کا ایک چمکتا ستارہ بنا دیتی ہیں۔

☆☆☆

بھی نوازا گیا اس کے علاوہ بھی ان کو کافی ادبی انعامات و اعزازات سے نوازا گیا ہے۔

راجندر سنگھ بیدی کے افسانوں میں زیادہ تر سیاسی اور سماجی موضوعات خاص طور پر ۱۹۴۷ء کے بٹوارے کو انہوں نے اپنا موضوعِ خاص بنایا۔ ان کے افسانوں میں، اس وقت کے سماج کی بھرپور عکاسی ملتی ہے۔ انہوں نے سماج کی استحصالی کے مناظر کو منظرِ عام پر لایا، اور جو اس وقت کے سماج کی برائیاں تھیں ان سے روشناس کرایا۔

میں نے اس مضمون میں ان کے خاص افسانے 'لاجونتی' کا انتخاب کیا ہے۔ جس سے ان کے افسانوں کا پورا عکس ہمارے سامنے آجاتا ہے۔ اس افسانے میں آپ کو تمام طرح کے موضوعات ایک ساتھ دیکھنے کو ملیں گے۔ افسانہ 'لاجونتی' کا پس منظر تقسیمِ ہند کے بعد کے حالات ہیں۔ جس کا خلاصہ کچھ اس طرح ہے کہ؛

ملک کی تقسیم کے بعد ہجرت کا عمل شروع ہوا، نتیجے کے طور پر ملک کے سامنے کئی مسائل درپیش تھے، لیکن ان سب سے بڑا مسئلہ یہ تھا کہ جو لوگ ہجرت کر رہے ہیں، ان کو بسانے کا تھا۔ سرکار کے ساتھ مل کر لوگوں نے کئی کمیٹیاں بنائیں اور مہاجروں کو بسانے کے لئے کمر بستہ ہو گئے۔ اس عمل کے لئے کئی خاص کمیٹیاں بنیں، اور لوگوں کو بسانے کا کام شروع ہو گیا۔ اس پروگرام کے تحت وہ کمیٹیاں مہاجروں کو زمینی اور کاروباری بساؤ میں مدد کر رہی تھیں، ان کمیٹیوں سے الگ سندر لال نے ایک الگ ہی پروگرام شروع کر رکھا تھا، یعنی دل میں بساؤ۔ اس خاص پروگرام کے لئے گاؤں، ملاشکور، میں ایک کمیٹی تشکیل دی گئی جس کا سکریٹری خود سندر لال کو منتخب کیا گیا۔ ارکان کمیٹی روزانہ گلی کوچوں میں پھیری لگاتے اور یہ نعرہ لگاتے کہ دل میں بساؤ ۔ شروع شروع میں لوگوں نے اس کی مخالفت کی، خاص کر مذہبی اداروں نے اس کی خلاف ورزی کی، لیکن بعد میں جب یہ کمیٹی اچھا کام کرنے لگی تو لوگ اس کے ساتھ آنے لگے۔ دراصل اس کمیٹی کا اصل مقصد یہ تھا کہ، وہ مغویہ عورتیں کے سلسلے میں تھا جو بد قسمتی سے لوگوں کے ہاتھ آگئیں اور سرحد کے اس پار چلی گئیں تھیں۔ ان مغویہ عورتوں میں سندر لال کی بیوی لاجونتی بھی شامل تھی ۔ اسے اپنی بیوی کی بہت یاد آتی تھی۔ اسے لاجونتی کو پیٹنا بھی یاد آتا تھا۔ لیکن اس کہ علاوہ، وہ جو اس سے پیار کرتی تھی وہ بھی اسے یاد آتا تھا، سندر لال کو یہ تمام باتیں یاد آتیں اور وہ دل ہی دل میں کڑھتا تھا۔ آخر کار ایک دن اسے یہ پتا چلا کے واگہ کی سرحد پر کچھ مغویہ عورتوں کو لایا گیا ہے تو وہ وہاں پر دوڑتا ہوا پہونچا اور تمام عورتوں کو خود اتارنے لگا، اس نے گاڑی سے آخری عورت کہ اترنے تک یہی امید رکھی کہ ان میں لاجونتی بھی ہوگی۔ لیکن ان عورتوں میں لاجونتی نہیں تھی۔ وہ واپس آکر پھر اسی کام میں مصروف ہو گیا، اور اب اس نے اپنا پروگرام اور تیز کر دیا۔ کچھ دن بعد پھر پتا چلا کہ کچھ اور عورتیں لائی گئی ہیں اور لاجونتی کو بھی وہیں دیکھا گیا ہے، وہ پریشان ہو اٹھا، وہ ابھی سرحد پر جانے کی تیاری کر رہا تھا کہ 'لاجو' کہ آنے کی خبر ملی۔ وہ گیا اور اسے اپنے ساتھ گھر لے آیا۔ لیکن اب سندر لال کے رویے میں کافی تبدیلی آچکی تھی، وہ لاجونتی کو اب دیوی کہہ کر پکارتا تھا۔ سندر لال اب '

۱۹۴۸ء میں وہ ادیبوں کے ایک وفد کے ساتھ کشمیر گئے اور وہاں ان کی ملاقات شیخ عبداللہ سے ہوئی، شیخ عبداللہ کو ان کی شخصیت بہت پسند آئی اور راجندر سنگھ بیدی کو جموں کشمیر ریڈیو اسٹیشن کا ڈائریکٹر بنادیا۔ انہوں نے وہاں خوب دل لگا کر کام کیا اور ساتھ ہی ان کا وہ سپنا بھی پورا ہونے لگا جس کہ لئے وہ تڑپ رہے تھے، یہیں سے انہوں نے اپنی قوم اور ملک کی اصلاح بھی کرنی شروع کی۔ اور خوب دل لگا کر کام کرنے لگے۔ ان ہی کی کوششوں سے سرینگر ریڈیو اسٹیشن کی بنیاد بھی رکھی گئی، کشمیر میں بیدی کا قیام صرف ایک سال تک رہا، اس کے بعد جب بخشی غلام محمد کا تقرر بحیثیت صدرِ ریاست ہوا تو ان کے ساتھ بیدی کا اختلاف شروع ہو گیا، جس کے سبب ۱۹۴۹ء میں انہوں نے کشمیر کو خیر آباد کہہ دیا اور واپس دہلی آگئے اور یہاں کچھ عرصہ کے لئے رکے اور پھر انہوں نے بمبئی کی راہ لی اور پھر آخری دم تک وہیں قیام پذیر رہے۔

بیدی پہلے محسن لاہوری کے فرضی نام سے لکھتے تھے۔ محسن لاہوری کے فرضی نام سے ہی لکھ کر انہوں نے اپنی ادبی زندگی کا آغاز کیا۔ بیدی نے اپنی ادبی زندگی کا آغاز ۱۹۳۳ء میں کیا۔ ان کا پہلا افسانہ 'مہارانی کا تحفہ' ادبی دنیا، لاہور میں شائع ہوا۔ ان کا یہ پہلا افسانہ اپنے اندر رومانی رنگ لئے ہوئے تھا۔ لیکن جیسے جیسے ان کی تخلیقات سامنے آتی گئیں، وہ رومانیت سے سنجیدہ حقیقت نگاری کی طرف مائل ہوتے گئے۔ اس کے بعد ان کے اندر ایک نیا رنگ دیکھنے کو ملتا ہے۔ راجندر سنگھ بیدی کا پہلا افسانوی مجموعہ 'دانہ ودام' مکتبہِ جامعہ لاہور سے شائع ہوا۔ اس میں کل ۱۴ افسانے شامل ہیں، یعنی؛ 'بھولا' 'ہمدوش' 'من کی من' 'گرم کوٹ' 'چھوکری کی لوٹ' 'پان شاپ' 'منگل اشٹکا' 'کوارنٹین' 'تلادن' 'دس منٹ بارش میں' 'حیا تین ب' 'لچھمن' 'ردعمل اور موت کا راز'۔ اس کے علاوہ ان کے پانچ افسانوی مجموعے اور شائع ہوئے ہیں جن کے نام ہیں؛ گرہن (۱۹۴۲ء)، کوکھ جلی (۱۹۴۹ء)، اپنے دکھ مجھے دے دو (۱۹۶۵ء)، ہاتھ ہمارے قلم ہوئے (۱۹۴۷ء) اور مکتی بودھ (۱۹۸۲ء)۔ ان افسانوں کے علاوہ انہوں نے ایک کامیاب ناولٹ بھی لکھا ہے، جس کا نام ہے 'ایک چادر میلی سی'۔ یہ ناولٹ مکتبہ جامعہ دہلی سے ۱۹۶۲ء میں شائع ہوا۔ اس کے علاوہ انہوں نے کچھ ڈرامے بھی لکھے جیسے: سات کھیل (۱۹۴۶ء) بے جان چیزیں (۱۹۴۳ء) وغیرہ کے نام سے شائع ہو چکے ہیں۔ بیدی نے مختلف فلموں کے لئے مکالمے اور منظر نامے بھی لکھے، خود فلمیں بنائیں، 'دستک' اور 'پھاگن'، ان کی دو مشہور فلمیں ہیں۔

۱۹۷۷ء مین ان کی بیوی ستونت کور کا انتقال ہو گیا جس سے ان کو بہت غم ہوا اور ہمیشہ ہنسنے کھیلنے والے بیدی بجھ سے گئے۔ ابھی اسی غم میں ہی مبتلا تھے کے اچانک سے ان کو بھی ۱۹۷۹ء میں فالج کا حملہ ہوا اور ایک عرصے تک چل پھر نہ سکے، پانچ سال تک اسی مرض میں مبتلا رہے آخر کار ۱۱، اکتوبر ۱۹۸۴ء کو وہ ہمیشہ کے لئے اس دنیا کو خیر آباد کہہ گئے۔

راجندر سنگھ بیدی کی حیات ہی میں ان کو حکومتِ ہند کی طرف سے پدم شری سے نوازا گیا اور ساہتیہ اکادمی ایوارڈ سے

محمد مرسلیم
B.A(H) 2nd Year

راجندر سنگھ بیدی اور افسانہ 'لاجونتی'

راجندر سنگھ بیدی کا نام اردو افسانے میں بہت اہم مانا جاتا ہے، انہوں نے نہ صرف افسانے لکھے بلکہ ناول اور ڈرامے بھی تحریر کیے۔ انہوں نے اپنے فن اور فکر کی وجہ سے اردو ادب میں نہ صرف ایک الگ مقام حاصل کیا بلکہ شہرت میں بھی بلند مرتبہ حاصل کیا۔

راجندر سنگھ بیدی یکم ستمبر ۱۹۱۵ء کو 'لاہور' میں پیدا ہوئے۔ راجندر سنگھ بیدی کے والد کا نام ہیرا سنگھ بیدی تھا اور ماں کا نام سیوا دائی تھا۔ ہیرا سنگھ بیدی گاؤں 'ڈلے کی' کے رہنے والے تھے جو ڈسکا تحصیل ضلع سیالکوٹ میں واقع ہے، لیکن ان کا قیام لاہور میں رہا، کیونکہ وہ وہیں ڈاکخانہ میں ملازم تھے۔ انہوں نے اس زمانے کے رواج کے مطابق پہلے مدرسے میں عربی اور فارسی سیکھی اور اس کے بعد ایس۔ جی۔ بی۔ اے خالصہ اسکول سے ۱۹۳۱ء میں ہائی اسکول پاس کیا۔ اس کے بعد انہوں نے لاہور ہی کے ایک کالج ڈی۔ اے۔ وی۔ کالج میں داخلہ لیا جہاں سے انہوں نے ۱۹۳۳ء میں انٹرمیڈیٹ کا امتحان پاس کیا، اور اس کے بعد وہیں بی۔ اے میں داخلہ لے لیا، لیکن بدقسمتی سے اور گھریلو پریشانیوں کی وجہ سے اپنی تعلیم جاری نہ رکھ سکے، اور تعلیم کو خیر آباد کہہ دیا۔ ابھی راجندر سنگھ بیدی کی عمر صرف انیس سال ہی تھی کہ ۱۹۳۴ء میں ان کی شادی ستونت کور عرف سوماوتی سے کرا دی گئی۔ اور اسی زمانے میں ان کی ملازمت مل گئی۔ ۱۹۳۳ء میں وہ پہلے لاہور پوسٹ آفس میں کلرک کی حیثیت سے بحال ہوئے، اور اسی محکمہ میں وہ دس سال کے لئے کام کرتے رہے۔ دس سال کے بعد جب ان کو یہ خیال آیا کہ کچھ ایسا کرنا چاہیے کہ جو ہماری قوم کے لئے کارگر ثابت ہو، اسی خیال کی وجہ سے انہوں نے ۱۹۴۳ء کو ڈاکخانہ کی ملازمت سے استعفیٰ دے دیا۔ اس کے بعد وہ مرکزی حکومت کے پبلیسٹی ڈیپارٹمنٹ سے وابستہ ہو گئے، لیکن یہاں بھی وہ اپنی اسی سوچ میں ڈوبے رہے کہ مجھے کچھ اپنی قوم کے لئے کرنا چاہیے اور اسی وجہ سے وہ یہاں بھی چھ مہینے سے زیادہ ٹک نہ سکے۔ اس کے بعد وہ لاہور پہنچے اور آل انڈیا ریڈیو میں بحیثیت آرٹسٹ کام کرنے لگے۔ تقسیم ہند کے وقت ان کی یہ ملازمت ان سے چھوٹ گئی اور انہوں نے پاکستان کو بھی خیر آباد کہہ دیا اور دہلی میں منتقل ہو گئے۔

کردار کو ابھارنے میں مکالمے بے حد اہمیت رکھتے ہیں کیونکہ مکالمے کی وجہ سے انسان کی سیرت اور شخصیت سامنے آتی ہے۔ کرداروں کے حسن کا اندازہ اس کے عمل کے ساتھ مکالمے سے بھی ہوتا ہے۔ افسانوی مکالمے حقیقی مکالموں میں گفتگو ہونی ضروری ہے۔ اگر ایسا نہ ہو تو وحدتِ تاثر میں فرق پڑ جاتا ہے۔

اسلوب؛

افسانے کے اسلوب کو آئینے کے زنگار کی طرح ہونا چاہیے۔ زنگار اس چیز کو کہتے ہیں جو آئینے کے پیچھے لگایا جاتا ہے۔ جس کی وجہ سے آئینے میں ہر چیز نظر آتی ہے جب ہم آئینہ دیکھتے ہیں تو ہماری توجہ اس کی پیکر کی طرف رہتی ہے جو آئینے میں نظر آتی ہے۔ مختصر افسانے کے اسلوب میں جو بھی واقعات اور کردار پیش کیے جاتے ہیں ان کی طرف ہماری توجہ مرکوز رہتی ہے۔ غیر ضروری لفظ کو متروک کرنا چاہیے۔ اسلوب مواد کے مطابق ہونا چاہیے زبان کا سادہ اور دلکش ہونا ضروری ہے سادہ زبان اس لئے کیونکہ اسے عام لوگ سمجھ سکیں اور دلکش اس لئے تا کہ پڑھنے میں دلچسپی بنی رہے۔

☆☆☆

ستاروں سے آگے جہاں اور بھی ہیں
ابھی عشق کے امتحاں اور بھی ہیں
اقبالؔ

اگر کج رو ہیں انجم، آسماں تیرا ہے یا میرا ؟
مجھے فکر جہاں کیوں ہو ، جہاں تیرا ہے میرا؟
اقبالؔ

ہوں گے۔اس شخص کے تجربات، مشاہدات سے آ گائی ہوگی۔ یہ کرداراور واقعات کہاں اور کس زمانے میں نموع پذیر ہوں گے ۔اورزماں ومکاں کا ہونا بھی ضروری ہے۔کہانی کہنے والے کا کوئی اندازِ بیان بھی ہوگا۔اس لیے اسلوب کا ہونا بھی لازمی ہے۔ ہر لکھنے والا ایک خاص طرزِ بیاں رکھتا ہے جس طرح ہر لکھنے والے کا اپنا اسلوب ہوتا ہے جو اس کے افسانے یا تحریروں میں جھلکتا ہے۔زندگی کے تعلق سے ہمیں ایک نئی روشنی حاصل ہوتی ہے۔اسی طرح کہانی مسرت بھی بخشتی ہے اور سبق بھی دیتی ہے۔

وحدت؛

مختصر افسانے میں ''وحدتِ تاثر'' کی بڑی اہمیت ہے۔اس کی یہی خصوصیت اس کو دوسری افسانوی اصناف سے علیحدہ اور ممتاز کرتی ہے۔مختصر افسانے میں یہی بات ہے کہ کوئی غیر متعلق بات بھی پورے افسانے کے تاثر کو ختم کر دیتی ہے۔

کہانی؛

ہر افسانوی صنف میں کہانی لازمی طور پر کہی جاتی ہے کہانی کہنے کے لئے ہی افسانوی صنف وجود میں آتی ہے۔مختصر افسانے میں عام طور پر ایک واقعہ، ایک جھلک، یا چند کردار، ایک جذبہ اور ایک مقصد یا ایک کیفیت پیش کی جاتی ہے۔اس میں پورا انسان نہیں بلکہ اس کی شخصیت کا ایک رخ ہی پیش کیا جاتا ہے۔

پلاٹ؛

پلاٹ قصہ کے واقعات کی خاص ترتیب وتنظیم کا نام ہے۔ پلاٹ ایک واقعے کو دوسرے واقعے سے جوڑتا ہے۔ایک واقعے کے اثر سے دوسرا واقعہ جس طرح پیدا ہوتا ہے اسی سلسلے کو پلاٹ کہتے ہیں۔

کردار؛

مختصر افسانے میں چند ہی کردار پیش کیے جاسکتے ہیں۔کردار کے بنا مکالمے، جذبات، تجربات کی ادائیگی ممکن نہیں ہے
۔

پس منظر؛

مختصر افسانے کا پس منظر یا زماں ومکاں کا پورا ارتقاء بھی دکھایا جاسکتا ہے اور ان کی زندگی کا ایک ہی رخ بھی پیش کیا جا سکتا ہے۔لیکن وہ اتنا جامع ہوتا ہے کہ اس کی پوری زندگی سے واقف ہو جاتے ہیں۔افسانہ نگار چند جملوں میں کردار یا کرداروں کے ماضی، حال اور مستقبل کو بڑی عمدگی سے پیش کر دیتا ہے۔وہ چند جملوں میں افسانے کے کردار کی ساری زندگی کا احاطہ کر دیتا ہے۔

مکالمے؛

حمیرا سمیع

B.A(H) 3rd Year

مختصر افسانہ اور اس کے اجزائے ترکیبی

کہانی سننا اور کہانی کہنا انسانی فطرت میں شامل ہے ۔شاید اس لئے کے ہر انسان کی زندگی ایک کہانی ہے، مگر ہم افسانے میں پوری زندگی کو پیش نہیں کر سکتے ۔ کیونکہ افسانے میں طوالت کا کوئی کام نہیں۔ مختصر افسانے میں سب سے اہم بات یہی ہے کہ کہانی میں طوالت نہ ہو جس سے قاری کی توجہ اصل مقصد سے ہٹ جائے ۔ قصے کی پیشکش کا انداز ایسا ہونا چاہیے کہ قاری کی توجہ اس پر جمی رہے اور ہر لمحہ وہ یہ جاننے کے لئے بیتاب رہے کہ آگے کیا ہونے والا ہے۔

مختصر افسانے کی تعریف؛

ادب کی جامع تعریف ممکن نہیں اسی طرح سے ادبی صنف خواہ کوئی بھی ہو اس کی مکمل تعریف نہیں کی جا سکتی ۔مختصر افسانے کی بھی جامع تعریف مشکل ہے۔

اختصار مختصر افسانے کا بنیادی وصف ہے، مختصر افسانے میں صرف ایک خیال کو پیش کیا جاتا ہے اور اس بنیادی خیال کو اپنے انداز میں افسانہ نگار معنی خیز انداز میں انجام تک پہنچاتا ہے۔ مختصر افسانہ افسانوی نثر کی ایک قسم ہے جو عام طور پر ناول اور ناولٹ کے مقابلے زیادہ جامع اور بہت پر اثر ہوتی ہے۔ انیسویں صدی سے قبل اس کو ایک نمایاں اور الگ ادبی صنف میں سمجھا جاتا تھا۔ اس لحاظ سے یہ ایک جدید اور منفرد ادبی صنف نظر آتی ہے، لیکن درحقیقت یہ افسانوی ادب اسی قدر قدیم ہے جس قدر خود زبان قدیم ہے۔

مختصر افسانے کے اجزاء؛

مختصر افسانے کی ترکیب میں وہی تمام باتیں لازمی ہیں جو ناول کی صورت گری کے لئے ضروری ہے مگر افسانے کا پیمانہ اچھوتا ہے، اس لئے ان کے برتنے کا انداز بدل جاتا ہے۔ اس میں زندگی کا ایک ہی واقعہ پیش کیا جاتا ہے ۔ پلاٹ اصل میں کہانی کے واقعات کی ترتیب و تنظیم اور واقعات کو ایک دوسرے سے مربوط کرنے کا کام ہے۔ قصہ کے لئے اشخاص یا کردار بھی لازمی ہوتے ہیں۔ کردار جب ہوں گے تو وہ ایک دوسرے سے مخاطب بھی ہوں گے۔ اس لئے مکالمے بھی لازمی طور پر

ہماری بات

یہ میگزین زیورطبع سے آراستہ ہوکر آپ کے ہاتھوں میں ہے۔ یہ ہمارے لئے مسرت کی بات ہے کہ ہر سال کی طرح پابندی سے یہ سلسلہ برقرار ہے۔ میگزین کا شائع ہونا بڑی بات نہیں، بڑی بات یہ ہے کہ زبان وادب کی ترویج اور تشویق کی سمت میں یقیناً یہ ایک بڑا قدم ہے۔ ہمارے شعبے کی جانب سے اردو درس وتدریس میں اساتذہ اور طلبہ برابر کے حصہ دار ہیں۔ طلبہ سے کالج کی رونق ہے اور ان کی تعلیمی دلچسپی سے ہمارے کالج کی نیک نامی ہے۔

اردو زبان وادب کی ترویج وتدریس میں اس کالج کی نمایاں خدمات رہی ہیں۔ ہم سے پیشتر اساتذہ نے بھی اس سمت میں کوششیں کی ہیں جو قابلِ ستائش ہیں۔ ہم انہی روایات کی توسیع اور تسلسل کے لیے کوشاں ہیں۔ یہ بتاتے ہوئے ہمیں اور بھی زیادہ خوشی ہورہی ہے کہ حالیہ برسوں میں طلبہ وطلبات کی تعداد میں معتدبہ اضافہ بھی ہوا ہے۔ کلاس روم کی تدریس کے علاوہ یہاں کے طالب علموں میں تحریر، تقریر کا شوق پیدا کرنے کے لیے کئی طرح کی سرگرمیاں موجود ہیں۔ 'بزم ادب' کے تحت مذاکرہ، سمینار، مشاعرہ، تحریری و تقریری مقابلے کا اہتمام کرایا جاتا ہے۔ اس طرح کے پروگراموں سے طالب علموں کی تربیت ہوتی ہے۔ اس طرح کے اہتمامات گاہے بگاہے ہوتے رہتے ہیں اور کبھی نامساعد حالات میں ان کا اہتمام کرنا بہت دشوار بھی ہوجاتا ہے۔ مگر ہماری یہ کوشش ہوتی ہے کہ طلبہ کو روایتی درس کے علاوہ بھی بہت کچھ دیں۔ چنانچہ ہم اپنی جانب سے موقع فراہم کرنے کی بھرپور کوشش کرتے ہیں۔

اس میگزین کے مشمولات سے اندازہ ہوگا کہ ہمارے طالب علموں کے اندر کیسی کیسی صلاحتیں پوشیدہ ہیں۔ اگر خود طالب علم بھی اپنی صلاحیتوں کو پہچاننے میں کامیاب ہوجاتے ہیں تو یقیناً مستقبل میں کامیابیاں ان کے قدم چومیں گی۔

فہرست

۱	ہماری بات		249
۲	مختصر افسانہ اور اجزائے ترکیبی	حمیرا سمیع	248
۳	راجندر سنگھ بیدی اور افسانہ ''لاجونتی''	محمد مرسلیم	245
۴	غزل کی ہیئت	سارا	241
۵	اردو غزل کی روایت	عثمان انصاری	239
۶	اختر الایماں کی نظم نگاری	واجد علی	234
۷	سعادت حسن منٹو: ایک جائزہ	مباع نور	232
۸	داستان: ایک تعارف	ثنا	229
۱۰	پریم چند کی افسانہ نگاری	رضوانہ	227
۱۱	افسانہ ''لاجونتی'' کا خلاصہ	عرشی ناز	225
۱۲	شکوہ	علامہ اقبال	221
۱۳	جواب شکوہ	علامہ اقبال	208

نیو آئوٹ لُک

2019-2020

نگراں:

ڈاکٹر محمد محسن

مدیران:

مباع نور - رضوانہ

شعبۂ اردو، کروڑی مل کالج، دہلی یونیورسٹی

Statement of ownership and other particulars

New Outlook

नई दृष्टि

Form IV (See Rule 8)

Place of Publication:	Kirori Mal College, University of Delhi, Delhi-7
Periodicity:	Yearly
Printer's Name:	A S ASIA TRADERS
Address:	1690, Gali Madarsa Meer Jumla Lal Kuan Delhi-110006
Publisher's Name:	Prof. Dr. Vibha Singh Chauhan (Principal)
Whether Citizen of India:	Yes
Name and Address of the Owner:	Prof. Dr. Vibha Singh Chauhan (Principal) Kirori Mal College, University of Delhi, Delhi- 110007

I, Prof. Vibha Singh Chauhan, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief

June, 2020

Sd/-
Prof. Vibha Singh Chauhan
Signature of the Publisher

Disclaimer: This magazine is part of institution's internal publications and has no commercial value or sale. The publisher has used many images from internet along the manuscript writers of this magazine shall solely be responsible for the originality of their texts or any other related matters etc.

HINDI LANGUAGE SECTION EDITORIAL BOARD

Dr. Pragya

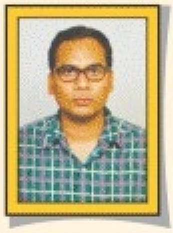
Dr. Rohit Kumar

Aryan Yadav

Janvi

Parvesh Kumar

ENGLISH LANGUAGE SECTION EDITORIAL BOARD

Mr. Pankaj Bharti

Smriti Chawla

Gitika Gupta

Karishma Prithiani

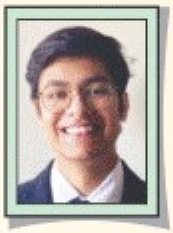
Yug Jyotirmay Singh

Siddhi Sahni

Dhruv Wadhwa

SANSKRIT LANGUAGE SECTION EDITORIAL BOARD

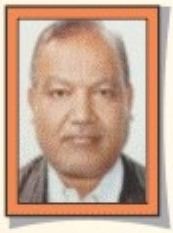
Dr. Subhash Kumar Singh

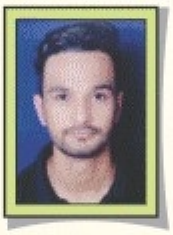
Abhishek Tiwari

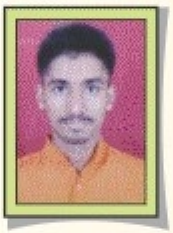
Mudit Mohan Sharma

BANGLA LANGUAGE SECTION EDITORIAL BOARD

Dr. Dipak Maiti

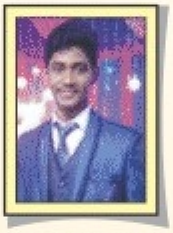
Pijus Kanti Adak

Suprava Ghatak

URDU LANGUAGE SECTION EDITORIAL BOARD

Dr. Md. Mohsin

Rizwana

Muba Noor

Kirori Mal College

University of Delhi, Delhi

Phones: 011-27667861, 27667939 Fax: 011-2766579

Website: www.kmcollege.ac.in

PHOTOGRAPHS

FRONT PAGE BY HARSHIT KAPOOR

BACK PAGE BY BHUMIKA

PRINTED BY A.S. ASIA TRADERS MOBILE: 9810161637